Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Rama Deo

Ayurvedic college

B. H. U

Ramesh Chandra.

33 Chak

अनु
Dorma

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिशिष्ट

(क) पारिभाषिक शब्दों की अनुक्रमणिका

अ

अग्र Apex
अग्रस्थित (कलिका) Terminal 31
अण्ड-यंत्र Egg Apparatus 123
अण्डाकार (पत्ती) Elliptical 65
अंतर्मुखी (लिंगछत्र) Introrse 98
अंतर्जात Endogenous 22
अंतर्नालीय (पुंखपत्र) Interpetiolar 56
अंतराकृतिक विभाग Internal morphology 8
अंतरावरण Intine 125
अंतः बीजावरण Tegmen 141
अनियमित (पुष्प) Irregular 91
,, (जड़) Adventitious 26
अनुद्भूत (कलिका) Dormant 33
अपरिमित (पुष्प-व्यूह) Cymose 78
,, (शाखाक्रम) ,, 44
अपूर्ण (पुष्प) Incomplete 96
अबीजोत्कृष्ट Pteridophyta 12
अर्द्धचन्द्राकार Lunate 64
अर्द्धतनासक्त Semi-amplexicaul 57
अर्सिओलेट Urceolate 93
अलैंगिक (उत्पत्ति) Asexual 112
अवयव Member
अवयव-विभाजन Segmentation
अस्फोटी (फल) Indehiscent 132
अक्षकोण Axil
अक्षकोणीय (कलिका) 32

आ

आच्छादित Imbricate 95
आत्म-सेचन Self-pollination 114
आधारीय (बीजक्रम) Basal 105

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आफसेट Offset 36
आभ्यान्तराकृतिक विभाग Histology 8
आयताकार (पत्ती) Oblong 65
आरोही (तना) Climbing 35
आर्थोट्रापस (डिम्ब) Orthotropous 124
आर्थोस्टिचीज़ Orthostichies 70
आवृतबीजी Dicotyledons 11
आश्रृतवर्ग Fungi 12

इ

इण्डोकार्प Endocarp 131
इण्डोस्पर्म Endosperm
" न्यूक्लियस Endosperm nucleus 127
इन्फीरियर (गर्भाशय) Inferior 89
इन्वालुकेर Involucre 80
इन्वालुसेल Involucel 82
इपीकार्प Epicarp 131
इपीकैलिक्स Epicalyx 91
इपीगाइनस (पुष्प) Epigynous 89
इपीजियल Epigeal 158
इपीपेटलस (पुष्प-लिंग) Epipetalous 99

उ

उत्पादक कोष्ठ Generative-cell 126
उद्भिदाकृतिक विभाग Morphology 8
उद्भेद Germination (पराग) 125, (बीज) 156

ऊ

ऊस्पोर Oospore 127

ए

एककोष्ठी Unicellular
" (गर्भाशय) Unilocular 103
एकदली Monocotyledons 11
एकपर्शुक Unicostate 59
एकपादी (तना) Monopodial 40
एकलिंगी (पुष्प) Unisexual 96
एकस्फोटी फल Follicle 135
एकान्तर (पत्ती) Alternate
" (पत्रक्रम) Spiral 69
" (शाखाक्रम) Uniparous 44

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

,, (पुष्प व्यूह) Uniparous 81

एकीन Achene 134

एकीनियल (फल) Achenial 134

एक्लेमीडियस (पुष्प) Achlamydeous 91

एक्स-एल्ब्यूमिनस (बीज) Ex-albuminous 156

एडलफस Adelphous 99

एनाट्रापस (डिम्ब) Anatropous 125

एरिलस Arillus 141

एल्ब्यूमिनस (बीज) Albuminous 156

एल्यूरोन (तह) Aleurone layer 159

ए-सिमेट्रिकल (पुष्प) Asymmetrical 107

ऐ

ऐक्टिनोमार्फिक (पुष्प) Actinomorphic 106

ऐण्टीपोडल (कोष्ठ) Antipodal 124

ऐण्टीरियर Anterior 108

ऐण्ड्रोफोर Androphore 88

ऐंथोफोर Anthophore 88

औ

औत्पत्तिक सम्बन्ध Genetic relationship

क

कन्द Tuber 42

कपाट-स्फोटन Transverse dehiscence 132

करतलाकार (पत्ती) Palmate 61

कर्णासक्त (पत्ती) Auriculate 57

कलाजा Chalaza 123

कलिका Bud 31

काक्सी Cocci 137

काण्ड Stem

काण्डपत्र Cauline leaf 69

काण्डलग्न (पत्ती) Decurrent 57

कार्पोफोर Carpophore 89

कार्सेरुलस Carcerulus 137

काल्पनिक चित्र Theoretical diagram 108

कीटभोजी Insectivorous

कीटसिक्त (पुष्प) Entomophilous 117

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कीटाणु Bacteria
कीटाणु वर्ग Schizomycetes 12
कील (केरिना) Keel (Carina) 95
कुण्ठताग्र Obtuse 66
कैपिचुलम Capitulum 80
कैप्स्यूल Capsule 135
कैप्स्यूलर (फल) Capsular 135
कैम्पिलोट्रापस [डिम्ब] Campylotropous 125
कैरियोप्सिस Caryopsis 134
कोणयुक्त (तना) Angular 49
कोणीय [धरातल] Diagonal 108
कोषमय [पत्राधार] Sheathing 54
कंटकाकीर्ण Spiny
क्यूप्यूल Cupule 135
क्रमाच्छादित Twisted 95
क्रियाविज्ञान Physiology 8
क्रिनेट [धार] Crenate 67
क्रीमोकार्प Cremocarp 136
क्रूसीफार्म [दलचक्र] Cruciform 94
क्लिस्टोगैमस Cleistogamous 122
क्लेफ्ट Cleft 61
क्लैडोड Cladode 47
क्लोरोफिल Chlorophyll

ख

खनिज Mineral
खात Cavity

ग

गठन [पत्ती] Texture 67
गर्भ Embryo 128
गर्भ-कलिका Plumule 155
गर्भकोष Embryo—sac 123
गर्भाधान Fertilisation 127
गर्भाशय Ovary 101
गर्भावरण Perisperm 129
गर्भ-वृद्धि-शास्त्र Embryology
गाइनैंड्रस [पुष्पलिङ्ग] Gynandrous 99
गाइनोफोर Gynophore 88
गुल्म Bush 37
गैमोपेटलस [दलचक्र] 94
गौड़ Secondary
ग्रन्थि Node 17

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ग्राही (योनिछत्र) Receptive 120
ग्लाकस Glauoous 48
ग्लैब्रस (चिकना पृष्ट) Glabrous
ग्लोबोस Globose 93

घ

घंटिकाकार Companulate 93

च

चक्रारोही (तना) Twining 35
चाक्रिक (पत्रक्रम) Verti-oillate 69
(पुष्प) Cyclio 91
चित्रित (पत्ता) Veriegated 68
चुक्रवर्ग Polygonaceae

छ

छत्र-विच्छेद Anther-lobe 97
छिद्रल (स्फोटन) Porous 98, 132

ज

जड़ (मूल) Root 17
जड़ रोम Root hair 24
जड़ विज्ञान Physical Science 2
जनककोष्ट Mother cell
जन्तु विज्ञान Zoology 2
जन्तुसिक्त (पुष्प) Zoophilous 117
जलसिक्त (पुष्प) Hydrophilous 116
जलीयजड़ Water root 28
ज़ाइगोमार्फिक Zygomorphic 107
जीवन-मूल Protoplasm 161

ट

टेट्राडाइनमस (लिंगचक्र) Tetradynamous 100

ड

डाइक्लेमिडियस Dichlamydeous 91
डाइडाइनमस Didynamous 100
डाइवर्जेन्स कोण Angle of Divergence 70
डायस्टेज Diastase 159
डार्सल स्यूचर Dorsal Suture 102
डार्सीफिक्स्ड (लिंगछत्र) Dorsifixed 97
डिम्ब Ovule 122
डिम्बनाल Funioulus 122

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

डिम्बाधरण Integument 122
डिस्क Disc 90
डेकुसेट Decussate 69
डेन्टेट (धार) Dentate 67
ड्रूप Drupe 137

त

तनाव Tension
ताम्बूलाकार (पत्ती) Cordate 63
तीक्ष्णाग्र Acute apex 66
तुंदुल Saccate 93
तूलरोमश Tomentose 68

द

दन्तमय धार Toothed margin 66
दन्त-स्फोटन Dehiscence by teeth 132
दलचक्र Corolla 88
दलपत्र Petal 88
दुग्ध Latex
दुग्धिका जाति Euphorbia 83
दृढ़ कंटक Thorn 48
द्वि-ओष्ठी Bilabiate 93
द्वि-कोष्ठी (गर्भाशय) Bilocular 103
द्विदली Dicotyledons 11
द्वि-पत्ताकार (पत्ती) Bi-pinnate 62
द्वि-पृष्ठी (पत्ती) Bifacial 17
द्वि-पत्रक Binate 62
द्वि-लिंगी (पुष्प) Hermaphrodite 96
द्वि-वार्षिक Bi-ennial 27
द्विविभक्त Dichotomous

ध

धड़ (पेड़ी) Trunk 37
धारीय (बीजक्रम) Marginal 104

न

नग्नबीजी Gymnosperm 11
नट Nut 134
नतपृष्ठ Depression
नताग्र Emarginate apex 66
नपुंसक (पुष्प) Neutre 97
नरपुष्प Male or staminate flower 96
नरकोष्ठ Male cell 126
नलिका (नली) Tube, Vessel
नलिकाकार Tubular 93
नाड़ीक्रम Venation 59
नारीपुष्प Female or pistillate flower 96

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नारीकोष्ठ Female or egg cell 123
नाल Stalk
नाल चिन्ह Hilum 123
नाललग्न Petiolar 56
निगूढ़ विज्ञान Abstract science 2
निमाटोफोर Nematopbore 29
नियमित (पुष्प) Regular 91
" जड़ संस्थान Tap-root System 25
नियमित प्रधान जड़ Tap root 25
निशास्ता Starch
न्यूक्लियस Nucleus
न्यूसेलस Nucellus 123

प

परजीवी जड़ Parasitic root 29
परसेचन Cross-pollination 113
परागकण Pollen grain 97
पराग-कोष Pollen Sac 97
पराग-नलिका Pollen tube 126
पराग पिण्ड Pollinium 100
परिकाण्ड (पत्ती) Perfoliate 57
परिकाण्ड पुंखपत्र Ochreate 56
परिमित (पुष्पव्यूह) Cymose 78
" (शाखाक्रम) " 44
" बहुविभक्त Polychasium
परिवर्तीपत्र Tunic 41
परिस्रवर्ण Parianth 90
पर्व Internode 17
पर्योल्व Pericarp 131
पल्वाइनस Pulvinus 54
पश्चात्पाती Deciduous 92
पत्ताकार (पत्ती) Pinnate 61
पत्रक Leaflet 61
पत्रक्रम Phyllotaxis 68
पत्रनाल Petiole 54
पत्रमयकन्द Bulb 41
पत्राधार Leaf-base 54
पाइरीन Pyrene 138
पादासक्त जड़ Brace-root 28
पामेटीपार्टाइट Palmati-partite 61
पामेटी-फिड Palmati-fid 61
पामेटी-सेक्ट Palmati-sect 61
पार्टिशन Partition 61

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पार्श्वमुखी (स्फोटन) Lateral 98
पार्श्वीय (शाखाक्रम) Lateral 43
पार्श्वीय धरातल Lateral plane 108
पाली एँड्रूस (लिंगचक्र) Poly-androus 99
पालीपेटलस (दलचक्र) Polypetalous 94
पालीसेपलस (पुटचक्र) Polysepalous 91
पिण्ड-नाल Caudicle 100
पिण्ड-शरीरी Thallophyta 12
पिनेटीपार्टाइट Pinnati-partite 61
पिनेटी-फिड Pinnati-fid 61
पिनेटी-सेक्ट Pinnati-sect 61
पुट चक्र Calyx 88
पुट-नलिका Calyx-tube 89
पुट-पत्र Sepal 88
पुनर्गर्भाधान Double Fertili-sation 127
पुंखकोष oohrea 56
पुंख-पत्र Stipule 55
पुंखाकार Sagittate 64
पुष्पदण्ड Rachis 77
पुष्प दण्डिका Pedunole 76
पुष्प ध्वज Soape 77
पुष्प-नाल Pedicel 77
पुष्प-पत्र Floral leaf 53
पुष्पयोनि Gynaecium 88
पुष्पलिंग Stamen 88
पुष्प-व्यूही Inflorescence 76
पुष्पव्यूही फल Composite fruit 133
पुष्प-सूत्र Floral Formula 109
पूर्ण (पुष्प) Complete 96
पूर्णतनासक्त Amplexicaul 57
पूर्वपाती Caducous 92
पेचदार Spiral 91
पेटलायड Petaloid 91
पेपो Pepo 139
पेराइटल Parietal 104
पेरिगाइनस Peri-gynous 89
पेरियंथ Parianth 90
पेलिया Palea 82
पैपिलि ओनेशस Papili-onaceous 94
पोम Pome 139
पोषण Nutrition
पोस्टीरिअर 94
प्रयोग Experiment
प्रसार Dispersal
प्रांकुर Shoot 17
प्राणी-विज्ञान Biology 2

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रामाणिक पत्ती Foliage leaf 53
प्रारम्भिक जड़ Radicle 155
प्रारम्भिक वृद्धिशील तंतु Primary meristem 188
पृष्ठज Ligule 58
प्लेसेंटा Placenta 104

फ

फणाकार Hooded 93
फनेलाकार Infundibuliform 93
फलक Blade or Lamina 54
फाइलोक्लेड Phylloclade 47
फाइलोड Phyllode 75
फ्लोरल डायग्राम Floral diagram 107
" फार्मूला Floral Formula 109

ब

बहु-कोष्ठी (गर्भाशय) Multilocular 103
बहुपर्शुक Multicostate 59
बहुपक्षाकार Decompound 62
बहुपादी Sympodial 40
बहुपादी अक्ष Sympodium 45
बहुवार्षिक Perennial 27
बिदगिडक Spike 79
बिदगिडका Spikelet
बिछत्र लिंग Staminode 98
विभक्ताक्षीय Axile 104
बीजक्रम Placentation 104
बीजवाहक Spermaphyta 11
बीजहीन Cryptogams 11
बीजावरण Testa 128
बीजोद्भेद Seed-germination 156
बेरी Berry 138
बेलनाकार Cylindrical 49
बेसीफिक्स्ड Basifixed 97
ब्रायोफाइटा Bryophyta 12
ब्लूम Bloom 196

भ

भालाकार (पत्ती) Lanceolate 65
भोज्य पदार्थ Food material
भौमिक Underground
भ्रूणकलिका Plumule 155
भ्रूणवनस्पति Embryo plant

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

म

मध्यपर्शुक Mid-rib 59
मधुगंड Nectary 90
मल्टीकार्पेलरी 102
मलत्याग Excretion
मांसल Fleshy
,, विदण्डिक Spadix 79
मांसाहारी Insectivorous
मार्जिनल अथवा धारीय 104
मिथ्या द्विविभक्त False dichotomy 46, 81
मिथ्या व्यवधान False septum 103
मिश्रित (कलिका) Mixed 35
,, (पुष्पव्यूह) ,, 82
मीज़ोकार्प Mesocarp 131
मूलकन्द Root-tuber 43
मूलकाकार (जड़) Fusiform 27
मूलीय (पत्ती) Radical 69
मेरिकार्प Mericarp 136
मृदु Herbaceous
मृदुकंटक Spine 48
मृदुकंटकाकीर्ण Spiny 68
मृदुरोमश Pubescent 68

य

युग्मस्फोटी Legume 135
यूनीसेंकस्वलिटी 120
योनिचक्र Gynaecium 101
योनिसूत्र Style 101
योनिछत्र Stigma 101

र

रचना Structure
रजोपूर्व Protogynous 121
रजोपेटी Ovule 122
रन्ध्र Stomata
रनर Runner 36
रसदार अथवा मांसल (फल) Succulent 134
रहन-सहन Habit
राइज्वायड 30
राइज़ोम 39
रिट्रोसिरेट 67
रूपान्तर Modification
रेखाकार Linear
रेग्मा 137
रेफ 125
रोमगुच्छ Coma 141
रोमश Hairy

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रोमशशुंठिताग्र Emarginate 66
" पुच्छ pappus 92

ल

लट्वाकार (पत्ती) Ovate 63
लम्ब (स्फोटन) Longitudinal 98
लम्बाग्र Acuminate 66
लम्बित Catkin 79
लवण Salt
लहरी Wavy 67
लाइरेट Lyrate 65
लाक्षणिक Characteristic
लिग्यूल 94
लिंगचक्र Androecium 96
" सूत्र Filament 96
" छत्र Anther 96
लैंगिक (संतानोत्पत्ति) Sexual 112
लोमेन्टम 136

व

वज्रकन्द Corm 40
वनस्पतिशास्त्र Botany
वर्ग Natural order
वर्टीसिलास्टर 83
वर्त्तुल (शाखाक्रम) Multiparous 44
वर्त्तुल शाखा-संस्थान Polychasium 46
वर्सेटाइल 97
वल्कपत्र Scale leaf
वहन Conduction
वहिर्जात Exogenous
वहिरुद्भेद Outgrowth
वानस्पातिक कोष्ठ Vegetative Cell 126
" संतानोत्पत्ति Vegetative Reproduction 111
वायव्य विनिमय Gaseous exchange
वायुसिक्त(पुष्प) Anemophilous 115
वार्षिक Annual
वास्तविक (फल) True 130
" (चित्र) Empirical 108
वाह्य External
वाह्याकृतिक विभाग External Morphology 8

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विंगूल 95
विच्छेद Lobe, section
विछत्रलिंग Staminode 98
विनाल (पत्ती) Sessile 54
,, (पुष्प) Sessile 88
विपरीत (पत्रक्रम) Opposite 69
,, (शाखाक्रम) Biparous 44
,, शाखा-संस्थान Dichasium 40
विश्रामकाल (बीज) Resting period 153
विषमाकार (पत्ती) Oblique 64
विषमसंख्यक पत्ताकार Imparipinnate 62
विसर्पी (तना) Creeping 35
विज्ञान Science 1
व्यवहारिक Applied
व्यस्त-ताम्बूलाकार (पत्ती) Ob-Cordate 64
व्यस्त-लट्टवाकार (पत्ती) Ob-Ovate 64
वृक्काकार (पत्ती) Reniform 64
वृत्ताकार (पत्ती) Rounded 64
वृद्धिशील Growing
वृन्तपत्र Bract 77
वृन्तपत्रक Bracteole 77
वृक्ष Tree 37
वृत्तप्रसरिणी (जड़) Epiphytic 28

श

शंक्काकार Conical
शर्करा Sugar
शाक Herb 37
शाखाक्रम Branching
शिशुवनस्पति Seedling
शुक्रपूर्व Protandrous 119
शुष्क (फल) Dry 134
शैवाल वर्ग Algae 12
शोषण Absorption
श्रमविभाग Division of Labour

स

सकर Sucker 36
सचूड़ Umbel 80
संचयतंतु Storage tissue

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

संचित Stored
सदण्डिक Raceme 78
सनाल (पत्ती) Petiolate 54
" (पुष्प) Pedicellate 88
सन्तानोत्पत्ति Reproduction
संधिस्थान Chalaza 123
संयुक्त (पत्ती) Compound 61
" (पुष्पव्यूह) Compound 181
" (विदण्डिक) Compound 82
" (सदण्डिक) Panicle 82
" (समारा) Compound 137
संयुक्तपादी Sympodial 45
संयुक्तयोनि Syncarpous 102
संयुक्तोत्पत्ति Adnation 46
संयोजक Connective 97
संलग्न Valvate 95
संश्लेष Adhesion 99
संसक्ति Cohesion 99
समशिख Corymb 79
समसंख्यक पत्राकार Paripinnate 62
समानान्तर (नाड़ीक्रम) Parallel 59
समारा 134
सलजमाकार (जड़) Napiform 27
सहायक कोष्ठ Help cell 123
साइकोनस 141
साइजोकार्पिक 134
साधारण (पत्ती) Simple 60
" (फल) " 133
सामूहिक फल Aggregate 133
सायथियम 83
सिंजिनीसस 99
सिप्सेला Cypsela 134
सिरेट 67
सिलिकुला Silicula 135
सिलिका 135
सुबुलेट 65
सुपरपोज़्ड 69
सुपरफिशल 105
सुपीरिअर (गर्भाशय) 89
सुषुप्ति Dormancy
सूच्याकार Acicular 65
सूडोकार्प 130

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सूक्ष्मछिद्र Micropyle 123
सूक्ष्मदर्शक यंत्र Microscope
सूत्र Tendril, fibre
सूत्रवत् Fibrous
सूत्रभिन्नता Heterostyly 121
सेकेण्डरीन्यूक्लियस 123
सेचनक्रिया Pollination 113
सेप्टीफ्रेगल 133
सेप्टीसाइडल 133
सेपलायड (दलपत्र) 94
सेल्फस्टेरिलिटी 120
सेंसरमेकनिज्म 148
सैकेट 93
सोरोसिस 140
सौत्रिक Fibrous
स्कारप्वायड 45
स्कूटेलम 159
स्टैंडर्ड 95
स्टोलन 36
स्ट्रोबिलस 141
स्तम्भक Thalamus 88
,, Receptacle 77
स्थलीय (जड़) Terraneous 27
स्थायी Persistent
स्थितिस्थापक Elastic
स्थूलान्तराकृतिक विभाग Anatomy 8
स्पर्ड 92
स्पेथ 79
स्पैथुलेट (पत्ती) 64
स्पोर 112
स्फटिक Crystal
स्फुटविज्ञान Concrete Science 2
स्फोटन Dehiscence 97
स्वतंत्र कलिका Bulbil 34
स्वतंत्र (पुँखपत्र) Free 56
स्वतंत्रयोनि Apocarpous 102
स्वतंत्रात्तीय (बीजक्रम) Free-central 105
स्वावलम्बी (तना) Erect

ह

हस्क 131

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हाइपोकाटिल Hypocotyl 158
हाइपोगाइनस (पुष्प) 89
हाइपोजियल 157
हेलीक्वायड 45
हेस्पेरिडियम 139
हैस्टेट (पत्ती) 64

क्ष

क्षताग्र Truncate 66
क्षुप Shrub 37

त्र

त्रिकोष्ठी (गर्भाशय) Trilocular 103
त्रिपक्षाकार Tri-pinnate 62
त्रिपत्रक Trifoliate 62

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिशिष्ट

पारिभाषिक शब्दोंकी अनुक्रमणिका (द्वितीय भाग)

अ

अटूट बीज-प्रवाह Continuity of germ plasm 329

अतीसवर्ग Ranunculaceae 226

अहिफेनवर्ग Papaveraceae 228

अंतर्कोष्ठीय स्थान Inter-cellular space 187

अंतःचर्म Cortex

अनिश्चिताकार Amorphous

अनोरोबिक Anaerobic 292

अनुकूलन Adaptation

अनुपयोगी (पदार्थ) Excretions 175

अनुप्रस्थ विच्छेद Transverse section

अपराजितादि उपवर्ग Papilionatae 235

अप्रधान (विशेषता) Recessive 339

अभेद्य Impermeable

अम्लिकादि उपवर्ग Caesalpinioideae 235

अर्द्धभेद्य Semi-permeable 260

अवक्षता Repulsion 342

अवशेषांग Vestigial organs

अवक्षेप Precipitate

आ

आकस्मिक परिवर्तन Mutation 337

आक्ज़ानोमीटर Auxanometer 305

आक्सीकरण Oxidation

आम्लिक Acidic

आर्कीक्लैमिडी Archichlamydeae 225

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आर्द्रताजन्य अवयव-गति Hydro-tropic Movement 312
आस्मोटिक प्रेशर Osmotic pressure 260
आस्मोसिस 259

इ

इक्सोडर्मिस Exodermis 208
इटिओलेटेड Etiolated 281
इड Id 344
इएटरकैलरी Intercalary 188
इएटामालीक्यूलर Intra-molecular 292
इट्रास्टेलर (तंतु) Intra-stelar 194
इएडोडर्मिस Endodermis 195
इन्फीरियर पेलिया Inferior palea 253
इपीफाइट Epiphyte 241
इपीब्लेमा Epiblema 208
इरोबिक (श्वसन) Aerobic 292

उ

उड-पैरेनकाइमा Wood-parenchyma 195
उत्तेजना Stimulus 307
उत्तेजना-ग्राहक भाग Perceptive region 314
उत्तेजितत्व Irritability 170
उत्थानात्मक द्रव्यान्तर Anabolism 274
उन्नतविन्दु Bordered pit 166
उपकरण Factor
उपजाति Species 223

ए

एककोष्ठी (तंतु) Coeno-cyte 185
एकदला Monocotyledon 250
एरण्ड वर्ग Euphorbiaceae 239
एल्यूरोन (कण) Aleurone grain 178

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ऐ

ऐब्सिस लेअर Abscise layer 219

क

कटुका वर्ग Scrophulariaceae 244

कलेक्टिंगकोष्ठ Collecting cell 215

कामन बंडिल Common bundle 198

कार्कतंतु Cork tissue 202

कार्कोत्पादक तह Phellogen 202

कार्पासवर्ग malvaceae 231

कार्बन-एसिमिलेशन 275

कालाइन बंडिल Cauline bundle 198

काष्ठ पैरेनकाइमा Wood Parenchyma 195

काष्ठसार Heart wood (Duramen) 201

काष्ठ सूत्र Wood fibre 195

कीमोट्रापिज्म Chemotropism 313

कीमोसिन्थेसिस Chemo-synthesis 283

केरिओकाइनेटिक Karyo-kinetic 183

कैपिलरी जल Capillary water 259

कैम्बियम Cambium 195

कैरोटिन (पीतवर्णमूल) Carotin 174

कैलस Callus 191, 206

कोणीय-स्फटिक समुदाय Sphaeraphide 177

कोन Cone 141

कोलेनकाइमा Collenchyma 189

कोष्ठ Cell 161

कोष्ठ-जीवनमूल Cytoplasm 167

कोष्ठ-पट्ट Cell plate 182

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कोष्ठ-रस Cell-sap 171
कोष्ठरसारोह Ascent of sap 271
कोष्ठावरण Cell-wall 161
कंटकारी वर्ग Solanaceae 243
क्यूटीन Cutin 162
क्यूटीन-पट्ट Cuticle 196
क्यूटीनयुक्त तंतु Cutinised tissue 190
क्रिया-विज्ञान Physiology 255
क्रोमेटीन Chromatin 172
क्रोमोज़ोम Chromosome 181
क्रोमोप्लास्ट Chromoplast 174
क्लिनोस्टैट Klinostat 310
क्लोरोफाइलेज Chlorophyllase 281
क्लोरोफिल Chlorophyll 174

ख

खाद्यानुपयोगी (पदार्थ) Secretions 175
खाद्योपयोगी (पदार्थ) Plastic 175

ग

गटेशन Guttation 266
गर्जरादि वर्ग Umbelliferae 237
गुम्बज Dome
गोधूम वर्ग Gramineae 251
गौंड़ अंतःचर्म Phelloderm 202
गौंड़ नासिकाछिद्र Lenticel 203
गौंड़ वृद्धिशील-तंतु Secondary meristem 188
गौंड़ वृद्धि Secondary growth
गंड-तंतु Glandular tissue 192
गंड-वल्क „ scale
ग्रन्थि Tubercle 284
ग्रैंड पीरिअड आफ़ ग्रोथ Grand period of growth 305

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

घ

घोल Solution

च

चक्रगति Rotation 170
चक्राकार (वृद्धि) Annular 165

ज

जम्बीर वर्ग Rutaceae 233
जल-गंड Water glands 217
जल-छिद्र Water stomata 216
जल-त्याग Transpiration 266
" मापक यंत्र Potometer 269
जलधारा Transpiration Current 271
जलाकर्षक Osmotic
जाति Genus 223
ज़ाइमेज़ Zymase 296
ज़ाइलम Xylem
जीन Gene 344
जीवन-मूल Protoplasm 161
जीवित कोष्ठांग Protoplast 161
जैन्थोफिल Zanthophyll 174
जोड़ा (विशेषताओं का) Allelomorph 339

ट

टर्गर का दबाव Turgor pressure 260
" " तनाव Turgor Tension
टाइलोसेस Tyloses 201
टोरस Torus 166

ड

डिटर्मिनर Determiner 344

त

तहवार वृद्धि Stratified growth 165

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तारकाकार (रश्म्याकार) Stellate 164
तुलसी वर्ग Labiatae 246
तंतु Tissue 186
तंतु संस्थान Tissue-system 186

द

दुग्धवाहक तंतु Laticiferous tissue 192
दृढ़कारी तंतु (पौष्टिक) Strengthening tissue
द्वि-दली Dicotyledon 225
द्वि-पार्श्वक्रमी Bi-collateral 198

ध

धारीय जीवनमूल Ectoplasm 171

न

नस्ल Variety 223
नत्रजन Nitrogen
नत्रजनीय Nitrogenous
नाइट्रोजन-एसिमिलेशन Nitrogen assimilation 283
नासिका छिद्र Stomata 214
निद्रा-गति Nictinastic movement 312
न्यूक्लिओलस Nucleolus 181
न्यूक्लियर डिस्क Nuclear disc 183
„ स्पिंडिल Nuclear spindle 183
न्यूक्लियस Nucleus 172

प

पतनात्मक द्रव्यान्तर Katabolism 275
पर्पटवर्ग Fumariaceae 229
परजीवी (प्राणी) Parasite 282
परम्परा-प्राप्ति Heredity 337

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परान्नयी (प्राणी) Parasite 282
परिचक्र Pericycle 197
परिवर्त्तन Variation
पलाण्डुवर्ग Liliaceae 250
पार्श्वक्रमी Collateral 198
पाषाण-कोष्ठ Stone cell 166
पेरिब्लेम Periblem 194
पैरेनकाइमेटस (कोष्ठ) Parenchymatous 164
पैरेनकाइमा Parenchyma 188
पैलिसेड तंतु Palisade tissue 215
प्रकाशजन्य अवयवगति Phototropic movement 310
प्रतिक्रिया Reaction
प्रतिक्रिया-शील भाग Motor region 314
प्रत्यावर्त्तन Reversion 342
प्रधान (विशेषता) Dominant 339
प्रवर्त्तक Enzyme
प्राकृतिक चुनाव Natural selection 330
प्रारम्भिक वृद्धिशील तंतु Primary meritem 188
पृथक्करण Segregation 339
प्रेरित अवयव-गति Tropic movement 308
प्रेरितगति Induced movement 306
प्रोटीन स्फटिकांश Protien crystalliod 178
,, गोलांश Protien globoid 178
प्रोसेनकाइमेटस (कोष्ठ) Prosenchymatous 164
प्रोसेनकाइमा Prosenchyma 189
प्लीरोम Plerome 194

फ

फर्मेंटेशन Fermentation 295

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

फेलोजन Phellogen 202

ब

बब्बूलादि उपवर्ग Mimoseae
बसा Fat
बहु-कोष्ठी Multicellular

भ

भूम्याकर्षण Gravity
भूम्याकर्षण-जन्य अवयव-गति
Geotropic movement 308
भौगोलिक वितरण Geographical Distribution 323

म

मध्य पट्ट Middle lamella 183
मंजिष्ठादि वर्ग Rubiaceae 241
माइकोराइज़ा Mycorhiza 283
मूलतंतु Ground tissue 193
मूलवीज Germ-plasm 325
मेडुलरी रे Medullary Ray 195
मेंडेलिज्म Mendelism 337
मोरवेल जाति Clematis 226
म्यूसिलेज 162
मृतजीवी Saprophyte 282
मृदुकाष्ठ Sap-wood अथवा Alburnum 201

र

रंजक पदार्थ Pigment
रश्म्याकार Stellate 164
रसवाहक तंतु-संस्थान
Vascular System 193
रसवाहक कोष्ठ समूह
Vascular bundle 194
रसवाहक नलिका Vessel अथवा Tube
रसस्राव Bleeding 268
रसारोहण तंतु Tracheal tissue 190

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रसारोहण नलिका Tracheae 190
" कोष्ठ Trachied 190
रसावरोहण तंतु Sieve-tube-tissue 191
" नलिका Sieve tube
रक्षककोष्ठ Guard cell 214
रक्षण तंतु-संस्थान Epidermal System 193
रुटप्रेशर 265
रेप्लम Replum 230
रेस्पिरेटरी कोशेंट 290

ल

लघ्वीकरण विधि (संतानोत्पत्ति) Reduction Division 183
लाइसीजेनस 187
लाडीफ्यूल 253
लिग्निन 162
लिनिन 172
लुप्तकड़ी Missing link 322
लुप्तप्राणी शास्त्र Palœontology
ल्यूकोप्लास्ट 173

व

वक्रगति Circulation 170
वर्गीकरण Classification 220
वर्णजनक Chromatophore 167
वर्णधारक Plastid
वर्णमूल Pigment 174
वर्णसंकर Hybrid
वाटरकल्चर के प्रयोग
" (Experiment) 257
वार्षिकचक्र Annual Ring 200
वाह्यचर्म Epidermis 194
वाह्यचर्म-जनक Dermatogen 194
वाष्पीभवन Evaporation

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विकासवाद Theory of Evolution 317
विन्दुमय Pitted 165
विश्लेषण Analysis
विशिष्टोत्पत्तिवाद Theory of Especial creation 317
विशेषता Character 341
बीजप्रवाह Continuity of Germ-plasm 329
व्यापन Diffusion
वृद्धि Growth 300
वृद्धिशील (तंतु) Meristematic 187
„ (वंडिल) Open 198

श

शतपत्रीवर्ग Compositae 247
शिम्बीवर्ग Leguminosae 234
शूक Awn
शोषण दबाव Suction pressure 263
श्वसन क्रिया Respiration

स

संक्रमण Inheritance 333
संतुलन Balance
संयुक्तकण (स्टार्च) Compound Grain 180
संयुक्त (वंडल) Conjoint 198
संयोगविधि (संतानोत्पत्ति) Conjugation 185
संवहन Transmission
संवद्धता Linkage 342
संसक्ति का सिद्धान्त Cohesion Theory 272
संस्थान System 193
समपृष्टी Iso-bilateral 217
सर्षपवर्ग Cruciferae 230
सहकारी कोष्ठ Companion cell 192
साइज़ोजेनस 187

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सिक्रीशन 266
सिम्पेटली 240
सिस्टोलिथ 163
सीमास्थापक उपकरण Limiting factor 278
सीव नलिका Sieve tube 191
सीव-पट्ट Sieve plate
सुबेरीन 162
सुबेरीनयुक्त तंतु Suberized tissue 190
सुपीरियर पेलिया 253
सूच्याकार स्फटिक-समुदाय Raphide 177
सेंट्रोस्फीयर 172
सेलुलोज़ 162
स्केलरीफार्म 165
स्क्लेरेनकाइमा 189
स्थानान्तर Translocation
स्थायी (तंतु) Permanent 188
स्पंजी (तंतु) 215
स्पर्शजन्य अवयवगति Haptotropism
स्फटिकाकार Crystalline
स्फुरणविधि (संतानोत्पत्ति) Rejuvescence 185
स्वेच्छा (गति) Spontaneous 306

ह

हरितवर्ण वाहक Chloroplast 173
हाइड्रोजन-ग्राहक Hydrogen-acceptor 294
हेटेरोज़ाइगस 341
होमोज़ाइगस 341

क्ष

क्षारिक Alkaline

त्र

त्रिपार्श्वाकार Prismatic

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रारम्भिक वनस्पति-शास्त्र

प्रस्तावना

विज्ञान—यह भौतिक संसार सजीव और निर्जीव दो प्रकार के पदार्थों से बना है। इनमें अधिक संख्या बहुत ही साधारण संगठन के पदार्थों की है, परन्तु शेष दूसरे पदार्थों में बाहुल्य [illegible] आवश्यक जटिलता इतनी अधिक है कि वे रूप [illegible] रचना में अपना-अपना स्पष्ट और स्वतन्त्र व्यक्तित्व [illegible]। अतः पदार्थ-ज्ञान प्राप्त करनेवाले विद्वानों को प्रारम्भ में [illegible] अलग-अलग अध्ययन करना पड़ता था। परन्तु ज्यों-ज्यों उनका अध्ययन विस्तृत और सूक्ष्म होता गया, त्यों-त्यों उन्हें भिन्न-भिन्न पदार्थों के रूप, आकृति तथा सामान्य व्यवहार आदि में समानतायें प्रकट होने लगीं। इसका यह परिणाम हुआ कि अब वे सांसारिक पदार्थों का धीरे-धीरे वर्गीकरण करने लगे। उनकी समानताओं और विभिन्नताओं का निरीक्षण करके उनको भिन्न-भिन्न वर्गों, उपवर्गों, जातियों तथा उपजातियों में विभक्त करने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रयास में प्राकृतिक नियमों की व्यापकता भी धीरे-धीरे प्रमाणित होने लगी। इस परिवर्तित अध्ययन-विधि से प्राप्त किया हुआ पदार्थ-ज्ञान क्रमबद्ध और श्रेणीबद्ध होने के कारण 'विज्ञान' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ज्यों-ज्यों सांसारिक पदार्थों का परिचय बढ़ता गया और ज्यों-ज्यों उनके द्रव्य, आकार, रचना तथा उनमें होनेवाले परिवर्तनों की जानकारी बढ़ती गयी, त्यों-त्यों विज्ञान की भिन्न-शाखाओं का आविर्भाव होता गया। जिन-जिन विज्ञानों ने द्रव्य (Matter) को अपना विषय बनाया, वे स्फुट-विज्ञान (Concrete Sciences) और गणित, दर्शन आदि विज्ञान जिनका केवल विचार, भावना आदि से सम्बन्ध था, वे निगूढ़-विज्ञान (Abstract) के नाम से प्रसिद्ध हुए। स्फुट विज्ञानों में फिर दो श्रेणियां की गयीं। एक श्रेणी में केवल जड़ पदार्थ अध्ययन के विषय बनाये गये, इसलिये उसे जड़-विज्ञान (Physical Science) का नाम दिया गया। इसके अन्तर्गत रसायन-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र, यन्त्र-विद्या तथा ज्योतिष आदि भिन्न-भिन्न विज्ञान सम्मिलित हैं। दूसरी श्रेणी में जीवित पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाले प्राणी-विज्ञान (Biological Sciences) सम्मिलित किये गये हैं। इसके अन्तर्गत वनस्पतिओं तथा जन्तुओं से सम्बन्ध रखने वाले क्रमशः वनस्पति-शास्त्र तथा जन्तु-शास्त्र हैं।

सजीव और निर्जीव पदार्थों में भेद—इन दोनों प्रकार के पदार्थों की विभिन्नता केवल उस पदार्थ के कारण है जो केवल सजीवों में ही पाया जाता है। जीवन का एकमात्र आधार होने से यह जीवन मूल (Protoplasm) कहा जाता है। जीवन-युक्त पदार्थों की विशेषतायें इसी पर निर्भर हैं। यह

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पदार्थ आत्म-रचयिता तथा आत्म-संचालक कहा जाता है, क्योंकि शोषण द्वारा यह बाहरी पदार्थों को अपने अन्दर लेकर अपना ही निर्माण करता रहता है, अतः सजीव पदार्थों की वृद्धि भीतर से होती रहती है। स्फटिक जैसे निर्जीव पदार्थों की भी वृद्धि होती है, पर वह भीतर से न होकर बाहर से होती है। जीवनमूल बाहर से आये हुए तथा अपने ही बनाए हुए पदार्थों को तोड़कर जो शक्ति प्राप्त करता है, उसीसे यह अपनी सारी क्रियायें करता है, अतः यह आत्म-संचालक कहा जाता है। जीवन-मूल एवं सजीव पदार्थों की विशेषताओं में एक सन्तानोत्पादन भी है जिससे वे अपने समान कई सजीव पदार्थों को उत्पन्न कर सकते हैं। जीवन मूल में गति करने की तथा ताप और प्रकाश आदि बाह्य-उत्तेजनाओं (External Stimuli) से उत्तेजित हो उठने तथा उनके प्रतिकार करने की भी शक्ति होती है जिससे निर्जीव सर्वथा वञ्चित रहते हैं।

जन्तु तथा वनस्पति—यद्यपि जन्तुओं और वनस्पतिओं के लिये भिन्न भिन्न विज्ञान हैं, तथापि इन दोनों प्रकार के पदार्थों के रूप, आकृति, तथा जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं में इतना सादृश्य होता है कि कभी २ उनको एक दूसरे से अलग करना कठिन हो जाता है, तब भी, आगे लिखे लक्षणों के आधार पर उनको अलग-अलग श्रेणी में विभक्त करने का प्रयत्न किया गया है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वनस्पति

(१) थोड़े से क्षुद्र जल में होने वाले पौधों के अतिरिक्त सभी पौधे स्थानान्तर कराने वाली गति-शक्ति से वंचित रहते हैं।

(२) वनस्पति कोष्ठ (Cell) दृढ़ आवरण से युक्त होता है।

(३) पौधे अपने लिये खाद्य पदार्थ प्रायः स्वयं बना लेते हैं। इसके लिये वे पृथ्वीसे सामान्य खनिज पदार्थ तथा वायु से CO_2. (कार्बन डाइ आक्साइड गैस) लेते हैं। अन्यथा वे स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने की क्षमता रखते हैं।

(४) वनस्पतिओं में लम्बाई की वृद्धि केवल तनों और जड़ों के अग्रभागों पर होती है, और उनके जीवन काल के अन्त तक होती रहती है।

जन्तु

(१) स्पञ्ज, सी एनी मोन आदि कुछ जन्तुओं को छोड़कर सभी जन्तु गति करके स्थान बदलते रहते हैं।

(२) ऐसे आवरण जन्तु कोष्ठों में नहीं होते।

(३) जन्तु इन साधारण पदार्थों से अपने लिये भोज्य पदार्थ नहीं बना सकते। इसके लिये उन्हें अन्य जन्तुओं तथा वनस्पतियों पर निर्भर रहना पड़ता है। वनस्पति-विहीन संसार में इनका निर्वाह नहीं हो सकता।

(४) जन्तुओं में ऐसी वृद्धि सर्व प्रान्तिक वृद्धि से होती है और उनको स्वाभाविक मृत्यु के बहुत पहले बन्द हो जाती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इन लक्षणों की सहायता लेने पर भी, कुछ अति क्षुद्र सजीव पदार्थों को वनस्पति अथवा जन्तु बतलाना बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि उनमें उपर्युक्त विभेदक लक्षणों का पूर्ण विकास नहीं हुआ रहता। इसलिये उन्हें एक ओर वनस्पति विज्ञान वाले अपनाते हैं, और दूसरी ओर जन्तु-शास्त्र वाले जन्तु बतलाते हैं। विकासवाद (Theory of Evolution) के अनुसार ऐसे जीवों का स्थान विकास-क्रम में सबसे नीचा माना गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त सजीव पदार्थों का विकास इन्हीं अथवा इनके सदृश ही अन्य प्राणियों से हुआ होगा, जो सर्व प्रथम उत्पन्न हुए थे। परिस्थिति के अनुसार उनकी सन्तानों में क्रमशः परिवर्तन आने लगे। वे परिवर्तन दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में होते गये। एक दिशा में होने वाले परिवर्तनों से जन्तु-संसार की, और दूसरी दिशा में होने वाले परिवर्तनों से वनस्पति-संसार की सृष्टि हुई। जन्तुओं और वनस्पतिओं के संगठन तथा जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली मुख्य-मुख्य घटनाओं में जो सादृश्य दिखायी पड़ता है, वह इसी उपर्युक्त वंशोत्पत्ति (पूर्वजोत्पत्ति) की एकता के कारण है।

'जन्तुओं तथा वनस्पतिओं में निम्नलिखित मुख्य-मुख्य समानतायें हैं:—

(१) दोनों का शरीर एक अथवा अनेक सूक्ष्म कोष्ठों का बना होता है, जो विभक्त होकर अपनी संख्या वृद्धि करते रहते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(२) उनके जीवन की मुख्य घटनायें समान व्यापक नियमों के अनुकूल घटती हुई देखी जाती हैं। पोषण, सन्तानोत्पादन तथा वृद्धि सम्बन्धी सभी क्रियायें दोनों में प्रायः एक ही तरह की होती हैं। श्वसन, गति तथा उत्तेजितत्व की शक्ति प्रायः दोनों में एक ही तरह से काम करती हुई मालूम होती है।

(३) दोनों शरीर में रहनेवाला मूल पदार्थ जिसे जीवन-मूल कहते हैं एकही प्रकार का होता है।

वनस्पति-विज्ञान तथा इसकी उपयोगिता।

प्रत्येक विज्ञान के दो पक्ष होते हैं, शुद्ध और व्यवहारिक। शुद्ध विज्ञान का अध्ययन केवल विज्ञान के लिये किया जाता है। इसका उद्देश्य नयी घटनाओं तथा अज्ञात बातों की खोज करना है, चाहे मानव-जीवन में उनकी कुछ भी उपयोगिता न हो। इसके विपरीत, व्यवहारिक विज्ञान में केवल उन घटनाओं का तथा तत्सम्बन्धी उस वैज्ञानिक सत्य का समावेश होता है, जो मानव-जीवन को सुखमय बनाने में भाग लेते हैं। इसका एकमात्र अभिप्राय मनुष्य के सुखसाधनों को बढ़ाना और उनको उत्तरोत्तर पूर्ण बनाना होता है। परन्तु हमें यहां इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि वर्तमान व्यवहारिक विज्ञानों की उन्नति वस्तुतः शुद्ध विज्ञानों की वृद्धि से ही हुई है। आजतक जितने भी चमत्कारपूर्ण युग-प्रवर्तक अन्वेषण कृषि, चिकित्सा, वैद्युत तथा यान्त्रिक विज्ञानों के क्षेत्र में हुए हैं, वे शुद्ध विज्ञान की ही सम्पत्ति हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वनस्पति विज्ञान का व्यवहारिक पक्ष प्राणीमात्र के लिए बहुत ही आवश्यक है। उनके खाद्य पदार्थ पौधों से ही आते हैं। वर्तमान सभ्यता के कितने आवश्यक उपकरण वनस्पति संसार से ही प्राप्त होते हैं। कोयला, कागज, कपड़ा, काष्ठ, नाना प्रकार के तैल, रबर, रेजिन, चिकित्सोपयोगी काष्टौषधियां पौधों से ही प्राप्त होती हैं। इस पृथ्वी पर कितने ऐसे भाग हैं जहां समय-समय पर वानस्पतिक वृद्धि के प्रतिकूल अवस्थायें उपस्थित होती रहती हैं। वर्षाभाव, उद्भिद् रोग आदि के कारण वहां खाद्योपयोगी अन्नों की पैदावार नहीं होने पाती। कितनी ही जातियां अपना पेट भरकर भी अतृप्त रहती हैं, और अपने सुख साधनों के बढ़ाने की चेष्टा में अन्य जातियों के दुख का कारण बन जाती हैं। अकाल पीड़ितों का क्रन्दन, असन्तोषी सम्पन्न-जातियों की अधिकार-चेष्टा तथा बढ़ती हुई जन-संख्या की अनिवार्य मांग ने ऐसा घोर मानव-संघर्ष पैदा कर रखा है, जो दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। इन्हीं कारणों से बाध्य होकर वनस्पति-शास्त्र को व्यवहारोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया, जिसका यह परिणाम हुआ है कि आज दिन कृषि-विज्ञान, उद्यान-विद्या, उद्भिद्रोग विज्ञान तथा कीटाणु विज्ञान का आविर्भाव तथा इतना विकास हो गया है।

वनस्पति शास्त्र के विभाग। जन्तुओं की तरह पौधों का भी अध्ययन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से किया गया है,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तदनुसार इस विज्ञान के कई विभाग किये गये हैं। (१) उद्भिद्वर्गीकरण (Classification) इसका यह लक्ष्य होता है, कि पौधों के अन्दर उस पारस्परिक सम्बन्ध का निश्चय किया जाय जिससे उनकी उत्पत्ति तथा विकास-क्रम का पता चले। इतना निश्चय हो जाने पर उनका वैसा ही सम्बन्ध-सूचक वैज्ञानिक नाम रखकर उसकी जाति, वर्ग तथा श्रेणी का पूर्ण रूप से निश्चय कर दिया जाय। (२) उद्भिदाकृतिक विभाग (Morphology) इसका सम्बन्ध पौधों के आकार तथा रचना से होता है। इसके अन्तर्गत कई छोटे विभाग हैं। वाह्याकृतिक-विभाग (External morphology) में केवल बाहरी आकार तथा अवयव-विन्यास का अध्ययन होता है, और अन्तराकृतिक विभाग में पौधों की आन्तरिक रचना पर ध्यान दिया जाता है। इससे पौधों के तंतु (Tissues), तंतु-विन्यास तथा कोष्ठों का ज्ञान होता है। तंतुज्ञान को पूर्ण बनाने के लिये पहले उनकी स्थूल रूप से परीक्षा की जाती है, और मुख्यतः उनके तंतुविन्यास का पता लगाया जाता है। इसके लिये स्थूलान्तराकृतिक विभाग (Anatomy) अलग सूक्ष्म दर्शक यन्त्र (Microscope) की सहायता से तंतुओं की सूक्ष्म रूप से परीक्षा करके कोष्ठों तक का हाल जानने के लिये आभ्यन्तराकृतिक विभाग (Histology) अलग है। (३) उद्भिद्क्रिया-विज्ञान के विभाग से पौधों की जीवन सम्बन्धी क्रियाओं का ज्ञान होता है। इससे यह जाना जाता है कि

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पौधे CO_2. खनिज लवण आदि अनिर्मित खाद्य-पदार्थ किस तरह प्राप्त करते हैं, उन्हें लेकर वे कैसे उच्च श्रेणी के भोज्य पदार्थों का निर्माण करते हैं। इन पदार्थों में फिर कैसे रासायनिक परिवर्तन होते हैं, और उनके विश्लेषण से पौधे शक्ति किस प्रकार प्राप्त करते हैं ? इस प्रकार अपनी शारीरिक वृद्धि करते हुए वे किस प्रकार सन्तानोत्पत्ति करते हैं ? क्रिया-विज्ञानवाले, पौधों की क्रियाओं को भौतिक तथा रासायनिक विज्ञानों के मूल नियमों के अनुकूल प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं। उन लोगों ने पौधों के जीवन आधार तथा परिस्थिति (Environment) के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिये एक और स्वतंत्र विभाग कर रक्खा है, जिसे परिस्थिति विज्ञान (Ecology) कहते हैं। इसके द्वारा वे इस बात के जानने का प्रयत्न करते हैं कि जल, ताप, प्रकाश तथा मिट्टी आदि उपकरणों से परिस्थिति कितने भाग में सम्पन्न हो कि उसमें अमुक पौधा अपनी अमुक अथवा अभिवांछित वृद्धि कर सके।

वनस्पतिओं की व्यापकता तथा उनका वर्गीकरण

इस पृथ्वी पर वर्तमान समय में पौधों की भिन्न-भिन्न उप-जातिओं (Spceies) की संख्या लगभग पौने दो लाख के है। इनके अतिरिक्त बहुत सी ऐसी उपजातियां भी हैं, जो प्राचीन काल में थी, पर अब उनका लोप हो गया है। उनमें अनेक ऐसी हैं, जो अब तक पृथ्वी के गर्भ में जीर्णविशेष अवस्था में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पड़ी हुई पायी जाती हैं, । यदि हम अपनी ही बस्ती के चारो ओर भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधों की जांच करें तो उनके निवास स्थान (Habitat) जीवन, क्रम, कद तथा रचना आदि में बड़ी भिन्नता देखने में आयेगी । उनमें कुछ वट-वृक्ष की तरह बहुत विशाल, और कुछ जल की काई की तरह बहुत ही छोटे होंगे । कुछ धतूर की तरह पुष्पवाले और कुछ हंसराज की तरह बिना फूल के होंगे । कुछ उपजाऊ खेतों में, कुछ कंकरीली पथरीली ऊसर भूमि में तथा कुछ जलाशयों के समीप नम जमीन में उगे हुए पाये जायंगे । इसी प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर शायद ही ऐसा कोई स्थान होगा, जहां किसी न किसी प्रकार की वनस्पति न पायी जाती होगी । मीठे तथा खारे जल खण्डों में, बर्फीली जमीन में, मिट्टी की ऊपरी तहों में (शैवाल, आश्रित तथा कीटाणु वर्ग की सूक्ष्म वनस्पतियां), वायु मंडल में (हलके बीज तथा फल पराग कण तथा अनेक प्रकार के कीटाणु) तथा दूसरे पौधों और जन्तुओं के ऊपर या अन्दर आश्रित रूप में भी अनेकों वनस्पतियां पायी जाती हैं । हिमालय जैसे पहाड़ों के उच्च शिखरों पर, दोनों ध्रुवों के पास, साइवेरिया के जांगल्य-प्रान्तों में, जहां तापक्रम -८० फ० तक आ जाता है, तथा गर्म सोतों में जिनमें बहुतों का तापक्रम १७० फ० तक होता है, बहुत सी वनस्पतियां पायी जाती हैं ।

वनस्पति विज्ञान का विद्यार्थी पौधों की विभिन्नताओं तथा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उनके आधिक्य को देखकर प्रारम्भ में घबड़ा सा जाता है, परन्तु जब वह उनका तुलनात्मक अध्ययन करके किसी वैज्ञानिक आधार पर उनका वर्गीकरण प्रारम्भ करता है, और उनकी समानताओं तथा विभिन्नताओं का निरीक्षण करके उन्हें भिन्न-भिन्न वर्णों तथा जातिओं में विभक्त कर लेता है, तब उसे वनस्पतिओं का अध्ययन अधिक सुगम और रोचक प्रतीत होने लगता है ।

'आकृतिक समानता तथा विकास-क्रम के आधार पर वनस्पति संसार निम्नलिखित मुख्य-मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया गया है:—

(१) बीजवाहक (Spermaphyta) बीज तथा फूल फल वाले

(अ) नग्नबीजी (Gymnosperm) जिनके बीज नग्न होते हैं, जैसे देवदारु, सेडार आदि ।

(ब) आवृतबीजी (Angiosperm) सामान्य पुष्पवाले पौधे जिनका बीज गर्भाशय के अन्दर बनता है ।

(i) द्विदली (Dicotyledons) जिनके बीज में दो बीजपत्र (Cotyledons) होते हैं, जैसे अरहर, एरंड ।

(ii) एक दली (Monocotyledon) एक बीज पत्र वाले जैसे जौ, गेहूँ, केला, बांस, आदि ।

(२) बीज हीन (Cryptogams) जिनमें बीज, फूल तथा फल नहीं होते (वंशानुगत स्वभाव से ही) ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(अ) अबीजोत्कृष्ट (Pteridophyta) विकसित नाड़ी तंतु युक्त पौधे, जिनमें हंसराज आदि फर्न नाम के पौधे हैं।

(ब) ब्रायोफाइटा (Bryophyta) जिनमें पत्ती तथा तने का विकास है, पर जड़ों का नहीं जैसे दीवाल की काई।

(स) पिण्ड शरीरी (Thallophyta) सबसे क्षुद्र श्रेणी के पौधे जिनमें अंगों का विकास नहीं है, बल्कि उनका शरीर पिण्डवत् (Thalloid) है, जैसे जल-काई, छत्रक, शैवाल आदि।

(i) कीटाणुवर्ग (Schizomycete) रोग-वाहक कीटाणु।

(ii) शैवाल वर्ग (Algae) प्रायः क्षुद्र जलके पौधे

(iii) आश्रित वर्ग (Fungi) क्लोरोफिल से वंचित पौधे जिनमें पराश्रयी (Parasite) और मृताश्रयी (Saprophyte) दोनों हैं, जैसे छत्रक, राई की कज्जली।

वनस्पतिओं की रचनात्मक जटिलता तथा श्रम-विभाग—उपर्युक्त वर्गी-करण वनस्पतिओं की रचनात्मक जटिलता (Differentation of Structure) तथा श्रम विभाग (Division of labour) के आधार पर किया गया है, इसीलिये यह विकास क्रमानुसार और स्वाभाविक माना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जाता है। पिण्ड शरीर वनस्पतिओं के स्थान विकास क्रम में सबसे नीचा माना गया है—अर्थात् इसी श्रेणी की वनस्पतिओं से सम्पूर्ण वनस्पति संसार की क्रमशः उत्पत्ति हुई है। इसी लिये इनमें रचनात्मक जटिलता तथा आत्म विभाग बहुत निम्न कोटि का होता है। पत्ती, जड़ तथा तना आदि का विकास नहीं हुआ रहता। इनमें कितने तो एक ही कोष्ठ के होते हैं, और उनका सब कार्य उसी एक कोष्ठके द्वारा होता है। बहुतों में कोष्ठ समूह अथवा तंतु (Tissue) बने होते हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भिन्न-भिन्न तंतु उनमें भी नहीं होते। तंतु उस कोष्ठ समूह को कहते हैं, जिसके सब कोष्ठ न्यूनाधिक एक प्रकार के हों, और एक ही कार्य करते हों। ऐसे तंतु भी पिण्ड शरीर वनस्पतिओं में अधिक नहीं होते। ब्रायोफाइटा श्रेणी के पौधों में इनकी अपेक्षा रचना-भेद और श्रम-विभाग ऊंची कोटि का होता है, क्योंकि आन्तरिक रचना भेद और तंतु विकास के कारण उनमें तना तथा पत्तिओं का न्यूनाधिक विकास देखने में आता है। टेरिडोफाइटा श्रेणी की वनस्पतिओं में तंतु विकास इतना अधिक हो जाता है कि उनमें जड़, तना तथा पत्ती तीनों का पूर्ण विकास हुआ रहता है, और आन्तरिक रचना में नाड़ी, तंतु तथा सन्तानोत्पादक भागों में बहुत उच्च कोटि का विकास हो गया रहता है। बीज वाहक पौधों में तंतु विकास और श्रम विभाग जैसे पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, और भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भिन्न-भिन्न अंगों तथा तंतुओं का पूर्ण विकास हो जाता है— इनमें ऐसे सन्तानोत्पादक भागों का विकास हो जाता है जिन्हें पुष्प कहते हैं, जिनके द्वारा सन्तानोत्पत्ति बहुत सुगम और श्रेष्ठ-कोटि की हो जाती है।

वानस्पतिक यंत्र की कार्य प्रणाली तथा मनुष्य कृत यंत्र से उसकी तुलना—किसी भी पौधेमें शारीरिक विकास तथा रचना भेद चाहे जिस कोटि का हो, उसके कार्य दो तरह के होते हैं, (१) वानस्पतिक (२) सन्तानोत्पत्ति सम्बन्धी। वानस्पतिक, अर्थात् अपने निजी शरीर से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाओं में जिनके द्वारा वे अपनी शारीरिक वृद्धि तथा अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने में समर्थ होते हैं; पृथ्वी, जल तथा वायु मंडल से खाद्य पदार्थों का शोषण, आवश्यकतानुसार शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में निर्मित तथा अनिर्मित पदार्थों का वितरण, खाद्य पदार्थों का निर्माण, भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये उन्हीं निर्मित खाद्य पदार्थों का विश्लेषण तथा जल का शोषण एवं त्याग आदि क्रियायें मुख्य हैं। इसके विपरीत, सन्तानोत्पत्ति सम्बन्धी क्रियाओं से वे केवल अपनी वंश परम्परा को स्थायी बनाने और वंशवृद्धि करने में समर्थ होते हैं। पौधा इन्हीं कार्यों को करता हुआ एक जीवित यंत्र के तुल्य समझा जाता है, जो ऐसे रासायनिक पदार्थों का निर्माण करता है, जिनकी उपयोगिता केवल उसकी शारीरिक वृद्धि तथा सन्तान के लिये न होकर अन्य पौधों तथा जन्तुओं के लिये भी होती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मनुष्य कृत यन्त्र की अपेक्षा इस यंत्र में यह विशेषता होती है कि वह अपने ही जैसे अन्य छोटे-छोटे यंत्रों को भी उत्पन्न कर देता है, जो कालान्तर में वैसे ही हो जाते हैं। जिस तरह एक निर्जीव यंत्र के भिन्न-भिन्न अवयव इस प्रकार क्रमबद्ध रहते हैं, कि यन्त्र के चालू करने पर वे स्वयं अपना-अपना काम करने लगते हैं, उसी प्रकार इस यंत्र के अवयव भी एक निश्चित क्रम में रहकर ही अपना-अपना कार्य कर सकते हैं। जैसे यदि किसी पौधों को जड़ से उखाड़ कर उसे उलटा जमीन में गाड़ दें, जिससे पत्तियां जमीन के अन्दर हो जायं, और जड़ प्रकाश अथवा वायु मण्डल में हो जाय, तो पौधा जीवित नहीं रह सकता। फिर यदि किसी पौधे की जड़ें काटकर अलग कर दी जायँ तो पौधे के लिये जल प्राप्त करने का मार्ग बन्द हो जायगा, और पत्तियां मुर्झा जायँगी। इसी तरह पत्तियों को तोड़ देने पर खाद्य पदार्थों का बनना ही बन्द हो जायगा। औरों की बात तो अलग रहे, यदि पौधों की केवल छाल ही अलग कर दी जाय, तो नीचे के भागों को ऊपर से आने वाले भोज्य पदार्थों से वंचित होना पड़ता है। वानस्पतिक शरीर में इस प्रकार की अन्योन्याश्रिता (Interdependence) केवल उसके स्थूल अवयवों में ही नहीं होती, वरन्, उसके सूक्ष्मतम तंतुओं तथा कोष्ठों में भी पायी जाती है। वे ही कोष्ठ जो शारीरिक रचना के सूक्ष्मतम एकाङ्ग कहे जाते हैं।

बीजवाहक पौधों की मानव जीवन में प्रधानता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तथा उनकी सामान्य रचना और जीवन चरित्र।

यहां इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक और संगत होगा कि उपर्युक्त श्रेणियों में से बीजवाहक पौधे और उनमें भी विशेष करके आवृत्त-बीजी पौधे ही हमारे विशेष आकर्षण और ध्यान देने की वस्तु रहे हैं। चाहे यह बात उनके विशेष गुणों के कारण हुई हो, चाहे विकास क्रम में उनके सर्वोपरि स्थान ग्रहण करने के कारण हुई हो, चाहे सुन्दर आकर्षक पुष्पों के कारण वे हमारे विशेष ध्यान के अधिकारी हो गये हों, पर अनादि काल से मानव जीवन से उनका बहुत निकट का सम्बन्ध चलता आ रहा है। सम्भव है कि अन्य श्रेणी के पौधे भी हमारे लिये इन्हीं की तरह उपयोगी हों, और राई की कज्जली (Ergot of Rye) की तरह हमारे काम की वस्तु प्रमाणित हो जायं, परन्तु अभी उनमें ऐसे पौधों की संख्या कम है। इसका यही कारण सम्भवतः हो सकता है, कि वे प्रायः छोटे और अनाकर्षक होने के कारण प्राचीन काल में मनुष्यकी व्यवहारोपयोगी खोजों के विषय नहीं बन सके थे। पुष्प वाले पौधों का हमारा ज्ञान-भाण्डार इतना बड़ा और उपयोगी हो गया है, उनका अध्ययन प्रारम्भ के विद्यार्थियों के लिए इतना सरल और सुविधाजनक होता है, कि आगे के पृष्ठों में केवल उन्हीं का विवेचन किया गया है। यद्यपि यहां इनके अंगों, प्रत्यंगों तथा जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं पर अलग-अलग विचार किया गया है, तथापि इस विधि से हमें यही दिखाना अभीष्ट है, कि

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

खाद्य अपना जीवन-चक्र किस प्रकार पूरा करते हैं, और अपनी रचना तथा कार्य-प्रणाली में पूर्ण सामंजस्य होने के कारण वे एक वाद्ययंत्र की तरह समस्वर से बजते हुए किस तरह सुमधुर जीवन झंकार उत्पन्न कर देते हैं।

किसी एक प्रामाणिक पुष्पवाहक पौधे का शरीर मुख्यतः दो भागों का बना होता है, एक को प्रांकुर (Shoot) कहते हैं जो वायवीय होता है, और प्रायः कांड (Stem) पत्ती, पुष्प तथा फलों का बना होता है। दूसरे भाग को जो जमीन के अन्दर होता है, जड़ (Root) कहते हैं। काण्ड तथा उसकी शाखायें ग्रन्थिओं (nodes) और पर्वों (Internode) में विभक्त रहती हैं। ग्रन्थि काण्ड का वह भाग है, जहां से पत्ती शाखा पुष्प आदि निकलते हैं। यह भाग प्रायः न्यूनाधिक मोटा होता है। समीपवर्ती ग्रन्थिओं के बीच के भाग को पर्व कहते हैं। पत्तियां साधारणतः द्विपृष्ठी (Bifacial) होती हैं अर्थात् वे चिपटी और पतली होती हैं, और अस्थिपंजर की तरह नसों का जाल उन्हें सुदृढ़ रखता है। वे एकहरे पदार्थ Chlorophyll से युक्त होने के कारण हरी होती है। इनका लगाव तने से कहीं-कहीं एक डण्ठल के द्वारा होता है, जिससे यह नाल (Petiole) और फलक (Blade) दो भागों की बनी हुई मालूम होती है, और कहीं-कहीं फलक नाल हीन होने के कारण सीधे तने से लगा रहता है, पुष्प संख्या में एक अथवा एक से अधिक होते हैं, और वे भी पत्तियों की तरह सनाल और विनाल

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होते हैं। परिस्थिति के अनुसार पुष्पों के वर्ण आदि में व
कभी भिन्नता भी हो जाती है। भिन्न-भिन्न उपजातिओं के
पुष्पों के वर्ण, आकार, रचना आदि में बहुत विभिन्नता होती है।
जड़ जमीन के अन्दर प्रायः दूर २ तक फैली रहती है। प्रायः
सभी में पौधों के कद के अनुसार जड़ों का कम या अधिक
विस्तार पाया जाया है।

जड़ की शाखाओं के अन्तिम भाग बहुत सूक्ष्म रोमवत्
रचनाओं से ढके रहते हैं, जो मिट्टी के कणों के बीच-बीच में
फैले रहते हैं। मिट्टी के कणों के बीच-बीच में जो
जल का अंश रहता है, उसमें जमीन के खानिज लवण घोल
रूप में मौजूद रहते हैं। जड़-रोम उसी का शोषण करके
उसे ऊपर पहुंचाते रहते हैं। यह घोल काण्ड की रस-ग्राहक
नलिकाओं से होता हुआ पत्तियों में पहुँचता है। पत्तियां
वायु मण्डल से CO_2 अपने सूक्ष्म छिद्रों (Stomata) द्वारा
भीतर लेती हैं, और क्लोरोफिल की सहायता से सूर्य के प्रकाश
में बाहर से आये हुए पदार्थों की सहायता से शर्करा, स्टार्च
तथा प्रोटीन आदि नाम के पदार्थ बनाती रहती हैं। वस्तुतः
ये ही पदार्थ हैं, जिनको वे पौधे तथा उन पर जीवन निर्वाह
करने वाले जन्तु अपने असली खाद्य पदार्थों की तरह काम में
लाते हैं। पौधे के जिस भाग में वृद्धि होती रहती है, अथवा
जहां इसकी आवश्यकता होती है, रसवाहक नालिकाओं द्वारा
वहां ये पदार्थ पहुंचा दिये जाते हैं। इस तरह पौधे अपना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

खाद्य पदार्थ स्वयं बनाते हैं और अपने शरीर की वृद्धि करते रहते हैं। पौधों को अपने जीवन सम्बन्धी क्रियाओं को करने के लिये जो शक्ति की आवश्यकता होती है उसे भी वे इन्हीं खाद्य पदार्थों के विश्लेषण से प्राप्त करते हैं। श्वसन क्रिया जन्तुओं और वनस्पतिओं में इसी अभिप्राय से और एक ही तरह से होती है अर्थात् दोनों वायु-मण्डल से आक्सीजन लेकर उसी की सहायता से अपने खाद्य पदार्थों का विश्लेषण करते हैं और इससे जो CO_2 गैस पैदा होती है उसे छोड़ देते हैं, और जो शक्ति प्राप्त होती है उससे अपना काम करते हैं। यह क्रिया जीवन की हर अवस्था में तथा हर समय न्यूनाधिक मात्रा में हुआ करती है।

इस तरह शारीरिक वृद्धि करते हुए जब पौधे परिपक्वावस्था को प्राप्त होते हैं, तो उन्हें सन्तानोत्पादन की व्यवस्था करनी पड़ती है। अतः जहां शाखायें निकलती थीं, वहां पुष्प नाम की नवीन रचनायें प्रकट होने लगती हैं। इसमें प्रायः नर और नारी दो भाग होते हैं, और इन्हीं दोनों के सहयोग से अथवा लौकिक रीति से प्रायः सन्तानोत्पत्ति होती है। जिस तरह जन्तुओं में रज और वीर्य के मिलने से गर्भ स्थिति होती है, उसी तरह यहां भी पुष्प के अन्दर नर-कोष्ठ नारी-कोष्ठ से आकर मिलता है और गर्भाधान होता है। नर-कोष्ठ पुष्प के पराग कणों में बनता है, जो कीड़े तथा अन्य साधनों से गर्भाशय के सम्पर्क में पहुंचा दिये जाते हैं। पुष्पों में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होते हैं। परिस्थिति के अनुसार पुष्पों के वर्ण आदि में व... कभी भिन्नता भी हो जाती है। भिन्न-भिन्न उपजातिओं ... पुष्पों के वर्ण, आकार, रचना आदि में बहुत विभिन्नता होती है। जड़ जमीन के अन्दर प्रायः दूर २ तक फैली रहती है। प्रायः सभी में पौधों के कद के अनुसार जड़ों का कम या अधिक विस्तार पाया जाया है।

जड़ की शाखाओं के अन्तिम भाग बहुत सूक्ष्म रोमवत् रचनाओं से ढके रहते हैं, जो मिट्टी के कणों के बीच-बीच में फैले रहते हैं। मिट्टी के कणों के बीच-बीच में जो जल का अंश रहता है, उसमें जमीन के खानिज लवण घोल रूप में मौजूद रहते हैं। जड़-रोम उसी का शोषण करके उसे ऊपर पहुंचाते रहते हैं। यह घोल काण्ड की रस-ग्राहक नलिकाओं से होता हुआ पत्तियों में पहुँचता है। पत्तियां वायु मण्डल से Co_2 अपने सूक्ष्म छिद्रों (Stomata) द्वारा भीतर लेती हैं, और क्लोरोफिल की सहायता से सूर्य के प्रकाश में बाहर से आये हुए पदार्थों की सहायता से शर्करा, स्टार्च तथा प्रोटीन आदि नाम के पदार्थ बनाती रहती हैं। वस्तुतः ये ही पदार्थ हैं जिनको वे पौधे तथा उन पर जीवन निर्वाह करने वाले जन्तु अपने असली खाद्य पदार्थों की तरह काम में लाते हैं। पौधे के जिस भाग में वृद्धि होती रहती है, अथवा जहां इसकी आवश्यकता होती है, रसवाहक नालिकाओं द्वारा वहां ये पदार्थ पहुंचा दिये जाते हैं। इस तरह पौधे अपना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

खाद्य पदार्थ स्वयं बनाते हैं और अपने शरीर की वृद्धि करते रहते हैं। पौधों को अपने जीवन सम्बन्धी क्रियाओं को करने के लिये जो शक्ति की आवश्यकता होती है उसे भी वे इन्हीं खाद्य पदार्थों के विश्लेषण से प्राप्त करते हैं। श्वसन क्रिया जन्तुओं और वनस्पतिओं में इसी अभिप्राय से और एक ही तरह से होती है अर्थात् दोनों वायु-मण्डल से आक्सी-जन लेकर उसी की सहायता से अपने खाद्य पदार्थों का विश्लेषण करते हैं और इससे जो CO_2 गैस पैदा होती है उसे छोड़ देते हैं, और जो शक्ति प्राप्त होती है उससे अपना काम करते हैं। यह क्रिया जीवन की हर अवस्था में तथा हर समय न्यूनाधिक मात्रा में हुआ करती है।

इस तरह शारीरिक वृद्धि करते हुए जब पौधे परिपक्वा-वस्था को प्राप्त होते हैं, तो उन्हें सन्तानोत्पादन की व्यवस्था करनी पड़ती है। अतः जहां शाखायें निकलती थीं, वहां पुष्प नाम की नवीन रचनायें प्रकट होने लगती हैं। इसमें प्रायः नर और नारी दो भाग होते हैं, और इन्हीं दोनों के सहयोग से अथवा लौकिक रीति से प्रायः सन्तानोत्पत्ति होती है। जिस तरह जन्तुओं में रज और वीर्य के मिलने से गर्भ स्थिति होती है, उसी तरह यहां भी पुष्प के अन्दर नर-कोष्ठ नारी-कोष्ठ से आकर मिलता है और गर्भाधान होता है। नर-कोष्ठ पुष्प के पराग कणों में बनता है, जो कीड़े तथा अन्य साधनों से गर्भाशय के सम्पर्क में पहुंचा दिये जाते हैं। पुष्पों में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(३) तने में पर्व और ग्रन्थियां होती हैं। पत्तियां ग्रन्थियों पर और शाखायें पत्तियों के अक्षकोण (Axil) में ही निकलती हैं। जड़ में पर्व, ग्रन्थि तथा पत्तियों का अभाव होता है, और उनका शाखा-क्रम भी अनियमित होता है।

(४) आन्तरिक रचना में जड़ और तना दोनों एक दूसरे से बहुत ही भिन्न होते हैं। दोनों का अन्तिम निर्णय इसी लक्षण से होता है।

(५) जड़ की शाखाओं का उद्गम स्थान भीतरी तंतुओं में होता है, जिससे वे अन्तर्जात (Endogenous) कही जाती हैं, परन्तु तनों की शाखायें बहिर्जात (Exogenous) होती हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति बाहरी तंतुओं से ही होती है।

(६) तनों का वृद्धिशील अग्रभाग अविकसित नवीन साधारण पत्तियों अथवा वल्कपत्रों (Scale leaf) से ढका रहता है, परन्तु जड़ में अग्रभाग केवल एक विशेष तंतु से, जिसे जड़-कोष (Root cap) कहते हैं, ढका रहता है।

(७) साधारण कलिकायें (Buds) पुष्प तथा पुष्प कलिकायें तनों पर होती हैं। जड़ से वे कभी नहीं निकलती। कभी-कभी वानस्पतिक कलिका की उपस्थिति जड़ में भी देखने में आती है।

(८) तने पर यदि रोम होते हैं, तो उनका मुख्य कार्य केवल रक्षा सम्बन्धी होता है, और उनकी उपस्थिति सम्पूर्ण

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पृष्ठ पर हो सकती है। जड़-रोम सर्वदा जड़-कोष के ऊपर एक निश्चित भाग में होते हैं और उनका मुख्य कार्य पृथ्वी से लवण-मिश्रित जल का शोषण करना होता है।

(९) नवीन तनों में रन्ध्र (Stomata) तथा पुरानी छालों में कार्करन्ध्र (Lenticel) पाये जाते हैं, पर, जड़ों में नहीं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रथम भाग

वाह्यरचना (External Morphology)

परिच्छेद १

जड़ (Root).

वीजोद्भेद (Germination) के समय वीज से जो पहले पहल अङ्कुर निकलता है, वही ज़मीन के अन्दर नीचे की ओर जाकर जड़ के नाम से प्रसिद्ध होता है। इससे क्रमशः शाखायें तथा प्रशाखायें निकलती जाती हैं। यदि किसी शाखा अथवा प्रशाखा की परीक्षा की जाय तो मालूम होगा, कि उसका वृद्धिशील भाग उसके अग्रभाग के ठीक पीछे है। इसीलिये उसके अग्रभाग पर नवीन भागों की रक्षा के लिये जड़-कोष नाम का तन्तु होता है। जड़कोष के पीछे जड़ का दूसरा भाग होता है, जो बहुत सी कोमल रोमवत् सूक्ष्म रचनाओं से ढका रहता है, जिन्हें जड़रोम (Root-hair) कहते हैं। ये बहुत थोड़े दिनों के बाद ही सूख जाते हैं। शोषण का मुख्य कार्य इन्हीं जड़रोमों द्वारा होता है। ये रोम मिट्टी के कणों के बीच २ में फैले रहते हैं। प्रत्येक कण जल से घिरा होता है और उस जल में मिट्टी के खनिज लवण घोल रूप में मौजूद रहते हैं। जड़रोम इसी घोल का शोषण करके उसे बड़ी २ जड़ों में पहुँचाते हैं। फिर वह घोल जड़ों तथा तने के रसवाहक तन्तुओं द्वारा पत्तियों में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पहुँचता है। इसीलिये जड़ें उसी ओर बढ़ती हैं, जिधर यह घोल पर्याप्त मात्रा में रहता है। जैसे २ जड़ें इसकी खोज में आगे बढ़ती जाती हैं, उनमें नये २ जड़रोम बनते जाते हैं, और पुराने नष्ट होते जाते हैं। जड़रोमों के पीछे के भाग से शोषण का कार्य नहीं होता। अतः अधिकतर सभी जड़ों में चार भाग अर्थात्—(१) जड़कोष (२) वृद्धिशील भाग (३) जड़रोम-युक्त भाग तथा (४) परिपक्व भाग पाये जाते हैं।

जड़ के भेद—जब प्रारम्भिक जड़ (Primary root) अपनी शाखाओं प्रशाखाओं के द्वारा एक विस्तृत जड़ संस्थान (Root System) की रचना कर लेती है, जिससे पौधे की प्रायः सभी आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं, तो उसे नियमित जड़ संस्थान (Tap Root System) कहते हैं। इसमें सबसे बड़ी और प्रधान जड़ को (Tap root) नियमित प्रधान जड़ कहते हैं। कहीं कहीं प्रारम्भिक जड़ की वृद्धि रुक जाने के कारण तथा उसकी शाखाओं के बहुत बढ़ जाने के कारण शाखायें ही प्रधान मालूम होती हैं। बहुत से पौधों में नियमित जड़ संस्थान अथवा प्रारम्भिक जड़ का पर्याप्त विकास नहीं होता तो उनमें अन्य भागों से सहायक जड़ें निकल आती हैं। जैसे मक्का ज्वार आदि में जमीन के समीप तने से बहुत सी जड़ें निकली रहती हैं। दूब जैसे विसर्पी (Creeping) तनों से तथा ब्रायोफाइलम तथा बेगोनिया आदि पौधों में पत्तियों से भी जड़ें निकली रहती हैं। ऐसी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सब जड़ों को जो प्रारम्भिक जड़ अथवा उसकी शाखाओं न निकलकर पौधे के किसी अन्य भाग से निकलती हैं, अनियमित जड़ें (Adventitious Root) कहते हैं। प्रायः ऐसा देखा जाता है, कि जब जल ज़मीन के बहुत नीचे होता है, तो प्रारम्भिक जड़ का ही विकास होता है, जैसे मरुभूमि के पौधों में। परन्तु यदि वही पौधे ऐसी ज़मीन में हों जहां जल ज़मीन की सतह के समीप ही होता है, तो उनमें अनियमित जड़ें भी निकल सकती हैं।

उत्पत्ति स्थान के विचार से जड़ के दो मुख्य भेद हुए। परिस्थिति तथा कार्य के अनुसार भी जड़ों के अनेक भेद हैं। परिस्थिति तथा साधारण रहन-सहन (Habit) के अनुसार उनके आकार तथा रचना में भिन्नता होती है। वार्षिक (Annual) अथवा एक ऋतु तक जीवित रहने वाले पौधों की जड़ें प्रायः छोटी होती हैं। वे या तो बहुत छोटी प्रारम्भिक जड़ से निकलने वाली गौण शाखायें होती हैं, जो मुख्य जड़ से गुच्छे के रूप में निकली रहती हैं, अथवा प्रारम्भिक जड़ से पार्श्वीय छोटी-छोटी शाखाओं के रूप में उत्पन्न होती हैं। कुछ पौधे एक ऋतु में अपनी वानस्पतिक वृद्धि करते हैं, और आवश्यकता से भी अधिक भोज्य पदार्थों का निर्माण करते हैं, और उस ऋतु के अन्त तक वे खर्च से बचे हुए खाद्य पदार्थों को अपनी जड़ों में जमा करते जाते हैं। दूसरे ऋतु में उनमें फूल फल आने लगते हैं, और उस समय पहले के संचित भोज्य

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पदार्थो को अपने काम में लाते हैं। भोज्य पदार्थों के संचित हो जाने के कारण इन द्वि-वार्षिक (Biennial) पौधों की प्रारम्भिक जड़ें मोटी तथा मांसल होकर गर्जर की तरह शंकाकार (Conical), मूलकाकार (Fusiform) अथवा सलज़माकार (Napiform) बन जाती हैं। गाजर में ऊपर सबसे मोटी और अग्र की ओर क्रमशः पतली, मूली में बीच में सबसे अधिक मोटी और दोनों शिरों पर क्रमशः पतली और सलज़ममें ऊपर बहुत मोटी और अग्रपर एकायक बहुत पतली जड़ें होती हैं। बहुत से एक वार्षिक पौधों में भी साधारण जड़ों के अतिरिक्त ऐसी जड़ें होती हैं, जिनमें खाद्य पदार्थ संचित किये जाते हैं। ऐसी जड़ें प्रायः उन पौधों में पायी जाती हैं जिनके वायवीय भाग प्रतिवर्ष नष्ट हो जाते हैं, पर उनके भौमिक भाग बहु-वार्षिक (Perennial) होते हैं और उन्हीं से प्रतिवर्ष पौधे की उत्पत्ति होती है। ऐसी जड़ें भी आकार के अनुसार भिन्न-भिन्न तरह की होती हैं जैसे माला-कन्द में मूलकन्दों की माला सी बनी होती है। मोथा में जड़ों के अग्रभाग कन्दवत हो जाते हैं, और इपेकाक्वानहा (Ipecacuanha) नामक विदेशी और औषधीय पौधे की जड़ जगह-जगह पर मोटे तथा गोले कन्दों के रूप में होती है।

निवासस्थान के अनुसार जमीन पर होने वाले पौधों की जड़ों को स्थलीय (Terraneous) अन्य वृक्षों के काण्डों पर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

फैलने वाली जड़ों को वृक्ष-प्रसरिणी (Epiphytic) तथा जल में होने वाले पौधों की जड़ों को जलीय (Water roots) जड़ें कहते हैं। लाक्षाणिक स्थलीय जड़ों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। उनमें कुछ विशेष प्रकार की जड़ें हैं जो ध्यान देने योग्य हैं। वटवृक्ष के तनों से अनेकों अनियमित जड़ें निकलकर वायु में झूला करती हैं। पुराने वृक्षों में जमीन तक पहुंची हुई रहती हैं, और दिगन्तसम फैली हुई बड़ी-बड़ी डालियों के लिये ये अवलम्ब स्वरूप होती हैं। इसके कारण ये वृक्ष बहुत दूरी में अपना प्रसार कर लेते हैं, जैसे बोधी-वट वृक्ष अथवा कलकत्ते के वैज्ञानिक उद्यान का प्रसिद्ध वटवृक्ष, पैण्डेनस तथा राइजोफोरा के वृक्षों में वास्तविक तना पतला और दुर्बल होता है। अतः तने से बड़ी-बड़ी जड़ें निकलकर तने से लिपट जाती हैं, और उसे सुदृढ़ बना देती हैं। ऐसी जड़ों को पादासक्त जड़ें (Brace roots) कहते हैं। बहुत से उष्ण प्रदेशीय वृक्षों में बड़ी-बड़ी जड़ों से चौड़े-चौड़े तख्तों समान वहिरुद्भेद (Outgrowth) बन जाते हैं, जो उन वृक्षों को उसी प्रकार मजबूत बनाये रखते हैं, जैसे ऊंची दीवाल वाले मकानों को नीचे की पुश्तियां।

वृक्षों पर होने वाले पौधों को पृथ्वी से खाना नहीं मिलता। उनको अपना भोजन अधिकतर वायु से ही लेना पड़ता है। उनकी जड़ें तनों पर फैली रहती हैं, और उनके वाह्य चर्म के दरारों में प्रवेश करके उनके अन्दर आये हुए कूड़े कर्कट से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कुछ न कुछ भोजन पा जाती हैं। उनकी जड़ें ऐसी भी होती हैं कि वायु से जल ग्रहण कर सकती हैं। कुछ पौधों की ये जड़ें हरी होकर भोज्य पदार्थ भी बना लेती हैं। वृक्ष पर फैलने वाली जड़ें रास्ना जाति तथा आरकिड नाम की वनस्पतिओं में होती हैं।

जलीय जड़ें प्रायः लम्बी शाखाहीन तथा मांसल होती हैं। इनमें जड़ कोष तथा जड़रोम भी नहीं होते। इनकी रचना बहुत ही साधारण परन्तु परिस्थिति के अनुकूल होती है।

दलदलों में होने वाले मानग्रोव (Mangrove) जाति के पौधों की जड़ों को श्वसन करने के लिये पृथ्वी के अन्दर वायु नहीं मिलती। इसलिये वे ज़मीन के ऊपर निकली रहती हैं, और वायु-मण्डल से वायु ग्रहण करती रहती हैं। इन जड़ों को (Nematophores अथवा Breathing Roots) कहते हैं। परजीवी पौधों में, जैसे अमरवेलि आदि में, वायवीय जड़ों से छोटी-छोटी शाखायें निकलकर उन पौधों के रसवाहक तंतुओं से सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं, जिनपर पर वे फैली रहती हैं। इसके द्वारा परजीवी पौधे रस चूसते रहते हैं। इसलिये इन्हें परजीवी जड़ें (Parasitic Roots अथवा Haustoria) कहते हैं।

मूल हीन पौधे—उच्च श्रेणी के बहुत से पुष्प वाले पौधों में परिस्थिति के कारण कहीं-कहीं जड़ का पूर्ण अभाव पाया जाता है। जैसे लेम्ना जाति के पौधों में जो जल के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ऊपर होते हैं, जड़ का विकास कम अथवा बिलकुल नहीं हुआ रहता। इसी तरह युट्रीकुलेरिया जाति के मांसाहारी पौधों में कुछ थोड़ी सी सूत्रवत जड़ें होती हैं, जिन्हें राइज्वायड (Rhizoid) कहते हैं। पुष्पहीन पौधों के अन्तर्गत ब्रायोफाइटा और टेरिडोफाइटा श्रेणी के जो पौधे हैं उनमें प्रायः सूत्रवत् जड़ तुल्य रचनायें होती हैं, उन्हें भी राइज्वायड कहते हैं। उनमें शोषण का कार्य इन्हीं रचनाओं द्वारा होता है।

जड़ों के कार्य—ऊपर के विवरण से जड़ों द्वारा सम्पादित होने वाले कार्यों का भी पता चल चुका है, जिनमें जल तथा खानिज लवणों का शोषण तथा उनका वहन (Conduction) तथा आंधी आदि के समय पौधों को एक स्थान पर सुदृढ़ बनाये रखने के कार्य मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त वे विशेष परिस्थियों में विशेष प्रकार के कार्य भी करती हैं। जैसे खाद्य पदार्थों का संचय (जैसे सतावर सकरकन्द में कन्दवत अनियमित जड़ों द्वारा) श्वसन, खाद्य पदार्थों का निर्माण, सन्तानोत्पादन, अवलम्बन, आरोहण तथा रक्षा के कार्य भी कभी-कभी इन जड़ों द्वारा सम्पादित होते हैं। इन कार्यों के लिये उन्हें भिन्न-भिन्न रूप तथा आकार भी धारण करना पड़ता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद २

तना (Stem).

बीजोद्भेद के समय गर्भ अथवा नवजात सन्तान बीज के बाहर दो अङ्कुरों के रूप में निकलता है। पहले अङ्कुर से जड़ बनती है, और दूसरे से, जो पहले से ही सम्बन्धित रहता है, प्राङ्कुर बनता है। यह प्राङ्कुर जैसे-जैसे लम्बाई में बढ़ता है, उसमें क्रमशः ग्रन्थि, पर्व तथा ग्रन्थिओं पर पत्तियां बनने लगती हैं। पत्तियों के अक्षकोणों (Axils) में कलिकायें प्रकट होने लगती हैं। ये अक्षकोणीय कलिकायें फिर बढ़कर शाखाओं अथवा पुष्पों में परिवर्तित हो जाती हैं।

यदि किसी शाखा अथवा मुख्य तने के अग्रभाग की परीक्षा की जाय, तो मालूम होगा, कि अग्रभाग के चारों ओर बहुत छोटी-छोटी पत्तियां हैं, जो वृद्धिशील अग्र को भलीभांति ढके हुई हैं। इसी भाग को, जिसमें ग्रन्थि, संक्षिप्त पर्व तथा बहुत छोटी-छोटी पत्तियां सम्मिलित हैं, कलिका (Bud) कहते हैं जैसे-जैसे वृद्धिशील अग्र बढ़ता जाता है वैसे ही पत्तियों की भी वृद्धि होती रहती है। अतः कलिका को अविकसित शाखा कह सकते हैं। जिन कलिकाओं से तने लम्बाई में बढ़ते हैं वे तनों के अग्र पर होती हैं और अग्रस्थित कलिका (Terminal bud) कही जाती हैं। चूंकि शाखायें तने के पार्श्वीय भाग से निकलती हैं, और सर्वदा पत्तियों के अक्षकोण

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में होती हैं. अतः जिन कलिकाओं से अक्षकोणीय शाखाओं की उत्पत्ति होती है, उन्हें अक्षकोणीय कलिका (Axillary bud) कहते हैं। कहीं-कहीं कलिकायें कद में बहुत बड़ी भी होती हैं। उनके पर्व तथा पत्र न्यूनाधिक बड़े होते हैं, और उनमें पुष्प भी पाये जा सकते हैं, जैसे पातगोभी में। आवृत-बीजी पौधों में प्रायः नियमित रूप से पत्तिओं के अक्षकोण से एक-एक शाखा अथवा कलिका निकलती है, परन्तु साथ ही ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है, जिनमें अक्षकोणों के अतिरिक्त अन्य स्थानों से भी सहायक कलिकायें (Accessory bud) निकलती हैं। कहीं-कहीं ऐसी भी कलिकायें पायी जाती हैं, जिनके निकलने का कोई विशेष क्रम नहीं होता। वे अग्र तथा अक्षकोणों में न होकर पौधे के किसी भाग से निकल सकती हैं। ऐसी कलिकायें परवल और गुलाब की जड़ों में और हिमसागर (Kalanchol) तथा पथरकुचा (Bryophyllum) की पत्तियों पर होती हैं। इन्हें अनियमित कलिका (Adventitious) कहते हैं। इनसे उपर्युक्त पौधों की वानस्पतिक सन्तानोत्पत्ति होती है। पौधे ऐसी कलिकाओं का तभी आश्रय लेते हैं, जब इन्हें विशेष परिस्थितिओं का सामना करना पड़ता है। जैसे बहुत से पौधे जब कुछ ऊपर तने पर काट दिये जाते हैं, तो उनमें कटे हुए भाग के समीप ऐसी वृद्धि शक्ति आ जाती है कि वहां से थोड़े समय में ही अनेकों शाखायें निकल आती हैं। ऐसी शाखायें इन्हीं अनियमित कलिकाओं से बनती हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कुछ कलिकायें क्रियाशील (Active) होती है, जो विश्राम लिये बिना बढ़ती जाती हैं, और कुछ अनुद्भूत (Dormant) कही जाती हैं, जो बहुत समय तक सुप्तावस्था में पड़ी रहती हैं और विशेष परिस्थिति में पड़ जाने पर ही उनका विकास होता है। जैसे बरगद को बहुत दिन की पड़ी हुई सूखी डालिओं से जो नई-नई शाखायें निकल आती हैं वे इन्हीं कलिकाओं से बनती हैं। जलवायु की अत्यन्तावस्थाओं में Extreme conditions) कलिकाओंको परिस्थितिके अनुकूल होना पड़ता है। इसी लिये बहुत से क्षुप तथा वृक्षों की कलिकाओं में ऐसी रचनायें पायी जाती हैं जो उनके अन्दर के कोमल भागों को सुरक्षित रखती हैं, बहुतों मे कलिकायें प्रायः ऐसी छोटी-छोटी पत्रवत् रचनाओं से ढकी रहती हैं जिन्हें वल्कपत्र (Scale leaf) कहते हैं, और जो कलिका के बढ़ने के समय सूख कर गिर जाती है, जैसे बरगद में। अधिक शीत और शुष्क जलवायु में होनेवाले पौधोंमें वल्की कलिकायें (वल्कपत्र युक्त अथवा Scaly buds) बहुत पायी जाती हैं, जिनके वल्कपत्र रोमों अथवा अनेक प्रकार के निर्यासों से युक्त होने के कारण अपनी रक्षा भली भांति कर लेते हैं। वल्कपत्रों तथा अन्य भागों से जो गोंद (Gum) तथा रेजिन नाम के निर्यास निकलते हैं, अथवा उनपर जो रोम होते हैं, उन सबका कार्य कलिकाओं आदि की अत्यन्त शीत तथा असह्यताप वा अधिक जल त्याग से रक्षा करने का होता है। साधारण

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिस्थितिकी कलिकायें प्रायः नग्न (Naked) होती हैं क्योंकि उनमें वल्कपत्र नहीं होते।

स्वतन्त्र कलिका (Bulbil)—कुछ पौधों में एक विशेष और विचित्र प्रकार की कलिका होती है, जिसे स्वतन्त्र कलिका (Bulbil) कहते हैं। इसकी रचना साधारण कलिकासे भिन्न होती है, अतः इसे कलिका का रूपान्तर (Modification) कह सकते हैं। जिन पौधों में से कलिकायें होती हैं, उनकी सन्तानोत्पत्ति इन्हीं की सहायता से होती है। ये अक्षकोणीय होती हैं, और जब पौधे से टूट कर गिरती हैं, तो इनमें वृद्धि होने लगती है, जिससे क्रमशः जनक-पौधे के समान एक नया पौधा तैयार हो जाता है। चूंकि कलिका की वृद्धि के लिये जनक पौधे से कुछ भी सहायता उस समय नहीं मिलती, इसलिये इन कलिकाओं में पहले ही से भोज्य पदार्थ संचित कर दिये जाते है। इसी कारण से ये कलिकायें बहुत बड़ी और मांसल होती हैं। प्याज जाति में पुष्प व्यूह भाग में इस प्रकार की कलिकायें पायी जाती हैं। लिलियम (Lilium) तथा डायस्कोरिया जाति के पौधों में, जिनमें वाराही-कन्द की लता भी शामिल है, ऐसी कलिकायें पायी जाती हैं।

कलिकाओं का उपर्युक्त वर्गीकरण उनके उत्पत्ति स्थान, विकासकाल तथा रचना और कार्य के आधार पर किया गया है। कलिकाओं की वृद्धि से कैसे-कैसे भाग प्राप्त होते हैं इस दृष्टि से भी उनके कई भेद बतलाये जाते हैं, जैसे साधारण

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शाखा उत्पन्न करने वाली वानस्पतिक कलिका Vegetative पुष्प अथवा पुष्प व्यूह उत्पन्न करनेवाली पुष्प कलिका (Flower bud) अथवा पुष्प व्यूह कलिका तथा साधारण शाखा और पुष्प दोनों को उत्पन्न करने वाली मिश्रित कलिकाये (Mixed buds) कही जाती हैं। अन्तिम प्रकार की कलिकायें सेव, नासपाती, अंगूर तथा पुष्प-व्यूह-कलिका तूत में पायी जाती है।

तनों के भेद—उच्च श्रेणी के पौधों में तने पौधों की रहन-सहन तथा परिस्थिति के अनुसार भिन्न२ आकार प्रकार के होते हैं। साधारणतः तने तीन प्रकार के होते हैं, स्वावलम्वी (Erect) विसर्पी (Creeping) तथा आरोही (Climbing) अधिकतर पौधों के तने बिना किसी आश्रय के ऊपर बढ़ते हैं और उन्हें स्वावलम्बी कहते हैं। वहुत पौंधों में तने इतने दुर्वल होते हैं कि वे किसी न किसी वस्तु के सहारे ही बढ़ते हैं। तरबूज, ककड़ी आदि के पौधे जमीन पर फैले रहते हैं। उन्हें विसर्पी Creeping कहते हैं। गुड़ची, विधारा, प्रसारिणी सरीखे पौधे दूसरे पौधों पर अथवा अन्य वस्तुओं पर चढे हुए दिखायी देते हैं। इनके तनों को आरोही Climbing कहते हैं। आरोही तने कहीं-कहीं चक्रारोही (Turning) भी होते हैं अर्थात् जिनके सहारे बढ़ते हैं, उन्हें लपेटते जाते हैं जैसे गुड़ची।

विसर्पी तनों में कुछ ऐसे भी होते हैं, जो सन्तानोत्पत्ति के साधन होने के कारण कुछ विशेषता से युक्त होते हैं, इनमें

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रनर Runner, आफसेट Offset और सकर Sucker मुख्य हैं। Runner अथवा Stolon जमीन की सतह के बराबर किसी पत्ती के अक्षकोण से निकलता है और जमीनपर दूर तक फैल जाता है। इसकी ग्रन्थिओं पर वल्कपत्र और कलिकायें होती हैं, जिनके नीचे से जड़ें निकलकर जमीन में फैल जाती हैं और कलिकाओं से जो वायवीय-शाखायें तैयार होती हैं वे मूल-युक्त होने के कारण स्वतन्त्र पौधों की तरह मालूम पड़ती हैं जैसा कि ब्राह्मी तथा पिस्टिया में होता है। कुछ पौधों में रनर होता तो है, पर वह इतना लम्बा और दूर तक फैला हुआ नहीं रहता अर्थात् लम्बा कम और मोटा अधिक होता है। इसके अग्रपर पत्तियों का गुच्छा और बहुत सी जड़ें रहती हैं, इस स्थान पर इसके बाढ़ को दिशा बदली रहती है; और कुछ समय में यह ऊपर की ओर बढ़कर वायवीय शाखा के रूप में बदल जाती है। ऐसे तने को Offset कहते हैं। तीसरे प्रकार के तने को हम भौमिक रनर कह सकते हैं। यह ऊपर की ओर बढ़ता है, और जड़ों तथा वायवीय शाखाओं से भी युक्त रहता है। इसकी शाखाओं का रंग सफेद अथवा गुलाबी होता है। रनर और सकर में केवल इतना ही अन्तर है कि रनर निकलने के समय वायवीय और बाद में भौमिक होता है, परन्तु सकर प्रारम्भ में भौमिक और अन्त में वायवीय हो जाता है। इसके उदाहरण पुदीना और गुलाब में मिलते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शाक, क्षुप तथा वृक्ष:—समस्त पौधे अपनी प्रकृति, जीवन-काल तथा शाखाक्रम के अनुसार तीन मुख्य-मुख्य श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं। जिनके तने मुलायम होते हैं और हर साल सूख जाया करते हैं, उन्हें शाक (Herb) कहते हैं। अधिक समय तक जीवित रहने वाले पौधों के तने प्रायः कठोर (Woody) होते हैं, और उन्हें क्षुप (Shrub) अथवा वृक्ष Tree कहते हैं। ये पौधे तो बहु वार्षिक होते ही हैं, बहुत से शाक भी वार्षिक तथा द्विवार्षिक होने के अतिरिक्त बहुवार्षिक होते हैं। द्विवार्षिक शाकों के उदाहरण मूली, सलजम आदि हैं। बहुवार्षिक शाकों में विशेषता यह होती है, कि उनके वायवीय भाग प्रतिवर्ष नष्ट हो जाते हैं, पर उनका भौमिक भाग जमीन के अन्दर पड़ा रहता है। अनुकूल अवस्थाओं के आने पर इन्हीं भौमिक भागों से नये पौधे निकल आते हैं। आलू, प्याज, सूरण आदि के ऐसे ही पौधे होते हैं।

वृक्षों की शाखायें प्रायः धड़ अथवा पेड़ी (Trunk) से निकलती हैं, और क्षुप में धड़ का प्रायः अभाव रहता है, अथवा तना बहुत छोटा और संक्षिप्त होता है। इसलिये उनकी शाखायें जमीन की सतह के बराबर अथवा कुछ ऊपर से निकली रहती हैं। ऐसे क्षुप जो बहुत छोटे और आधार पर बहुत सी शाखाओं से युक्त रहते हैं प्रायः गुल्म या झाड़ी (Bush) कहे जाते हैं। कहीं यह बतलाना कि अमुक पौधा शाक, क्षुप अथवा वृक्ष है बहुत कठिन हो जाता है। ऐसी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अवस्था में उपक्षुप (Under-shrub) क्षुपवत् वृक्ष (Shrubly tree) अथवा वृहत-क्षुप इत्यादि संज्ञाओं का आश्रय लेना पड़ता है।

वर्षाऋतु के प्रारम्भ होते ही सारी पृथ्वी अनेक प्रकार की असंख्य वनस्पतिओं से ढक जाती है, और शरदऋतु के अन्त तक वे सब पौधे फिर नष्ट हो जाते हैं। इससे यह मालूम होता है कि उस समय पौधों को ऐसी अवस्थाओं का सामना करना पड़ता है, जिनमें वे अथवा कम से कम उनके वायवीय भाग जीवित नहीं रह सकते। अतः वह वार्षिक क्षुप तथा वृक्ष प्रायः अपनी पत्तियां गिरा देते हैं, और उनके तने उस समय तक नये कार्क तन्तु से सुरक्षित हो जाते हैं। उनकी कलिकायें भी वल्कपत्रों से अपनी रक्षा कर लेती हैं। वार्षिक पौधों की मुलायम शाखायें ऐसी अवस्था में सूख जाती हैं। इन वार्षिक पौधों में भी दो तरह के पौधे होते हैं। कुछ तो अपने थोड़े जीवनकाल में पुष्प, फल तथा बीज पैदा करके तब सूखते हैं, और कुछ बिना बीज बनाये ही सूख जाते हैं। अतः ये दूसरे प्रकारके वार्षिक पौधे अपनी सन्तानोत्पत्ति उन भौमिक भागों द्वारा करते हैं, जो वायवीय भागों के सूख जाने पर भी ज़मीन के अन्दर जीवित अवस्था में पड़े रहते हैं, और दूसरे वर्ष उनसे नये पौधे तयार हो जाते हैं। ऐसे पौधों को हम मृदु बहुवार्षिक (Herbaceous perennials) भी कह सकते हैं। जिस तरह मेढ़क जाड़ों में पृथ्वी के अन्दर चले जाते हैं, और

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वर्षा के आने पर फिर ऊपर आ जाते हैं, उसी तरह ये पौधे भी अपने भौमिक भागों द्वारा अपने जीवन को किसी न किसी तरह बचा लेते हैं, और इसीलिये वह वार्षिक कहे जा सकते हैं।

जिस प्रकार बीजों में कुछ न कुछ भोज्य पदार्थों का संचय रहता है, जिसकी सहायता से बीज अङ्कुरित होता है, और अङ्कुर बढ़ता है, उसी प्रकार इन भौमिक सन्तानोत्पादक भागों में भी न्यूनाधिक मात्रा में खाद्य पदार्थ जमा रहता है। इसीलिये भौमिक तनों के आकार तथा उनके सञ्चय-तन्तु की स्थिति में प्रायः बड़ी भिन्नता देखने में आती है। इन्हीं दोनों बातों के आधार पर भौमिक तनों के चार मुख्य भेद बतलाये गये हैं।

(१) राइज़ोम (Rhizome) यह लम्बा और प्रायः दिगन्तसम ज़मीन में फैला रहता है। इसमें कम या अधिक मात्रा में खाद्य पदार्थ भी होते हैं। इसमें ग्रन्थियां होती हैं, जिन पर भूरे छोटे-छोटे वल्कपत्र और कलिकायें होती हैं। कभी कभी ये छोटे होते हैं और तिरछे या सीधे ऊपर की ओर उठे हुए रहते हैं (जैसे Fern में)। राइज़ोम प्रायः सशाख (Branched) भी होता है, और उसपर अनियमित जड़ें भी पायी जाती हैं। इसलिए अगर शाखायें अलग हो जाती हैं, तो उनसे नये पौधे भी बन जाते हैं। इन तनों पर जो अक्ष-कोणीय अथवा अग्रस्थित कलिकायें होती हैं, उन्हीं के बढ़ने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

से वायवीय शाखायें बनती हैं। जब वायवीय शाखायें अन्तिम कलिका से बनती हैं, तो भौमिक तना बहुपादी (Sympodial) और जब वे अक्षकोणीय कलिकाओं की वृद्धि से प्राप्त होती हैं, तो तना एकपादी (Monopodial) कहा जाता है। इसके उदाहरण केला, हल्दी, अदरक, बांस आदि के भौमिक तने हैं।

वज्रकन्द (Corm) इसे राइजोम का एक परिवर्त्तित रूप ही समझना चाहिये। इसमें तना फूला हुआ प्रायः गोला होता है और इसे डिस्क (Disc) कहते हैं। इस पर कई कोषमय (Sheathing) आधार वाले वल्कपत्र होते हैं, जिनके अक्षकोणों में कलिकायें होती हैं। वल्कपत्र कभी ऊपर की ओर और कभी आधार की ओर पाये जाते हैं। अनुकूल समय पाकर ये कलिकायें डिस्क के अन्दर संचित भोज्य पदार्थों का उपयोग करके बढ़ने लगती हैं और नवीन शाखाओं के रूप में ऊपर आ जाती हैं। साथ ही साथ कलिका तथा डिस्क के आधार से अनियमित जड़ें भी निकलकर पौधे की जमीन से खाद्य पदार्थ देने लगती हैं। कुछ समय के बाद पौधा स्वयं अपने लिये भोज्य तैयार करने लगता है। आवश्यकता से अधिक बना हुआ भोज्य पदार्थ पौधे के आधार-भाग में जमा होने लगता है, और इस तरह एक नया वज्रकन्द तैयार हो जाता है। यह नया वज्रकन्द अन्त में पिछले वज्रकन्द से भी बड़ा हो जाता है, क्योंकि पिछले वज्रकन्द का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बचा हुआ भाग भी इसी में शामिल हो जाता है। इसीलिये वज्रकन्द जितने ही पुराने होते हैं, उतने ही बड़े होते जाते हैं। सूरण (जमीकन्द) तथा इस जाति के अन्य पौधों में वज्रकन्द पाये जाते हैं।

३, पत्रमयकंद (Bulb) इसमें भोज्य पदार्थों का संचय वल्कपत्रों में रहता है, और डिस्क अथवा वास्तविक तना बहुत छोटा होता है, जो वल्कपत्रों द्वारा, जो मोटे तथा मांसल होते हैं, पूर्णतः ढका रहता है। यदि प्याज को काटकर देखा जाय तो पता चलेगा कि, वल्क पत्रों तथा साधारण पत्तिओंके आधार भाग डिस्क को चारों ओर से घेरे हैं। अतः इन्हें परिवर्त्तीपत्र (Tunics) और कन्द को परिवर्त्ती पत्रमय कन्द (Tunicated bulb) कहते हैं। लिली के कन्द में मांसल वल्कपत्र एक दूसरे को केवल धारों पर ही ढके रखते हैं। पत्रमयकन्द के अन्दर की पत्तिओं के अक्षकोणों में प्रायः कलिकायें होती हैं, जो दूसरे वर्ष बढ़कर नये पौधे बनाती हैं। यहां भी कलिकाओं की वृद्धि संचित खाद्य पदार्थों पर ही निर्भर करती है। जो वल्कपत्र पहले मोटे तथा मांसल रहते हैं, भोज्य पदार्थों के खर्च हो जाने पर बहुत पतले हो जाते हैं और नवीन कन्द के ऊपर पाये जाते हैं। नये पौधे में पहले वानस्पतिक वृद्धि होती है, फिर उसमें पुष्पदण्ड, पुष्प, फल तथा बीज बनते हैं। इसके बाद वायवीय भाग सूख जाता है और कन्द जमीन के अन्दर पड़ा रहता है। जिस प्रकार वज्रकन्द

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में नवीन पौधे का खर्च से बचा हुआ भाग पुराने कन्द के अवशिष्ट पदार्थ से मिलकर नया कन्द बनाता है, उसी प्रकार प्याज जैसे पौधों में भी ये ही पदार्थ वल्कपत्रों तथा साधारण पत्तिओं के आधार भागों में संचित होकर नये पत्रमय कन्द का निर्माण करते हैं। नये कन्द में सबसे ऊपर के एक पत्रवत परदे पुराने कन्द के वल्कपत्र ही होते हैं। कन्द के बाहरी पत्तिओं के अन्तकोणोंमें भी कहीं-कहीं कलिकायें होती हैं जिससे नवीन कन्दों की संख्या अधिक हो जाती है। ये सब अलग २ होकर स्वतन्त्र पौधे बनाते हैं।

कंद—(Tuber)—यह एक भौमिक तना अथवा शाखा है, जिसकी लम्बाई में वृद्धि न होने तथा स्टार्च आदि भोज्य पदार्थों के प्रचुर मात्रा में संचित हो जाने के कारण आकार आदि में बहुत परिवर्तन हो जाता है। इसके पृष्ठपर बहुत से नत स्थान होते हैं जिन्हें आंखें (Eyes) कहते हैं और जिनमें कलिकायें होती हैं। एक आलू का पौधा जमीन से समूल खोदकर निकाल लिया जाय, और कन्द की आकृति तथा उत्पत्तिपर विचार किया जाय, तो पता चलेगा, कि पृथ्वी की सतह के बराबर पौधे में जो पत्तियां हैं, उनके अन्तकोणोंसे सूत्रवत शाखायें निकलकर जमीन के अन्दर गयी हैं और उनकी शाखाओं तथा उपशाखाओं के अग्रभाग फूल-फूलकर कन्दवत हो गये हैं। शाखाओं पर वल्कपत्र भी पाये जाते हैं। ये ही कन्द जब दूसरी साल बो दिये जाते हैं, तो इनकी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कलिकायें बढ़कर नये पौधे तैयार कर लेती हैं। बहुत से पौधों में मूल भी इसी तरह कन्दवत् हो जाती है (जैसे सतावर सकरकन्द आदि)। पर, यहां मूलकंद Root tuber मूल का रूपान्तर होने से वल्कपत्र तथा कलिका से वंचित रहता है। द्विवार्षिक पौधे की जड़ें भी प्रायः मोटी तथा मांसल हो जाती हैं और सन्तानोत्पत्ति में सहायता देती हैं जैसे मूली, गाजर आदि में। शारीरिक वृद्धि के समय जो पदार्थ इन जड़ों में जमा होता है, फूल फल बनने के समय खर्च हो जाता है। इसीलिये फूल फल आने पर मूली की जड़ें प्रायः खोखली हो जाती हैं।

तने का शाखाक्रम—शाखाओं की उत्पत्ति वस्तुतः अक्षकोणीय कलिकाओं द्वारा होती है। जिस प्रकार जड़ें जल तथा खनिज लवणों की खोज में शाखाओं द्वारा अपना विस्तार करती हैं, उसी प्रकार पत्तिआं भी सूर्य प्रकाश प्राप्त करने के लिये शाखाओं की सहायता से दूर-दूर बिखरी रहती हैं। इसी अभिप्राय से तने पर शाखायें, उपशाखायें तथा टहनियां पैदा होती जाती हैं। इस तरह एक तने से अनेकों गौण तनों की उत्पत्ति होती रहती है। इन्हीं गौण तनों के निकलने के क्रम को शाखाक्रम (Branching) कहते हैं।

शाखाक्रम पार्श्वीय (Lateral) तथा द्विविभक्त (Dichotomous) होता है। जब मुख्य तना निरन्तर बढ़ता जाता है, और वृद्धिशील अग्र के नीचे पत्तिओं के अक्षकोण से क्रमशः

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शाखायें निकलती जाती हैं तो शाखाक्रम पार्श्वीय कहा जाता है। पुष्पवाले पौधों का यह लाक्षणिक शाखाक्रम है। एक पत्ती के अक्षकोण में प्रायः एक ही शाखा निकलती है, परन्तु कहीं-कहीं सहायक कलिकाओं से और शाखायें भी बन जाती हैं। पार्श्वीय शाखाक्रम के परिमित (Cymose अथवा Definite) और अपरिमित (Racemose अथवा Indefinite) दो भेद होते हैं। अपरिमित शाखाक्रम में प्रधान तना बराबर बढ़ता जाता है, और उससे जो शाखायें निकलती हैं वे इस प्रकार बढ़ती हैं, कि पहला तना प्रधान और उससे निकली हुई शाखायें गौण मालूम होती हैं। परिमित शाखाक्रम में पहला तना कुछ समय के बाद अपनी वृद्धि बन्द कर देता है और उसके अग्र के नीचे एक अथवा एक से अधिक शाखायें इस तरह वेग से बढ़ने लगती हैं, कि वे ही प्रधान मालूम होने लगती हैं। इन शाखाओं की वृद्धि भी परिमित होती है, और इनका स्थान उनसे निकली हुई उपशाखायें ले लेती हैं। परिमित तथा अपरिमित दोनों प्रकार के शाखाक्रमों में प्रत्येक ग्रन्थि से एक, दो अथवा दो से अधिक शाखायें निकल सकती हैं। एक निकलने पर शाखाक्रम एकान्तर (Uniparous) दो पर (Biparous) विपरीत और दो से अधिक शाखाओं के निकलने पर वर्तुल (Multiparous) कहा जाता है।

एकान्तर परिमित शाखाक्रम में शाखायें क्रमशः दायें बायें दोनों ओर निकल सकती हैं अथवा कहीं-कहीं सब एक ही

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ओर निकलती जाती हैं। पहली अवस्था में शाखाक्रम Scorpioid और दूसरी अवस्थामें Helicoid (जैसे हस्तिशुण्डी) कहा जाता है। इन दोनों में शाखायें जिस तरह निकलती हैं उसी तरह यदि वे अपनी वृद्धि भी करें अर्थात् उनकी वृद्धि दिशा में कोई परिवर्तन न हो तो काल्पनिक चित्र के अनुसार उनका मुख्य तना क्रमशः टेढ़ा-मेढ़ा अथवा एक ही ओर पेचदार घूमा हुआ होगा। परन्तु वस्तुतः प्रकृति में ऐसा नहीं होता। प्रायः शाखायें सीधी होकर एक ही दिशामें ऊपर की ओर वढ़ती हैं। अतः वे सब मिलकर एक सीधे संयुक्त तने का निर्माण करती हैं जिसे संयुक्त-पादी या बहुपादी अक्ष (Sympodium) कहते हैं। यह तना एक साधारण अपरिमित शाखाक्रम के समान ही प्रतीत होता है। इन दोनों का पृथक्करण पत्तियों की स्थिति से ही किया जा सकता है। संयुक्तपादी तनों पर शाखा और पत्ती एक दूसरे के विपरीत मालूम होती हैं। क्योंकि जिन्हें हम शाखायें समझते हैं, वास्तव में वे उस स्थान की शाखा नहीं वरन् नीचे वाली शाखा के अग्रभाग हैं जिनकी वृद्धि बन्द हो गयी है।

अग्रस्थित वृद्धिशील तंतु जब दो भागों में बट जाता है और प्रत्येक से एक-एक शाखा निकलती है तो शाखाक्रम द्विविभक्त कहा जाता है। ऐसा पुष्पहीन पौधों में ही पाया जाता है। इसमें भी कहीं-कहीं दोनों शाखाओं का विकास बराबर होता है, (वास्तविक द्विविभक्त) और कहीं-कहीं दोनों छोटी बड़ी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होती हैं। प्रधान शाखा एक ही ओर होने से शाखाक्रम (Helicoid) द्विविभक्त और दोनों ओर होने से (Scorpioid) द्विविभक्त होता है, पुष्पवाले पौधों में कहीं-कहीं मिथ्या द्विविभक्त (False dichotomy) शाखाक्रम के उदाहरण मिलते हैं। परिमित द्विविभक्त में अग्रस्थित भाग जब किसी तरह नष्ट हो जाता है तो ऐसी अवस्था देखने में आती है। साधारण विपरीत परिमित शाखाक्रम में शाखा संस्थान को Dichasium विपरीत शाखा संस्थान और वर्त्तुल परिमित शाखाक्रम में शाखा संस्थान को वर्त्तुल शाखा संस्थान (Polychasium) कहते हैं।

संयुक्तोत्पत्ति (Adnation) — कहीं-कहीं शाखायें जिन पत्तियों के अक्षकोण से निकलती हैं, उनसे कुछ दूरी तक जुटी हुई रहती हैं, जिससे शाखा तने से निकली हुई मालूम होती है, पर पत्ती स्वयं उसी शाखा से निकली हुई मालूम होती है। मकोय तथा असगन्ध आदि में पुष्पवाहक भागों में पत्तियां एकान्तर होते हुए भी इसी कारणसे विपरीत मालूम पड़ती हैं क्योंकि जिस पत्ती के अक्षकोण की वह शाखा होती है वह और उस शाखा की पहली पत्ती दोनों विपरीत मालूम होती हैं। वास्तविक अवस्था का पता इस तरह चलता है कि वे दोनों पत्तियां छोटी बड़ी होने के कारण भिन्न-भिन्न अवस्था की मालूम होती हैं। विपरीत पत्तियों में ऐसा नहीं होता। उपर्युक्त अवस्था को संयुक्तोत्पत्ति (Adnation) कहते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वायवीय तने तथा शाखा के रूपान्तर—विशेष परिस्थिति में होने वाले पौधों के तने तथा शाखायें प्रायः उस परिस्थिति के अनुकूल अपना रूपान्तर कर लेती हैं जिससे कि वे पौधे की असाधारण आवश्यकताओं को पूरी कर सकें। रूप विशेष धारण करने पर ही वे विशेष प्रकार के कार्य कर सकते हैं। तनों के भिन्न-भिन्न रूपान्तर प्रायः (I) सन्तानोत्पत्ति (II) संचय (III) रक्षा तथा (IV) आरोह के भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं।

जिन वायवीय रूपान्तरित भागों का सम्बन्ध सन्तानोत्पत्ति से है, उनमें स्वतन्त्र कलिका, रनर, आफसेट, सकर आदि की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। संचय और सन्तानोत्पत्ति के लिये भौमिक तनों के जो रूपान्तर होते हैं, उनका भी वर्णन हो चुका है। वायुमण्डल की अत्यन्तावस्थाओं में अपनी रक्षा के लिये तथा भूखे जन्तुओं से अपने को बचाने के लिये भी तने रूपान्तरित हो जाया करते हैं। शुष्क परिस्थिति में यह आवश्यक होता है, कि पौधों में अधिक जल त्याग न हो। इसे कम करने के लिये तने प्रायः हरे और मांसल होकर पत्ती का कार्य करने लगते हैं, और आकार भी कुछ न कुछ पत्तियों का सा हो जाता है। यहां पत्तिआं भी प्रायः सभी कांटों अथवा वल्कपत्रों में बदल जाती हैं। इस प्रकार के परिवर्तित तनों को फाइलोक्लेड अथवा क्लैडोड (Phylloclade अथवा cladode) कहते हैं, इसके उदाहरण नागफनी, रसकस तथा दुग्धिका जाति के पौधों में मिलते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जन्तुओं से अपनी रक्षा करने के लिये तने कांटों में बदल जाते हैं। ऐसे कांटे पत्तिओं के अक्षकोण से निकलते हैं। किसी किसी पौधे में ऐसे भी कांटे होते हैं, जो किसी अङ्गविशेष के रूपान्तर न होकर रोमादिकों की तरह साधारण वहिरुद्भेद मात्र होते हैं। इन कांटो में रसवाहक तन्तु का अभाव होता है, जिससे पहले प्रकार के दृढ़ कण्टकों (Thorns) की अपेक्षा ये (Spines) मृदुकराटक आसानी से अलग किये जा सकते हैं। स्पर्श जनित उत्तेजना के उत्तर में वहुत से पौधे तनों तथा पत्तिओं का सूत्रवत् रूपान्तर कर लेते हैं। ये सूत्र कमजोर तनों के आरोहण में सहायता पहुंचाते हैं। सूत्र जब पत्ती का रूपान्तर होता है तो पत्तो के, और तने का रूपान्तर होता है तो तने के स्थान में पाया जाता है। पुष्पवाले पौधों में प्रायः किसी न किसी अवस्था में तने के अग्र पर अथवा शाखाओं के स्थान पर पुष्प निकलने लगते हैं। पुष्प भी शाखा का ही रूपान्तर है जो सन्तानोत्पत्ति के लिये वैसा विशेष रूप धारण करता है।

तने का पृष्ठ (Stem-surface)—यह पृष्ठ कहीं कहीं चिकना (Glabrous) होता है और कहीं २ उसपर रोम, कण्टक तथा अन्य प्रकार के वहिरुद्भेद पाये जाते हैं। वहिरुद्भेदों के अनुसार उसे रोमश (Hairy), दृढ़ कण्टकयुक्त (Thorny) अथवा मृदुकराटकयुक्त (Spiny) कहते हैं। वहुत से तनों का पृष्ठ हरा और चमकीला होता है और (Glacous)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कहा जाता है। पृष्ठ के घुमाव फिराव आदि जतलाने के लिये भी बेलनाकार (Cylindrical) तथा कोणयुक्त (Angular) इन शब्दों का प्रयोग होता है। जब उनका अनुप्रस्थ विच्छेद गोला होता है तो तना बेलनाकार और कोणमय होता है, और तब कोणित कहा जाता है।

तने के कार्य--तना पत्तियों और पुष्पों के लिये स्तंभ-वत् कार्य करता है। उसपर पत्ती तथा पुष्प इस प्रकार निश्चित और नियमित रूप से क्रमबद्ध रहते हैं, कि वे अपना कार्य ठीक तरह से कर सकते हैं। तने की वृद्धि भी प्रायः इस तरह की होती है, कि उसपर आवश्यकतानुसार उपर्युक्त वानस्पतिक तथा सन्तानोत्पादक भाग पर्याप्त संख्या में निकलने का स्थान पाते जाते हैं। तने पर पत्तिआं इस तरह बिखरी रहती हैं, कि उनकी अधिक से अधिक संख्या सूर्य-प्रकाश को अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त कर सकती हैं। इसी प्रकार पुष्प भी विशेष प्रकार से क्रमबद्ध होने के कारण उन कीड़ों के लिये सुगम्य होते हैं जो उनके पराग को दूसरे पुष्पों में पहुंचाकर सन्तानोत्पत्ति कराते हैं। ठीक यही बात फल के लिये भी कही जा सकती है अर्थात् फल तथा बीज प्रसार के लिये भी तने पर वे सानुकूल स्थितिमें हो पाये जाते हैं। तने के होने से पौधे पत्तिओं और पुष्पों को अधिक संख्या में उत्पन्न करके अपने लिये प्रचुर मात्रा में भोज्य पदार्थ तैयार कराते हैं और बहुत अधिक बीज भी उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तना निर्मित तथा अनिर्मित खाद्य पदार्थों के घोल को अभीष्ट स्थानों में पहुचाने का कार्य करता है। उसकी रसवाहक नलिकाओं द्वारा पृथ्वी से शोषित किया हुआ घोल जड़ से पत्तिओं तक पहुंचता है, और पत्तिओं में जिन खाद्य पदार्थों की सृष्टि होती है, उनका घोल अन्य भागों में आवश्यकतानुसार तने की ही नलिकाओं द्वारा भेजा जाता है।

तने खाद्य पदार्थों का संचय भी करते हैं। पत्तिओं में जो पदार्थ बनते हैं, उन्हें वे संचित करके रख नहीं सकतीं। अतः वे पदार्थ अन्य भागों में चले जाते हैं, और व्यय के बाद जो अंश बचजात है, वह संचय तंतुओं में जमा हो जाता है। इन साधारण कार्यों के अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में रूपान्तरित होकर तने (१) सन्तानोत्पत्ति (२) संचय (३) रक्षा तथा (४) आरोहण के भिन्न-भिन्न कार्य भी करते हैं जिनका वर्णन पहले ही कर दिया गया है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद ३

पत्ती (Leaf).

पत्ती के मुख्य कार्य—पत्तियों का मुख्य कार्य पौधे के लिये भोज्य पदार्थ तैयार करने का है, जिसे वे वायुमण्डल से CO_2 और पृथ्वी से आये हुए खनिज लवणों के घोल को लेकर सूर्य प्रकाश की सहायता से बना लेती हैं। इस क्रिया के लिये पत्तिओं के हरे पदार्थ (Chlorophyll), जल, लवण घोल, CO_2 और प्रकाश आदि आवश्यक सीमास्थापक (Limiting) उपकरण हैं। इस क्रिया में पहले शर्करा तथा शर्करा श्रेणी के अन्य रासायनिक यौगिक तैयार होते हैं, जो आगे चलकर भिन्न २ तरह की रासायनिक क्रियाओं में भाग लेकर उन असंख्य वानस्पतिक पदार्थों के रूप में बदल जाते हैं, जिनमें बहुतों के नाम तथा रासायनिक रचना का भी हमें पूरा ज्ञान नहीं है। CO_2 और प्रकाश पत्तिओं को बाहरी वायुमण्डल से मिल जाते हैं, और जल तथा लवणों का घोल पृथ्वी से जड़ों द्वारा शोषित होकर तनों की रसवाहक नलिकाओं द्वारा इनमें पहुंचाया जाता है। इस प्रकार जड़ से पत्तिओं तक जल की एक धारा बहा करती है, जिससे आवश्यकता से अधिक आया हुआ जल भी पत्तिओं में आ जाता है। जल के इस अनावश्यक अंश को बाहर निकालने का भार भी मुख्यतः पत्तिओं पर ही होता है। पत्तियों के पृष्ठ पर बहुत सूक्ष्म छिद्र होते हैं,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जिनके द्वारा पत्तियां वायुमण्डल से वायव्य-विनिमय (Gaseous Exchange) भी करती हैं और इस जल को भी वाष्प रूप में बाहर निकाला करती हैं।

उपर्युक्त भिन्न २ कार्यों को उचित रूप से पूरा करने के लिये पत्तिओं को प्रायः अपने आकार तथा क्रम में परिस्थिति के अनुसार अनेकों प्रकार के परिवर्तन करने पड़ते हैं। साधारणतः वे पतली और चिपटी होती हैं, और शाखाओं तथा टहनिओं पर इस तरह क्रमवद्ध रहती हैं, कि उन्हें इन कार्यों में एक दूसरे से वाधा पहुंचने की कम सम्भावना रहती है। परिस्थिति की भिन्नता से पत्तिओं को प्रायः अपने कार्यक्रम में भी बहुत परिवर्तन कर देने पड़ते हैं, और तदनुसार रूप-बाहुल्य भी अनिवार्य हो जाता है। आकार सम्बन्धी परिवर्तन कहीं २ पत्तिओं में बिल्कुल रूपान्तर उत्पन्न कर देते हैं, जिनकी चर्चा अन्त में की जायगी। इनके अतिरिक्त साधारण आकारवाली पत्तिओं के भी कार्य के अनुसार चार भेद होते हैं।

(१) **बीजपत्र** (Cotyledonary leaves):—बीज के अन्दर जो भ्रूण वनस्पति (Embryo plant) होती है उसमें एक, दो अथवा कहीं २ दो से भी अधिक ऐसी रचनायें होती हैं जिन्हें बीजपत्र कहते हैं। इनका आकार कहीं २ पत्रवत् (एरण्ड) होता है, परन्तु अधिकतर भोज्य पदार्थों के सञ्चय के कारण उनका आकार प्रायः चने अथवा मटर की दाल की तरह होता है, बहुत से पौधों में बीजोद्भेद के बाद यही

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बीजपत्र पौधें की सर्व-प्रथम निकली हुई पत्तियों का रूप धारण करते हैं।

२ **प्रामाणिक पत्ती** (Foliage leaves)—साधारण आकार वाली हरी पत्तीआं जिनसे भोज्य पदार्थों का निर्माण होता है, प्रामाणिक पत्तिआं कही जाती हैं।

३ **वल्कपत्र**—ये भौमिक तनों पर अधिक होते हैं, ये साधारण पत्तिओं की अपेक्षा बहुत छोटे और रङ्ग में प्रायः भूरे होते हैं, ये साधारणतः पतले होते हैं, पर कहीं-कहीं जैसे प्याज में रसदार और मांसल होते हैं। साधारण पत्तिओं के पुंखपत्र (Stipule) भी प्रायः वल्कपत्रों का ही काम करते हैं जैसे बरगद में।

वल्की—कलिकाओं के वल्कपत्रों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है।

४ **पुष्प पत्र तथा वृन्तपत्र** (Floral leaves & Bracts) पुष्पवाहक प्रान्त की पत्तिआं प्रायः साधारण पत्तिओं से भिन्न होती हैं। पुष्प की पत्रवत् पंखुड़िओं को छोड़कर यदि केवल पुष्पदण्ड अथवा पुष्प नाल की ही पत्तिओंपर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि वे भी प्रायः साधारण पत्तिओं से भिन्न हैं। इसी लिये इस प्रान्त की पत्तिओं को भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं। पुष्प के भिन्न-भिन्न भाग पुटपत्र, दलपत्र, पुष्पलिंग तथा पुष्प योनि कहे जाते हैं; जो पतिओं के ही रूपान्तर मात्र हैं, अतः पुष्पपत्र कहे भी जाते हैं। पुष्पदण्ड की पत्ती

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

को वृन्तपत्र कहते हैं, जिनकी चर्चा पुष्प के प्रकरण में की जायगी।

पत्ती की वाह्य रचना—एक प्रामाणिक पत्ती के मुख्यतः तीन भाग होते हैं। पत्ती का वह भाग जिससे वह तने पर लगी रहती है पत्राधार (Leaf-base) कहा जाता है। पतला और चिपटा हरा भाग फलक (blade) कहा जाता है। फलक और पत्राधार के बीच के डण्ठल को पत्र-नाल (Petiole) कहते हैं। बहुत सी पत्तियां पत्रनाल रहित होने के कारण विनाल (Sessile) और बहुत सी पत्रनाल युक्त होने पर सनाल (Petiolate) कही जाती हैं। ये तीनों भाग सब पौधों में एक तरह के नहीं होते। उनके आकार आदि में बहुत भिन्नता पायी जाती है।

पत्राधार—बहुत से पौधों में पत्राधार पत्रनाल से भिन्न नहीं मालूम होता, पर बहुतों में वह मोटा होता है, और (Pulvinus) कहा जाता है, मोटा और फूला हुआ पत्राधार प्रायः गतिशील होता है। उसके अन्दर उत्तेजितत्व शक्ति से युक्त तंतुओं की एक गद्दी होती है, जिसके द्वारा पत्तिआं गति करती हैं। यही कारण है, कि बहुत से पौधों में वे वाह्य उत्तेजनाओं के हानिकारक प्रभावों से बचने के लिये गति द्वारा अपनी स्थिति बदल देती हैं। इसका बहुत स्पष्ट उदाहरण लाजवन्ती में मिलता है। बहुत से पौधों में पत्राधार कोषमय (Sheathing) भी होता है। वह चौड़ा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होकर इस प्रकार तने पर फैला रहता है, कि उससे तना अंशतः अथवा पूर्णतः ढका रहता है। ऐसे पत्राधार एक-दली पौधों में प्रायः नियमित रूप से पाये जाते हैं, जैसे केला, हल्दी, मकई, गन्ना आदि। द्विदली पौधों में भी, जैसे गर्जरादि वर्ग (धनिया, सोआ, गाजर) और अतीस वर्ग में, कोषमय आधार वाली पत्तिआं अधिक मिलती हैं।

बहुत से पौधों में पत्राधार के दोनों ओर दो छोटी-छोटी पत्रवत् रचनायें पायी जाती हैं जिनको पुंखपत्र (Stipule) कहते हैं। इन पुंखपत्रों से सम्भवतः कोई विशेष कार्य नहीं होता। पत्तिओं के अक्षकोण में जो कलिकायें होती हैं, उनकी रक्षा करना इनके अस्तित्व का प्रयोजन हो सकता है। इनके आकार और रूप में बड़ी विषमता पायी जाती है। कहीं ये रूपान्तरित होकर बड़े महत्व के कार्य करते हैं। जैसे मटर में पत्रक सूत्रवत् हो जाने से पत्ती का मुख्य कार्य नहीं कर पाते, अतः उसके पुंखपत्र बहुत बड़े और हरे होकर पत्तिओं का कार्य करने लगते हैं। बरगद में ये नवीन कलिकाओं की रक्षा करते हैं, और कहीं-कहीं जैसे बेर और बब्बूल में कांटों में रूपान्तरित होकर पशुओं से उनकी रक्षा करते हैं। चोबचीनी जाति (Smilax) के पौधों में इनका सूत्रवत् रूपान्तर हो जाता है, जिससे उनके आरोहण में ये सहायक होते हैं।

पुंखपत्रों के क्रम में भी बहुत भिन्नता देखने में आती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

साधारणतः दोनों पुंखपत्र पत्राधार के दोनों ओर एक दूसरे से अलग-अलग रहते हैं, और स्वतन्त्र (Free) कहे जाते हैं। गुलाव में पत्ती के पीछे दोनों पुंखपत्र परस्पर मिलकर पत्रनाल से भी मिल जाते हैं, इसलिये वहां उन्हें नाल लग्न (Petiolar) कहते हैं। बरगद में दोनों मिलकर पत्ती के विपरीत हो जाते हैं, और विपरीत (Opposite) कहे जाते हैं। वे जब दूसरी धारों से मिले रहते हैं तो पत्ती के अक्षकोण में दिखायी देते हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें अक्षकोणीय कहते हैं। चक्रवर्ग (Polygonaceae) के पौधों में दोनों पुंखपत्र दोनों धारों पर एक दूसरे से मिले रहते हैं, जिससे तना उनसे चारों ओर से घिर जाता है। उनकी ऊपरी धार प्रायः कटी हुई और रोमश होती है। ऐसे पुंखपत्रों को परिकाण्ड (Ochreate) कहते हैं, और उनके मिलने से जो नलिकाकार कोष बनता है, उसे पुंखकोष (Ochrea) कहते हैं। मंजिष्ठादिवर्ग (Rubiaceae) में पत्तिआं विपरीत होती हैं, अतः प्रत्येक ग्रन्थिपर चार-चार पुंखपत्र होने चाहिये पर देखने में दो ही आते हैं। इसका यह कारण है, कि एक पत्ती का एक पुंखपत्र दूसरी पत्ती के समीप वाले पुंखपत्र से मिल जाता है, और दूसरी ओर भी शेष दोनों पुंखपत्र मिल जाते हैं, जिससे प्रत्येक ग्रन्थि पर से पत्ती और दो पुंखपत्रों का एक चक्र सा बन जाता है। इस तरह के पुंखपत्रों को अन्तर्नालीय (Interpetiolar) कहते हैं।

जब पत्राधार पंखवत् फैलकर अपनी ओर तने को घेरे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रहता है तो उसे अर्धतनासक्त (Semi-amplexicaul) और यदि चारों ओर से तने को घेरे रहता है, तो उसे पूर्णतनासक्त (Amplexicaul) कहते हैं। विनाल पत्तिओं में भी कहीं-कहीं फलक के आधारीय कर्णवत् भाग तने को घेरे रहते हैं। ऐसी अवस्था में पत्ती को कर्णासक्त (Auriculate) कहते हैं। यदि वे ही कर्णवत् भाग पत्ती के विपरीत जाकर मिल जाते हैं, तो पत्ती को परिकाण्ड (Perfoliate) कहने लगते हैं। विपरीत पत्रक्रम में जब यही अवस्था दो पत्तिओं के मिलने से हो जाती है तो पत्तिओं को विपरीत परिकाण्ड (Connate) कहते हैं। जब किसी पत्ती के नीचे का, पतला, फलक का भाग कुछ दूरी तक तने के समानान्तर उससे जुड़ा हुआ रहता है तो पत्ती को काण्डलग्न (Decurrent) कहते हैं।

पत्रनाल:—पौधों के सुव्यवस्थित जीवन में कहीं इनका कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। पत्तिओं को प्रकाश त वायुमण्डल से पूर्ण लाभ पहुंचाने के लिये कहीं २ ये पत्रनाल बढ़कर इस प्रकार टेढ़े हो जाते हैं, कि आवश्यकतानुसार वे पत्तिओं की स्थिति में परिवर्तन ला देते हैं जो समयानुकूल और अभीष्ट होता है। कहीं २ सुन्दर और आकर्षक पत्रविन्यास (Leaf-mosaic) की रचना पत्रनालों की ही सहायता से की हुई रहती है। पत्रनाल का विच्छेद साधारणतः गोला होता है, पर उसका ऊपरी पृष्ठ प्रायः चौड़ा होता है, और कहीं २ उसपर नाली सी होती है, जिससे इसका अनुप्रस्थ विच्छेद

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गोलार्द्ध की तरह मालूम होता है। गेहूँ तथा इस वर्ग के पौधों में पत्रनाल कोषमय होने के कारण तने को घेरे रहता है। कोष और फलक के जोड़ पर एक सूक्ष्म झिल्ली की तरह अथवा रोमश वहिरुद्भेद होता है, जिसे पृष्ठज (Ligule) कहते हैं। तने और कोष के बीच में वायु भरी रहती है, जो ताप का कुचालक होने से ताप-जन्य हानिकारक प्रभावों से तने की रक्षा करती है। इसके अतिरिक्त पृष्ठज इस वायुपूर्ण स्थान में जल तथा कीड़ों का प्रवेश नहीं होने देता।

जल में होनेवाले पौधों में पत्रनाल प्रायः कुछ न कुछ फूला हुआ रहता है, क्योंकि उसके अन्दर बहुत से वायुपूर्ण खात (Cavities) होते हैं, जिनके कारण वे पौधे जल के ऊपर तैरा करते हैं, जैसे कुम्भी। डायनिया नामवाले कीट-भोजी (Insectivorous) पौधों में मुख्य फलक कीड़ों को पकड़ने के लिये विशेष आकार का हो जाता है, केवल इसका पत्रनाल पत्रवत् फैला रहता है। गर्म प्रदेशों के कुछ पौधों में फलक नहीं रहता, और यदि उसका कुछ विकास होता भी है, तो वह शीघ्र सूख कर गिर जाता है। ऐसी अवस्था में पत्रनाल ही पत्रवत् होकर फलक का कुछ कार्य करता है।

फलक—इसके आकार आदि में बड़ी विषमता पायी जाती है। कहीं २ तो यह साधारण अविभक्त होता है, और कहीं २ यह इतना विभक्त रहता है, कि एकही फलक कई स्वतन्त्र फलकों में बट जाता है। फलक प्रायः दो पृष्ठ का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होता है। इसमें कठोर तन्तुओं का बना हुआ एक पञ्जर (Skeleton) होता है, जो फलक के लिये अवलम्ब रूप होता है। यह पञ्जर बहुत नसों से बना रहता है, जिनसे फलक फैला हुआ और सुदृढ़ बना रहता है।. इन्हीं नसों द्वारा जड़ से आया हुआ जल फलक में सर्वत्र पहुँचता है, और इन्हीं के द्वारा निर्मित खाद्य-द्रव्य पत्ती के बाहर अन्य भागों को भेजे जाते हैं। पत्तिओं के बीचोबीच प्रायः एक मुख्य नस होती है, जिससे अन्य नसें निकली रहती हैं, और जो औरों की अपेक्षा मोटी भी होती है। इसी को मध्य-पर्शुक (Midrib) कहते हैं।

नाड़ीक्रम (Venation) पत्तिओं में इन नसों के क्रम को नाड़ीक्रम कहते हैं। यह दो तरह का होता है (१) समानान्तर (Parallel) और (२) जाल नाड़ीक्रम (Reticulate) समानान्तर नाड़ी क्रम में नाड़ियां करीब-करीब समानान्तर होती है और प्रत्येक की शाखायें भी समानान्तर होती हैं। बहुपर्शुक्त Multicostate पत्तिओं में जिनमें प्रधान नसें एक से अधिक और आधार से अग्रतक फैली रहती हैं, आधार से अग्रतक जानेवाली नसें समानान्तर मालूम होती हैं, और एकपर्शुक unicostate पत्तिओं में भी जहां आधार से अग्रतक जाने वाली प्रधान नस एक ही होती हैं, मध्यपर्शुक से निकली हुई शाखायें परस्पर समानान्तर मालूम होती हैं। समानान्तर नाड़ीक्रम प्रायः एक-दली पौधों में पाया जाता है। जाल नाड़ीक्रम में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नाड़ियों का एक जाल सा बन जाता है। यहां भी प्रधान नाड़ियां अथवा मध्यपर्शुक से निकली हुई नसें समानान्तर मालूम होती हैं, पर उनसे निकली हुई सूक्ष्म शाखायें एक दूसरे से मिलकर जाल सदृश रचना बना लेती हैं। पत्ती को प्रकाश की दिशा में रखकर देखने से नाड़ीक्रम का ठीक-ठीक पता चलता है। जाल नाड़ीक्रम प्रायः द्विदली पौधों में पाया जाता है, पर कहीं-कहीं एक दली पौधों में भी इस क्रमकी पतिआं देखने में आती हैं, जैसे स्माइलेक्स जाति के पौधों में।

पत्रनाल फलक में आकर दो तरह से विभक्त होता है। कहीं-कहीं तो यह पत्ती के अग्रतक मध्यपर्शुक के रूप में बढ़ा हुआ होता है, और उसके दोनों ओर से शाखायें निकल कर फ़लक में फैली रहती हैं। इस प्रकार के नाड़ीक्रम को पक्षा-कार अथवा एक पर्शुक कहते हैं। परन्तु यदि पत्रनाल फलक के आधार पर ही कई मुख्य नाड़ियों में विभक्त हो जाता है, जो आधार से अग्रतक फैली रहती हैं, तो नाड़ीक्रम करतलाकार (Palmate) अथवा बहुपर्शुक कहा जाता है। फलक के विभक्त होने की विधि नाड़ीक्रम पर ही निर्भर करती है।

साधारण तथा संयुक्त पत्ती :—जब तक फलक एक हो चाहे वह बहुविभक्त होकर कई भागों में क्यों न बट गया हो, तबतक पत्ती को साधारण (Simple) कहते हैं। इनमें कुछ ऐसी होती हैं, जिनकी धार कुछ भी कटी हुई नहीं रहती, और कुछ ऐसी होती हैं जिनकी धार पर छोटे-छोटे दांत पाये जाते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होती है।तिरिक्त बहुत सी साधारण पत्तिओं के स्पष्ट विभाग हो तो संरहते हैं। वे विभाग या विच्छेद (Lobe) कहीं-कहीं अधिक से अधिक धार और मध्यपर्शुक अथवा धार और पत्रनाल के बीच तक एक दूसरे से अलग होते हैं। ऐसी अवस्था में पत्ती को Fid और फलक के भागों को Cleft कहते हैं। यदि कटाव आधे से कुछ अधिक दूरी तक हो, तो फलक के भागों को Segment और पत्ती को Sect कहते हैं। कहीं-कहीं यह कटाव मध्य पर्शुक अथवा पत्रनाल के समीप तक पहुंचा हुआ रहता है, और तब विच्छेदांको Partitions और पत्ती को Partite कहते हैं पत्ती को वस्तुतः उपर्युक्त अवस्थाओं में नाड़ीक्रम के अनुसार Pinnatifid, Pinnatisect Pinnatipartite तथा Palmatifid, Palmatisect और Palmati-partite कहते हैं। यदि Pinnati-partite तथा Palmati-partite साधारण पत्तिओं के कटाव और अधिक बढ़कर मध्यपर्शुक अथवा पत्रनाल तक पहुंच गये हों और उनके विच्छेद एक दूसरे से अलग और स्वतन्त्र हो गये हों तो पत्ती संयुक्त Compound कही जायगी। इसके प्रत्येक स्वतन्त्र विच्छेद को तब पत्रक Leaflet कहने लगते हैं।

Pinnati partite साधारण पत्ती से पत्राकार (Pinnate) संयुक्त पत्ती का और Palmati partite पत्ती से करतलाकार Palmate संयुक्त पत्ती का विकास होता है। पत्राकार संयुक्त पत्ती में पत्रक मध्यपर्शुक अथवा पत्रदण्ड के दोनों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ओर एकान्तर अथवा विपरीत क्रम में पाये जाते हैं। प्रधान तरह एक पत्ती से अनेकों पत्रक बन जाते हैं, उसी प्रकार एक पत्रक कहीं-कहीं फिर कई उपपत्रकों में विभक्त हो जाता है। ऐसी अवस्था में पत्ती द्विपक्षाकार संयुक्त कही जाती है यही क्रिया तीसरी बार भी हुई हो, तो पत्ती त्रिपक्षाकार (Tripinnate) संयुक्त हो जाती है। इससे भी अधिक होने पर पत्ती को बहु पक्षाकार Decompound कहते हैं। पक्षाकार संयुक्त पत्ती में पत्रकों की संख्या सम हो, और पत्रदण्ड के अग्रपर कोई अकेला पत्रक न हो तो पत्ती को समसंख्यक पक्षाकार Paripinnate कहते हैं. और यदि पत्रकों की संख्या विषम हो अर्थात् पत्रदराड के अग्रपर एक अकेला पत्रक भी हो, तो पत्ती को विषम संख्यक पक्षाकार Impari pinnate कहते हैं। करतलाकार संयुक्त पत्ती को भी पत्रकों की संख्या के अनुसार द्विपत्रक Binate त्रिपत्रक Trifoliate अथवा Ternate आदि विशेषण देते हैं।

'संयुक्त पत्ती तथा एक शाखा में अन्तर:— संयुक्त पत्तिआं, विशेषकर पक्षाकार संयुक्त पत्तिआं एक साधारण शाखा की तरह मालूम होती हैं, इसलिये प्रारम्भ में प्रायः भ्रम हो जाता है। परन्तु यदि इन बातों पर ध्यान रखा जाय, कि (१) पत्ती के अक्षकोण में शाखा अथवा कलिका होती है (२) पत्ती के अन्तिम वा अग्र भाग पर तथा पत्रकों के अक्षकोण में कलिकायें नहीं होतीं (३) शाखा के अग्र पर प्रायः कलिका

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होती है और शाखा स्वयं पत्ती के अक्षकोण से निकलती है, तो संयुक्त पत्ती और शाखा में कदापि भ्रम न होगा। इनके अतिरिक्त पुंखपत्र, कोषमय पत्राधार तथा स्थूल पत्राधारों की स्थिति देखकर भी यह भ्रम मिटाया जा सकता है, क्योंकि, ये रचनायें प्रायः पत्ती के ही आधार पर होती हैं पंत्रक के नहीं।

पत्तिओं का विवरण :— किसी पत्ती का पूर्ण परिचय कराने के लिये उसके आकार, नाड़ीक्रम, धार का घुमाव तथा उसकी बनावट, आधार, अग्र, पृष्ठ, मोटाई, रंग, गठन, उसके वहिरुद्भेद, गन्ध तथा स्वाद आदि सभी बातों को देखा जाता है। इस तरह भिन्न २ दृष्टि से यदि पत्ती की परीक्षा की जाय, तो वनस्पति निर्णय में बहुत सहायता मिलती है। अतः अब हम उन पर अलग २ विचार करेंगे।

पत्ती का आकार :— भिन्न २ आकार की पत्तिआं चार शीर्षकों के अन्दर लायी जा सकती हैं :—

(अ) आधार की ओर अधिक और अग्र की ओर कम चौड़ी

(१) लट्वाकार (Ovate) आधार पर गोली और सबसे अधिक चौड़ी, अग्र की ओर क्रमशः पतली।

(२) ताम्बूलाकार (Cordate) अग्रपर नोकीली, आधार पर सबसे अधिक चौड़ी और पत्रनाल के जोड़ पर भीतर की ओर धंसी हुई।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(३) पुंखाकार (Sagittate) अग्र की ओर कुछ न कुछ नोकीली, आधार पर चौड़ी और भीतर धंसी हुई, आधार पर दोनों ओर के विच्छेद पत्रनाल की ओर बढ़े हुए।

(४) Hastate—पुंखाकार की तरह, परन्तु आधारीय विच्छेद बाहर की ओर बढ़े हुए।

(५) वृक्काकार (Reniform) वृक्क के आकार की, अर्थात् अग्रपर गोली, पार्श्वों में लम्बी और आधार पर भीतर की ओर धंसी हुई।

(६) अर्धचन्द्राकार—वृक्काकार पर आधारीय भाग नोकीले।

(ब) आधार पर नोकीली और अग्र पर चौड़ी

(१) व्यस्त लट्वाकार (Ob-ovate अ (१) का उलटा हुआ आकार जिनमें हो।

(२) व्यस्त ताम्बूलाकार अ (२) का उलटा हुआ आकार जिनमें हो।

(३) Spathulate अग्रपर चौड़ी और गोली, आधार पर क्रमशः नोकीली।

(स) गोली और विषमाकार

(१) वृत्ताकार अथवा गोली पत्तियां।

(२) विषमाकार अथवा मध्यपर्शुक के एक ओर का भाग बड़ा और दूसरी ओर का छोटा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(द) अन्य आकार की पत्तियां

(१) Subulate—यदि फलक लम्बा और कम चौड़ा हो, और आधार से अग्रतक क्रमशः कम चौड़ा होता हुआ अग्रपर नोकीला हो गया हो ।

(२) Linear रेखाकार—यदि फलक लम्बा और कम चौड़ा हो, परन्तु आधार से अग्रतक उसकी चौड़ाई एक हो अर्थात् उसकी दोनों धारें समानान्तर हों ।

(३) Acicular सूच्याकार-यदि रेखाकार पत्ती का अग्र तीक्ष्ण और नोकीला हो ।

(४) भालाकार (Lanceolate)—यदि फलक बीच में सबसे अधिक चौड़ा हो, लम्बाई चौड़ाई से बहुत अधिक हो और अग्र तथा आधार की ओर क्रमशः पतला होता गया हो ।

(५) अण्डाकार Elliptical—यदि फलक लम्बाई में चौड़ाई से कुछ अधिक हो बीच में सबसे अधिक चौड़ा और दोनों ओर क्रमशः पतला होकर कुछ न कुछ नोकीला हो गया हो ।

(६) आयताकार-यदि फलक आयत (Rectangle) की तरह हो ।

(७) Lyrate—जब एकपर्शुक पत्ती इस प्रकार कटी हुई हो कि उसका अग्रस्थित विच्छेद सबसे बड़ा और करीब

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

करीब गोला हो, और शेष नीचे के विच्छेद क्रमशः छोटे होते गये हों।

कहीं-कहीं पत्तिओं के आकार का ठीक-ठीक ज्ञान उपर्युक्त किसी एक शब्द से नहीं हो पाता, तो संयुक्त विशेषणों, जैसे लट्वाकार-भालाकार, ताम्बूलाकार-लट्वाकार आदि का प्रयोग करना पड़ता है।

पत्ती का अग्र (Apex) पत्तिओं के अग्र भी कई तरह के होते हैं। (१) **तीक्ष्णाग्र** (Acute) जब पत्ती की दोनों धारें अग्र पर मिलकर छोटा न्यूनकोण बनावें, जिससे अग्र नोकीला मालूम हो (२) **लम्बाग्र** (Acuminate) यदि तीक्ष्णाग्र पीपल के पत्राग्र की तरह बहुत लम्बा हो (३) **कुण्ठिताग्र** Obtuse यदि अग्र नोकीला न होकर गोला हो (४) **नताग्र** (Emarginate) जब कुंठिताग्रपर धार कुछ भीतर की ओर दबी हुई हो (५) रोमश कुंठिताग्र (Mucronate) यदि कुंठिताग्र पर एक सूक्ष्म रोम पाया जाय (६) छताग्र (Truncate) यदि देखने से ऐसा मालूम हो कि उसका अग्रभाग काट दिया गया है।

पत्ती की धार:—धार जब बिलकुल कटी हुई न हो तो उसे पूर्ण धार (Entire) कहते हैं, परन्तु जब धार पर दांत के आकार की रचनायें मौजूद हों तो उसे दन्तमय धार कहते हैं। विच्छेदमय धार की पत्तिओं का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। दन्तमय धार कई तरह की होती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(१) Serrate जब छोटे और नोकोले दांत आरी के दांतों की तरह आगे की ओर हों (२) Retroserrate यदि वे ही दांत पीछे अथवा आधार की ओर हों (३) Dentate यदि दांत नोकीले और बाहर को ओर हों (४) Crenate जब दांत गोले हों (५) Spiny यदि कांटों की तरह हों (६) Wavy अर्थात् लहरी, यदि धार लहर को तरह टेढ़ीमेढ़ी बनी हो।

पत्ती का गठन (Texture) पत्ती का गठन परिस्थिति पर निर्भर करता है और उसकी स्थिरता (Duration) और गठन में भी बहुत निकट सम्बन्ध है। छायाप्रिय पौधों में पत्तिओं के बाह्य चर्म का बहुत कम विकास होता है। प्रकाश-प्रिय पौधों में पत्तियां पतली होती हैं, पर उनके पृष्ठ पर क्यूटि-किल (Cuticle) नाम की एक तह होती है, जिसके कारण पत्तिआं बहुत शुष्क अवस्थाओं में अपनी रक्षा कर लेती हैं। ये पत्तियां पतली और शुष्क (Scarious) अथवा चर्मवत् चिकनी (Leathery) होती हैं। बहुत ही शुष्क और जल हीन वातावरण में अधिक जल-त्याग से पत्तिओं के नष्ट होने का डर रहता है। ऐसी अवस्था में पत्तियां प्रायः मांसल और रसदार होती हैं, जिनमें जल-त्याग भी कम होता है, और जल संचयार्थ तंतु भी रहते हैं।

पत्ती का पृष्ठ—यह भी कई प्रकार का होता है। पृष्ठ या तो चिकना (Glabrous) या चिकना और चमकदार (Glaucous) होता है। इसके अतिरिक्त वे भिन्न-भिन्न

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रकार के रोमों से भी ढके रहते हैं। रोमश (Hairy) पत्तिआं मृदुरोमश (Pubescent) कही जाती हैं, यदि रोम छोटे और मुलायम हों। परन्तु यदि वे रुई के सदृश हों तो पत्तिआं तूल रोमश (Tomentose) कही जाती हैं। इनके अतिरिक्त पत्ती मृदुकंटकाकीर्ण अथवा कंटकाकीर्ण (Prickly) भी हो सकती हैं।

पत्ती का रंग — यद्यपि पत्तियां साधारणतः हरी होती हैं, तो भी समय-समय पर उनमें दूसरे रङ्ग भी प्रकट हुआ करते हैं। पौधों में मुख्य वर्णोत्पादक द्रव्य तीन ही तरह के होते हैं, जिनसे पीला, हरा और लाल रङ्ग पैदा होता है। इनके अतिरिक्त उनमें एन्थोसायनिन नाम के वर्णोत्पादक पदार्थ भी होते हैं, जो पतझड़ के समय अथवा ऐसी तरह के अन्य अवसरों पर तरह-तरह के रंग लाते रहते हैं। कहीं-कहीं एक ही पत्ती के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग होते हैं, जैसे क्रोटन में कुछ भाग हरा होता है और कुछ सफेद। ऐसी पत्तियों को चित्रित (Variegated) कहते हैं।

पत्रक्रम (Phyllotoxis) पत्तिआं तनों पर प्रायः निश्चित क्रम में निकली हुई रहती हैं। यदि ऐसा न हो और वे पर्वों पर विना किसी नियम के जिस ओर चाहें निकलें, तो इसका परिणाम उनके लिये बहुत भयंकर हो सकता है। उनमें कितनी ही ऐसी होंगी, जिनसे सूर्य-प्रकाश की भेंट भी न होगी। जब हम देखते हैं कि कद्दू तथा उसी तरह के अन्य

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विसर्पी पौधों में शाखाग्र किस प्रकार ऊपर उठा रहता है. कुमुदनी आदि की पत्तिआं कैसे पानी की सतह पर तैरा करती हैं; अंगूर आदि की लतायें मकानों पर फैली हुई कैसे सुन्दर पत्र-विन्यासों से युक्त रहती हैं, तो हमें यही कहना पड़ता है कि भिन्न-भिन्न पत्रक्रमों का यही अभिप्राय है, कि पत्तिओं को प्रकाश की यथा सम्भव कमी न पड़ने पावे और वे इस क्रम से हों कि प्रकाश प्राप्त करने में वे परस्पर वाधा न उपस्थित करें।

कुछ पौधों में वायवीय तना प्रायः नहीं के बराबर होता है। वहां सब पत्तिआँ जड़ के ऊपरी सिरे से निकली हुई मालूम होती हैं। ऐसी पत्तिओं को मूलीय (Radical) कहते हैं। पत्तिआं अधिकतर वायवीय तनों के पर्वों पर अलग-अलग निकलती हैं। ऐसी पत्तिओं को काण्डपत्र Cauline leaf कहते हैं। इनके क्रम में बड़ी भिन्नता होती है। यदि प्रत्येक ग्रन्थि पर एक-एक पत्ती हो तो पत्रक्रम एकान्तर Spiral दो-दो हों तो विपरीत (Opposite) और दो से अधिक हों तो चाक्रिक (Veriticillate) कहा जाता है। विपरीत पत्रक्रम भी दो तरह का होता है। यदि एक ग्रन्थि पर की दोनों पत्तिआं ऊपर और नीचे की ग्रन्थियों की पत्तिओं के ठीक नीचे ऊपर हों तो उसक्रम को Super-posed कहते हैं। परन्तु यदि एक ग्रन्थि की पत्तिआं ऊपरवाली तीसरी ग्रन्थि के पत्तिओं के नीचे हों, और दूसरी ग्रन्थि की पत्तिआं दूसरी दिशाओं में निकली हों तो पत्रक्रम Decussate कहा जाता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हम कह सकते हैं कि पत्रक्रम दो ही तरह का होता है (१) चाक्रिक और (२) पेचदार। चाक्रिक-क्रम में विपरीत क्रम भी सम्मिलित किया जा सकता है। पेचदार क्रम में पत्तियों को एकान्तर कहते हैं। यद्यपि पेचदार-क्रम में प्रत्येक ग्रन्थि पर पत्तिओं का चक्र नहीं होता, तो भी विचार करने से मालूम होगा कि यहां भी वह चक्र होता है, परन्तु दो से अधिक पर्वों में समाप्त होता है। यदि पत्राधारों को मिलाता हुआ एक सूत्र तने के चारों ओर लपेट दिया जाय और उसी के साथ तने पर एक रेखा खींच दी जाय तो मालूम होगा कि वह चक्र २, ३ अथवा इससे अधिक पत्तिओं के बाद पूरा होता है। इस काल्पनिक रेखा को Genetic spiral कहते हैं। इस पर की दो समीपवर्ती पत्तिओं के बीच की दूरीको Divergence कहते हैं। सीधी खड़ी रेखायें जो पत्रधारों को मिलाती हैं Orthostiches कही जाती हैं।

दो निकटवर्ती पत्तिओं के बीच की खड़ी रेखा जब दो पर्वों में समाप्त होती है, तो पत्रक्रम को द्विपर्वी चाक्रिक पत्रक्रम कहते हैं। इस क्रम में पत्तिआं तने के केवल दो ही तरफ निकलती हैं। इसमें पेचदार रेखा पर की दो निकटवर्ती पत्तिओं के बीच केवल आधा चक्र समाप्त होता है, इसलिये Divergence कोण $\frac{१}{२} \times$ ·३६० का होता है। यह क्रम प्रायः गोधूमवर्ग के तथा अन्य एकदली पौधों में पाया जाता है। दूसरा पत्र क्रम त्रिपर्वी चाक्रिक है, जिसमें चक्र तीन पर्वों में समाप्त होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इसमें D कोण $\frac{१}{३}$ × ३६० का होता है। यह भी एक दली पौधों में अधिक पाया जाता है। पंचपर्वी चाक्रिक-क्रम में दो चक्र पांच पर्वों में समाप्त होते हैं; इसमें D कोण $\frac{२}{५}$ × ३६० का होता है। यदि उपर्युक्त प्रकार के D कोणों के भिन्नों को क्रमवार लिखें तो वे इस प्रकार होंगे:– $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, $\frac{२}{५}$, $\frac{३}{८}$, $\frac{५}{१३}$, $\frac{८}{२१}$ इत्यादि। इन भिन्नों में पारस्परिक सम्बन्ध भी है। किसी एक बीच वाले भिन्न की ऊपरी संख्या उसके पहले के दो भिन्नों की ऊपरी संख्याओं के जोड़ के बराबर है। यही बात नीचे की संख्याओं में भी है। $\frac{५}{१३}$ और $\frac{८}{२१}$ के पत्रक्रम भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं, परन्तु बहुत कम। यहां हमें दो बातों का ध्यान रखना चाहिये, एक यह कि कहीं-कहीं आकस्मिक कारणों से इन पत्रक्रमों में बाधा पड़ जाती है, और दूसरी यह कि कहीं-कहीं चक्रों के पूरा होने पर पेचदार रेखा का रुख बदल कर उल्टा हो जाता है अर्थात् पहले वह दाईं ओर चलती है, तो बाईं ओर और बाईं ओर से दाईं ओर को चलने लगती है।

पत्ती के रूपान्तर:—खाद्यपदार्थों का निर्माण, जल-त्याग, श्वसन तथा वृद्धि आदि कार्यों के अतिरिक्त असाधारण अवस्थाओं तथा विशेष परिस्थितिओं में पत्तिओं को अन्य कार्य भी करने पड़ते हैं। ये कार्य परिस्थिति के अनुसार भिन्न २

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हो सकते हैं जैसे रक्षा, उत्पादन, आरोहण, खाद्यपदार्थों तथा जल का सञ्चय, तथा भोजनार्थ कीड़ों के पकड़ने के कार्य भी कभी २ इनको करने पड़ते हैं। अतः इन कार्यों के अनुकूल उन्हें अपना रूपान्तर भी करना पड़ता है।

(१) रक्षा—ताप की हानिकारक चरम अवस्थाओं से बचने के लिये पत्तिआं भिन्न २ प्रकार के वल्कपत्रों में बदल जाती हैं, जो प्रायः छोटी, रंग में भूरी तथा गठन में न्यूनाधिक दृढ़ और रोमाच्छादित हो जाती हैं। कभीं २ कलिकाओं के अन्दर से गोंद की तरह निर्यास भी निकलते हैं, जिससे उनके अन्दर पानी नहीं प्रवेश करने पाता। कलिकाओं के वल्कपत्र रचना और उत्पत्ति की समानता से पत्तिओं के ही रूपान्तर माने जाते हैं। पत्तिआं जन्तुओं से अपनी रक्षा करने के लिये कांटों में भी बदल जाती हैं। ये कांटे सम्पूर्ण पत्ती अथवा उनके अंश मात्र के रूपान्तर होते हैं। इसका निर्णय उनका स्थान देखकर ही किया जा सकता है। पत्तिओं का कण्टकवत् रूपान्तर प्रायः मरुभूमि के पौधों में पाया जाता है। वहां जल की कमी रहती है, जिससे पत्तिओं के अभाव में जल-त्याग भी कम होता है, और कांटों की डर से चरनेवाले जानवर उन्हें खाते भी नहीं।

(२) उत्पादन—पुष्पों में पंखुड़ियां तथा उनके अन्दर के नर और नारी भाग पत्तिओं के ही रूपान्तर होते हैं जो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सन्तानोत्पादन में सहायक होने के कारण विशेष रूप धारण किये रहते हैं।

(३) **आरोहण** बहुत से आरोही पौधों की पत्तिआं पूर्णतः अथवा अंशतः सूत्रों (Tendril) में बदल जाती हैं, जिनकी सहायता से वे पौधे अन्य पौधों वा दूसरी वस्तुओं पर चढ़ते हैं। उद्यान मटर में संयुक्त पत्ती के कुछ पत्रक सूत्रवत होते हैं। पोटैटो वाइन और टोपिओलम में पत्रनाल ही सूत्रवत् होता है। आरोही पौधों के सूत्र अन्य अङ्गों के भी रूपान्तर होते हैं जैसे मोरवेल जाति में पत्रनाल, चोब चीनी में पुंखपत्र, और हड़जोड़ में तना ही सूत्रवत् होता है।

(४) **खाद्य पदार्थों का संचय** कुछ पौधों में, विशेषतः एक-दली पौधों में वल्क पत्र (Tulip), साधारण पत्ती के आधारीय भाग (गन्ना), तथा प्याज के वल्कपत्र खाद्य पदार्थों का संचय करते हैं।

(५) **जल संचयः**—शुष्क भूमि में पौधों को सर्वदा पर्याप्त मात्रा में जल नहीं मिलता। नम ज़मीन में भी जहां लवणों का आधिक्य होता है, पौधे जल रहते हुए भी उसे ग्रहण नहीं कर सकते। ऐसे पौधों में पत्तिआं प्रायः जल का संचय करती हैं। इन पत्तिओं का वाह्यचर्म मोटा होता है, जिससे जल त्याग कम होता है, और इनके अन्दर जल संचय करने वाले विशेष तंतु भी होते हैं। जब जल पर्याप्त मात्रा में मिलता है, तो ऐसे पौधे उसका अपनी पत्तिओं में संचय कर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लेते हैं, जिससे वे यदि ज़मीन से अलग भी हो जाते हैं, तो बहुत दिनों तक इस संचित जल पर अपना निर्वाह कर लेते हैं।

(६) भोजनार्थ कीड़ों को पकड़ना :—वनस्पतिओं में भी कुछ मांसाहारी वनस्पतिआं होती हैं, जो वानस्पतिक पदार्थों के अभाव में जन्तुओं पर अपना जीवन बिताती हैं। इन पौधों की पत्तिओं में बहुत विलक्षण रूपान्तर देखा जाता है, जिसकी सहायता से वे छोटे २ कीड़ों को पकड़ कर बन्दी बना लेती हैं, और उनका रस चूस कर अपना काम चलाती हैं। इन पौधों में जड़ का बहुत कम विकास होता है, और ये प्रायः नम ज़मीन में जहां लवणों की न्यूनता और सड़ी गली वनस्पतिओं की अधिकता होती है, पाये जाते हैं। ड्रोसेरा, नेपेन्थीज़, ब्लैडरवर्ट तथा डायनिया आदि ऐसे मांसाहारी पौधे हैं, जिनकी पत्तिआं कीड़ों को पकड़ लेने पर पात्रवत् बन्द हो जाती हैं।

अन्य अंगों का पत्रवत् कार्य तथा रूपान्तर :—जिन पौधों में प्रामाणिक पत्तिआं नहीं होतीं अथवा अगर होती भी हैं तो छोटी और अस्थायी होती हैं, उनमें पत्तिओं का कार्य अन्य अङ्गों द्वारा होता है। नागफनी के पत्रवत् तने तथा रास्नाजाति में पत्रवत् कार्य करनेवाली जड़ों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। शतावर जाति के पौधों में वास्तविक पत्तिआं छोटी और वल्कवत् होती हैं पर उनकी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अन्तकोणीय शाखायें पत्रवत् कार्य करती हैं। आस्ट्रेलिया के बब्बूल जाति के कुछ पौधों में फलक नहीं होता। उनका पत्रनाल फैलकर पत्रवत् हो जाता है, और फलक के अभाव की अंशतः पूर्त्ति करता है। इन पौधों के जीवन काल में साधारण और रूपान्तरित दोनों तरह की पत्तिआं निकलती हैं। प्रारम्भ में निकली हुई पत्तिआं सामान्य संयुक्त पत्तिओं की तरह होती हैं, परन्तु बाद में निकलने वाली पत्तिओं में क्रमशः रूपान्तर प्रकट होने लगता है। अन्त में सभी पत्तिआं पूर्णतः रूपान्तरित होकर ही निकलती हैं। ऐसी रूपान्तरित पत्ती को Phyllode कहते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद ४

पुष्प व्यूह (Inflorescence)

पौधे के पुष्पवाहक भाग प्रायः शेष वानस्पतिक भाग से भिन्न होते हैं। इस भाग की पत्तिओं में भी कुछ ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं, जिससे उन दोनों की असमानता और भी बढ़ जाती है। इसीलिये उनके पुष्पवाहक भाग को पुष्पव्यूह कहते हैं। चूंकि पुष्प एक परिवर्तित शाखा है, इसलिये पुष्पों के निकलने का वही क्रम होता है, जो शाखाओं का। पुष्पव्यूह के भिन्न-भिन्न प्रकार पुष्पक्रम के अनुसार होते हैं, इसी लिये उनके लिये प्रायः उन्हीं शब्दों का उन्हीं अर्थों में प्रयोग किया जाता है, जिनका कि शाखाक्रम के लिये पहले ही किया जा चुका है।

बहुत से पौधों में केवल एक ही पुष्प होता है, जो मुख्य अक्ष के अग्रपर निकलता है। ऐसे पुष्प को एकाकी तथा अन्तिम (Solitary terminal) कहते हैं। अन्य बहुत से ऐसे पौधे होते हैं, जिनमें पुष्प तो अधिक होते हैं पर वे साधारण पत्तिओं के अक्षकोण से निकलते हैं, और एक पत्ती एक ही पुष्प अपने अक्षकोण में धारण करती है। ऐसे पुष्प एकाकी तथा अक्षकोणीय (Solitary axillary) कहे जाते हैं। इन दोनों प्रकार के पुष्पों के डंठलों को पुष्पदण्डिका (peduncle) कहते हैं। जब पुष्पवाहक अक्ष बहुत लम्बा होता है, और

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उसके पार्श्व से विनाल पुष्प अथवा पुष्पवाहक शाखायें निकली रहती हैं तो सम्पूर्ण अक्ष को पुष्पदण्ड (Rachis अथवा Pcduncle) कहते हैं। पुष्पदण्ड इससे भी अधिक शाखा युक्त होनेपर पुष्पदण्ड ही कहा जाता है, केवल उसके अन्तिम भाग को जो एक-एक पुष्प धारण करता है; पुष्पनाल (Pedicel) कहते हैं। पुष्प दण्ड इस तरह प्राथमिक (Primary) द्वैतीयक (Secondary) अथवा त्रैतीयक (Tertiary) कहा जा सकता है। पुष्पदण्डिका का ऊपरी सिरा जिससे पुष्प जुड़े रहते हैं, स्तम्भक (Receptacle) कहा जाता है, यह समतल, शंकाकार, नतोदर अथवा कहीं-कहीं गोल घड़े के आकार का होता है। कुछ पौधों में वायवीय तना न होने के कारण पुष्पदण्ड ज़मीन के अन्दर से निकला हुआ मालूम होता है। यह प्रायः निःशाख तथा पत्र रहित भी होता है। ऐसे पुष्पदण्ड को पुष्प-ध्वज (Scape) कहते हैं। यह घृतकुमारी, सुदर्शन तथा प्याज में पाया जाता है।

पुष्प पत्रों के अतिरिक्त पुष्पदण्ड की सब पत्तिओं को वृन्तपत्र (Bract) कहते हैं। परन्तु अधिकतर यह नाम प्रायः उन्हीं पत्तिओं को दिया जाता है, जिनके अक्षकोण से एक पुष्प या एक पुष्पवाहक अक्ष निकलता है। पुष्पनालों पर पायी जानेवाली पत्तिओं को वृन्त पत्रक (Bracteole) कहते हैं। वृन्त पत्र प्रायः आकार, रंग, गठन, स्थिरता, विस्तार तथा क्रम में बहुत भिन्न २ प्रकार के होते हैं। इन्हीं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बातों में कभी-कभी बहुत विलक्षण हो जाने के कारण उन्हें तथा उनके समूहों को, Scale, Involucre, Involsucel, Cupule, Spathe, Palela, Glume आदि नामों से पुकारने की आवश्यकता पड़ती है। इनकी व्याख्या पुष्प व्यूह के भेदों के साथ की जायगी।

पुष्प व्यूह के भेद—यह दो तरह का होता है (१) अपरिमित (२) परिमित। अपरिमित पुष्पव्यूह (Racemose) में पुष्पदण्ड निरन्तर बढ़ता जाता है और उसपर पत्तिआं तथा उनके अक्षकोणों में पुष्प वा गौण पुष्प-दण्ड निकलते जाते हैं। परमित पुष्प व्यूह में कुछ समय के बाद पुष्प-दण्ड के अग्रपर पुष्प आ जाता है और उसको वृद्धि बन्द हो जाती है। नीचे से दूसरे पुष्प दण्ड निकलकर उसका स्थान ले लेते हैं पर उनकी भी कुछ समय के बाद वही हालत होती है। पहले में जब पुष्प-दण्ड लम्बा होता है तो नये पुष्प अग्रकी ओर होते हैं, और जब पुष्प दण्ड की अनुप्रस्थ-वृद्धि के कारण पुष्प गुच्छों में पाये जाते हैं, तो नये पुष्प उस पुष्प गुच्छ के केन्द्र की ओर होते हैं। परिमित पुष्पव्यूहों में नये पुष्प उपरोक्त अवस्थाओं में क्रमशः पुष्प दण्ड के आधार की ओर अथवा पुष्प गुच्छ के बाहरी भाग में पाये जाते हैं। जहां पुष्पों के सघन समुदाय होते हैं, वहां इसी तरह पुष्पव्यूह का निर्णय होता है।

अपरिमित पुष्पव्यूह :—इसके निम्नलिखित भेद होते हैं

(१) **सद्दण्डक (Raceme)** यदि पुष्पदण्ड लम्बा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हो, पार्श्वीय-पुष्प सनाल हों, और उनके पुष्पनाल लम्बाई में समान हों।

(२) समशिख (Corymb)—यह (१) का ही एक विशेष भेद है। इसमें केवल यही विशेषता होती है, कि पुष्पनाल प्रायः लम्बाई में बराबर नहीं होते, बल्कि नीचे के पुष्पों के बड़े और ऊपर के पुष्पों के छोटे पुष्पनाल होते हैं, जिससे सब पुष्पों के शिखर एक ही सतह में होते हैं। उपर्युक्त दोनों प्रकार के पुष्पव्यूह सर्षपवर्ग के पौधों में पाये जाते हैं। कहीं २ ऐसा भी देखा जाता है कि सदण्डिक पुष्पव्यूह के पुष्पनाल बड़े होकर बाद में समशिख पुष्पव्यूह के से हो जाते हैं।

(३) विदण्डिक (Spike)– सदण्डिक से यह केवल इसी बात में भिन्न होता है, कि इसमें पुष्पनाल नहीं होते। इसके भी कुछ विशेष भेद होते हैं, जैसे शाहबलूत (Chest-nut) तथा सनोवर (Birch) में पुष्पव्यूह लम्बा, नीचे की ओर लटका हुआ तथा स्वल्पकालिक होता है, और उसके पुष्प एक-लिंगी (unisexual) होते हैं। इस प्रकार के पुष्पव्यूह को लम्बित (Catkin) कहते हैं। इसका दूसरा भेद मांसल विदण्डिक (Spadix) कहा जाता है। इसमें पुष्प बहुत छोटे तथा एक-लिंगी होते हैं। प्रत्येक पुष्प के साथ वृन्तपत्र नहीं होता, पर सम्पूर्ण पुष्पव्यूह एक रंगीन पत्रवत रचना से घिरा रहता है, जिसे Spathe कहते हैं। पुष्पदण्ड में नीचे आधार की ओर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नारी पुष्प और ऊपर नर पुष्प होते हैं। इसके उदाहरण खजूर, नारियल तथा सूरण आदि के पुष्पव्यूह हैं।

(४) सच्छूड़ (Umbel)—यहां पुष्प सब सनाल होते हैं, पर लघ्वीकृत अक्ष में पर्वों के लोप हो जाने से सब पुष्प एक ही स्थान से निकलते हैं। गर्जरादि वर्ग का यह लाक्षणिक पुष्पव्यूह है।

(५) कैपिचुलम (Capitulum)—इसमें भी पुष्प-दण्ड के पर्वों का लोप हुआ रहता है. इसलिये पुष्प एक ही स्थान से निकलते हैं, पर यहां वे विनाल होते हैं। पुष्पदण्ड का अग्र जिसपर पुष्प लगे रहते हैं, प्रायः चिपटा और कहीं २ उन्नतोदर होता है। गेंदा तथा सूर्यमुखी में, जिसे हम साधारणतः एक पुष्प मानते हैं, वस्तुतः इसी प्रकार का पुष्प-व्यूह होता है। ऐसा पुष्पव्यूह गेंदावर्ग का लाक्षणिक पुष्पव्यूह है। अम्बेल और कैपिचुलम दोनों में अधिक अवस्थावाले पुष्प किनारे की ओर होते हैं। इन दोनों में पुष्पव्यूह के नीचे हरी २ पत्तिओं का जो एक व अधिक चक्र होता है, उसे इन्वालुकर (Involucre) कहते हैं। पुष्पदण्ड का अग्रभाग कैपिचुलम में कहीं-कहीं नतोदर भी होता है। कहीं कहीं तो वह इतना नतोदर हो जाता है कि एक गोल पात्र की तरह मालूम होता है। ऐसी अवस्था में केवल ऊपर की ओर एक छोटा छिद्र होता है, और पुष्प उस पात्रवत् रचना की भीतरी दीवाल पर पाये

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जाते हैं, जैसा कि वट, गूलर तथा पीपल आदि में देखा जाता है।

परिमित पुष्प व्यूह—इसका सबसे साधारण स्वरूप एकाकी तथा अन्तिम पुष्प है। परिमित तथा अपरिमित दोनों प्रकार के पुष्प व्यूहों में एक ग्रन्थि पर एक, दो अथवा दो से अधिक पुष्प वा पुष्प दण्ड निकल सकते हैं। उनकी संख्या के अनुसार पुष्प-व्यूह यूनीपैरस, वाइपैरस तथा मल्टीपैरस कहा जाता है। परिमित यूनीपैरस पुष्पव्यूह शाखाक्रम की तरह स्कारपायड (पारसीक यवानी) अथवा हेलीक्वायड (हस्ति शुण्डी) दो तरह का हो सकता है। शाखाक्रम की तरह परिमित और अपरिमित पुष्प व्यूहों का निर्णय भ्रमात्मक अवस्थाओं में पत्तिओं (वृन्तपत्रों) की स्थिति से ही किया जाता है। पुष्पव्यूह मिथ्या द्विविभक्त (Dichotomous Cyme जैसे Coral tree में तथा परिमित बहु विभक्त (Polychasium) भी होते हैं।

संयुक्त पुष्पव्यूह (Compound inflorescences) ये प्रायः सदण्डिक, समशिख, विदण्डिक, मांसलविदण्डिक, सचूड़ तथा कैपिचुलम पुष्पव्यूहों को शाखाओं तथा प्रशाखाओं से बने होते हैं। जैसे गर्जरादि वर्ग में पुष्पों के स्थान में प्रायः पुष्पदण्ड पाये जाते हैं, जो पुष्पों के क्रम से ही निकले रहते हैं। इन पुष्प दण्डों पर फिर पुष्प सचूड़क्रम में निकले रहते हैं। इस पुष्पव्यूह को संयुक्त सचूड़ कहा जाता है और

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अधिकतर यही पाया भी जाता है। संयुक्त सदण्डिक (Panicle) के उदाहरण बहुत कसरत से पाये जाते हैं। संयुक्त मांसल विदण्डिक ताड़ जाति के पौधों में पाया जाता है, संयुक्त विदण्डिक (Compound Spike अथवा Spike of spikelets) गोधूमवर्ग में पाया जाता है, और संयुक्त कैपिचुलम उत्कंटक (Echinops) में होता है। संयुक्त सचूड़ में द्वैतीयक पुष्प-दण्डों के आधार पर पाये जानेवाले वृन्तपत्रों के चक्र को इन्वालुकर और त्रैतीयक पुष्पदण्डों वा पुष्पनालों के आधार पर पाये जाने वाले वृन्तपत्रों के चक्र को इन्वालुसेल (Involucel) कहते हैं। कैपिचुलम में इन्वालुकर के अतिरिक्त, जो दो या तीन चक्रों में भी हो सकता है, प्रत्येक पुष्प के साथ भी प्रायः सफेद पतले वृन्तपत्र होते हैं जिन्हें पेलिया (Palaea) कहते हैं।

मिश्रित पुष्पव्यूह (Mixed inflorescences)—मिश्रित और संयुक्त पुष्पव्यूहों में केवल इतना ही अन्तर है कि मिश्रित में पुष्पदण्डिकाओं का क्रम पुष्पों के क्रम से भिन्न होता है और संयुक्त में एकही। जैसे पुष्पदण्ड सदण्डिक क्रम में निकलें, और उनके पुष्प विदण्डिक-क्रम में, तो वह व्यूह मिश्रित अथवा विदण्डिकों का सदण्डिक पुष्पव्यूह कहा जायगा। इसी तरह कैपिचुलम के सदण्डिक और विदण्डिक दोनों प्रकार के मिश्रित पुष्पव्यूह हो सकते हैं।

पुष्पव्यूह के कुछ विशेष भेद—(१) तुलसी तथा इस वर्ग के अन्य पौधों में पत्तिआं विपरीत होती हैं, और प्रत्येक

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ग्रन्थि पर पुष्पों का एक चक्र दिखायी पड़ता है। इन दिखाऊ चक्रों को **वर्टीसिलास्टर** कहते हैं। यहां वस्तुतः प्रत्येक पत्ती के अक्षकोण में परिमित द्विविभक्त पुष्पव्यूह होता है। परन्तु ग्रन्थिओं पर एकहो २ पुष्पदण्डिका निकलती है। चूंकि पुष्पदण्ड के पर्व बहुत संक्षिप्त होते हैं, और पुष्प विनाल होते हैं, इसलिये पुष्पव्यूह के यथार्थ रूप का पता चलाना कठिन होता है।

(२) दुग्धिका जाति (Euphorbia) के पुष्पव्यूह को **सायथियम (Cyathium)** कहते हैं। इसमें एक प्याले के आकार की रचना होती है जिसकी ऊपरी धार पर कई अर्धचन्द्राकार गण्डवल्क (Glandular scale) होते हैं। प्याले के अन्दर कई पुष्पलिंग और उनके मध्य में एक योनिचक्र होता है, अर्थात् उसकी रचना ऐसी होती है कि वह एक पुष्प मालूम पड़ता है, परन्तु वस्तुतः वह एक पुष्पव्यूह होता है। उसके प्रत्येक पुष्पलिंग को एक नर पुष्प और योनिचक्र को नारी पुष्प मानते हैं। क्यांकि पुष्पलिंग अलग २ डंठलों द्वारा जुड़े रहते हैं, और प्रत्येक के आधार पर एक २ वल्की वृन्तपत्र भी होता है। इसी प्रकार योनिचक्र भी एक डंठल द्वारा जुड़ा रहता है।

अपरिमित और परिमित पुष्पव्यूहों की तुलना

परिमित पुष्पव्यूह से अपरिमित पुष्पव्यूह की अपेक्षा पौधों को अधिक लाभ होता है, क्योंकि पहले में अनुक्रमिक पुष्प

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पुष्पव्यूह के बाहर की ओर निकलते हैं, और पुराने उनके मध्य में रहते हैं, जिससे पहले बने हुए फलों की रक्षा बीच में होने से अधिक अच्छी तरह से हो जाती है। इसके अतिरिक्त अपरिमित पुष्पव्यूहों में प्रायः सब पुष्प करीब-करीब साथ आते हैं जैसा कि कैपिचुलम सचूड़ तथा समशिख पुष्पव्यूहों में अधिकता से होता है। ऐसी अवस्था में यह डर रहता है, कि यदि पुष्प आने के थोड़े से समय में गर्भाधान कराने की अवस्थायें किसी कारण न प्राप्त हो सकीं, तो बीज का बनना असम्भव हो जायगा। तीसरा यह लाभ है, कि यदि किसी कारण से अपरिमित पुष्पव्यूह का वृद्धि शील अग्र नष्ट हो जाय तो नये पुष्पों का बनना कम से कम कुछ समय के लिये अवश्य बन्द हो जायगा। पर परिमित में ऐसा होने पर केवल एक पुष्प की हानि होगी। इन बातों से यही मालूम होता है, कि विकास की दृष्टि से परिमित पुष्प व्यूह का स्थान अपरिमित से ऊंचा है—अर्थात् परिमित पुष्पव्यूह का अपरिमित से ही विकास हुआ है।

पुष्पव्यूह और सेचन क्रिया (Inflorescence & Polli nation)—पौधों की सन्तानोत्पत्ति में सेचन की एक मुख्य क्रिया है, जिसमें पुष्प व्यूह कई तरह से सहायक होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्पव्यूहों में समशिख, मांसल विदण्डिक, लम्बित, सचूड़ कैपिचुलम विशेष प्रकार से उल्लेखनीय है। समशिख, सचूड़ तथा कैपिचुलम पुष्पव्यूहों में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पुष्प इस तरह क्रमबद्ध रहते हैं कि वे देखने में अधिक आकर्षक होते हैं, और सेचन करने वाले कीड़ों को आकर्षित करने में अधिक सफल होते हैं। इसके अतिरिक्त उनके पुष्प समूह बद्ध होते हैं, जिससे थोड़े ही समय में थोड़े ही कीड़ों द्वारा सब पुष्पों का सेचन हो जाता है। मांसल विदण्डिक में स्पेथ भी कीड़ों को आकर्षित करने का एक साधन है। लम्बित पुष्प व्यूह इस प्रकार हवा में स्वतन्त्रता पूर्वक झूला करता है, कि उसके पराग प्रसार में वायु द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। समूह बद्ध होकर रहने में प्रत्येक पुष्प को अपनी रक्षा के लिये अलग-अलग पुटचक्रों की कहीं-कहीं आवश्यकता ही नहीं होती, इसीलिये गेंदा वर्ग में पुटचक्र का बहुत कम वा बिल्कुल विकास नहीं हुआ रहता। इस वर्ग में प्रायः प्रत्येक पुष्प के लिये आकर्षक दलचक्र की भी आवश्यकता नहीं होती। यहां इसके लिये केवल बाहरी पुष्पों में दलचक्र का पूर्ण विकास होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद ५

पुष्प (Flower).

पुष्प एक परिवर्तित शाखा है, जिसकी पत्तिआं सन्तानोत्पत्ति के लिये विशेष प्रकारसे रूपान्तरित हो गयी हैं। इसके लिये निम्नलिखित प्रमाण हैं—

(१) पुष्प पहले एक कलिका के रूप में प्रकट होता है, जो प्रायः अन्तकोणीय होती हैं।

(२) पुष्पनाल तथा स्तम्भक की बनावट तने की तरह होती है, और उससे निकले हुए दल तथा पुटपत्रों का आकार तथा विकास साधारण पत्तिओं के आकार तथा विकास के समान होता है।

(३) जैसे तने पर पत्तियों का क्रम चाक्रिक अथवा पेचदार होता है, वैसे ही स्तम्भक पर भी पुष्प-पत्रों का क्रम चाक्रिक अथवा पेचदार होता है।

(४) जैसे तने में ग्रन्थियां और पर्व होते हैं, वैसे ही कुछ पौधों के पुष्पों में भी पर्व और ग्रन्थिआं पायी जाती हैं। सफेद पुष्पवाले हुलहुल में दलचक्र और लिंगचक्र के बीच तथा लिंगचक्र और योनिचक्र के बीच एक २ पर्व होते हैं। इसी तरह मुचकुन्द में भी लिंगचक्र और योनिचक्र के बीच एक पर्व होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(५) पुष्पलिंग और पुष्पयोनियां भी यद्यपि आकार और कार्य में साधारण पत्तिओं से बहुत भिन्न होती हैं, पर उनको भी प्रमाणों द्वारा पत्तिओं का ही रूपान्तर मानते हैं। लिंगसूत्र पत्रनाल का, लिंगछत्र फलक का, लिंगछत्र के दोनों विच्छेद फलक के दोनों भागों के, और संयोजक मध्यपर्शुक के रूपान्तर होते हैं। इसके अतिरिक्त शलूक और पद्म में पुटपत्र दलपत्रों में और दलपत्र पुष्पलिंगों में बदल जाते हैं। इसी प्रकार जंगली गुलाब, पोस्ता तथा गन्धराज आदि में दलपत्रों की संख्या उस अवस्था में कम रहती है, जब ये पौधे स्वयं उगते हैं, परन्तु जब उन्हीं को माली बागों में लगा देते हैं, तो प्रायः दलपत्रों की संख्या अधिक और पुष्पलिंगों की कम हो जाती है। इसी तरह गुलाब के पुष्प में योनिचक्र के स्थान पर कभी २ पत्रवत् रचनायें देखने में आती हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों से पुष्प का एक परिवर्तित शाखा होना सिद्ध हो जाता है। जिन परिवर्तनों के द्वारा यह रूपान्तर होता है, वे ऐसे होते हैं, जो सन्तानोत्पादन में सहायता पहुँचाते हैं। जैसे पत्तिआं प्रायः हरी न होकर भिन्न-भिन्न सुन्दर तथा आकर्षक रंगों में रंग जाती हैं, जिससे सेचन कराने वाले कीड़ों का आकर्षण होता है। उन्हें स्टार्च आदि बनाने के काम से छुट्टी मिल जाती है, इसलिये प्रकाश के लिये अलग तथा सुदूर ग्रन्थिओं पर होने की आवश्यकता नहीं होती, और पर्वों का लोप हो जाता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पुष्प रचना—पुष्प सनाल (Pedicellate) अथवा विनाल (Sessille) होते हैं। नाल का सिरा जहां से पुष्प पत्र निकले रहते हैं स्तम्भक (Thalamus) कहा जाता है। किसी एक प्रामाणिक पुष्प में चार भाग होते हैं। सबसे नीचे हरी तथा छोटी-छोटी पत्तिओं का चक्र होता है, जिसे पुटचक्र (Calyx) कहते हैं। उसकी प्रत्येक पत्ती को पुटपत्र (Sepal) कहते हैं। इसके ऊपर दूसरा चक्र प्रायः रंगीन पत्तिओं का होता है, जिसे दलचक्र कहते हैं। इसकी प्रत्येक पत्ती को दलपत्र (Petal) कहते हैं। तीसरा भाग प्रायः रेखाकार अवयवों का बना होता है, जिसे लिंगचक्र (Andraecium) कहते हैं। इसके प्रत्येक रेखाकार भाग को पुष्पलिंग (Stamen) कहते हैं। चौथे भाग को जो सबके मध्य में होता है योनिचक्र (Gynecium) कहते हैं। इसके प्रत्येक छोटे-छोटे हिस्से को पुष्प योनि (Carpel) कहते हैं।

स्तम्भक—यह प्रायः तीन संक्षिप्त पर्वों का बना होता है, जो कहीं-कहीं बड़े भी हो जाते हैं। दल और पुटचक्रों के बीच के बढ़े हुए पर्व को एन्थोफोर (Anthophore) दल और लिंगचक्र के बीच एक बढे हुए पर्व को ऐण्ड्रोफोर (Androphore तथा लिंग चक्रों के बीच के बढ़े हुए पर्व को गाइनोफोर (Gynophore) कहते हैं। गर्जरादि वर्ग में स्तम्भक पुष्प योनिओं के बीच से होता हुआ ऊपर की ओर बढ़ जाता है,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और पुष्प-योनियां उससे जुड़ी हुई रहती हैं। स्तम्भक के इस बढ़े हुए भाग को कार्पोफोर कहते हैं। स्तम्भ की अनुप्रस्थ अथवा पार्श्वीय वृद्धि भी हो सकती है, जिससे वह उन्नतोदर, चिपटा अथवा गहरा प्याले के आकार का हो जाता है। जब स्तम्भक उन्नतोदर, अथवा न्यूनाधिक चिपटा होता है तो पुष्प के सब भाग इस प्रकार क्रमबद्ध रहते हैं कि सबसे नीचे पुटचक्र, फिर, दलचक्र, उसके ऊपर लिंगचक्र और और बीच में योनिचक्र होता है। ऐसे पुष्पों को हाइपोगाइनस (Hypogynous) कहते हैं। जब स्तम्भक फैलकर नतोदर हो जाता है, और प्याले की तरह हो जाता है तो पुट दल तथा लिंगचक्र तो एक साथ उसकी ऊपरी धार पर निकले रहते हैं, और बीच में पेंदीपर योनिचक्र होता है। ऐसे पुष्पों को पेरिगाइनस (Perigynous) कहते हैं। ऐसा पुष्प गुलाब में होता है। यदि स्तम्भक इससे कुछ और अधिक बढ़कर ऊपर की ओर चारों से आकर मिल जाय, तो तीसरे प्रकार का पुष्प बनेगा, जिसे इपीगाइनस (Epigynous) कहते हैं। इसमें योनिचक्र का गर्भाशय वाला भाग स्तम्भक के अन्दर बन्द रहता है, और पुट, दल, लिंगचक्र तथा योनिचक्र के शेष भाग गर्भाशय के ऊपर से निकले हुए मालूम होंगे।

पेरिगाइनस पुष्पों में स्तम्भक के नलिकाकार भाग को पुटनलिका (Calyx tube) कहते हैं। पहले दोनों प्रकार के पुष्पों में गर्भाशय को सुपीरियर, और तीसरे में इन्फीरियर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कहते हैं। स्तम्भक के मुख्य वहिरुद्भेद को. जो वहुत से पौधों में पाया जाता है, डिस्क (Disc) कहते हैं। यह भिन्न-भिन्न आकार का, तथा पूर्ण, कटा हुआ, दन्दानेदार, त्रिभक्त अथवा स्वतन्त्र विच्छेदों वाला हो सकता है। पुष्प में स्तम्भक से निकलनेवाली प्रायः सभी प्रकार की रचनाओं को, जिनका काम मधु-निर्माण तथा मधु संचय का होता है, डिस्क कहते हैं। पुष्प के अन्य भागों से भी मधु बनाने वाले वहिरुद्भेद निकलते हैं जिन्हें मधुगंड (Nectary gland) कहते हैं।

पेरियंथ (Perianth)—पुट और दल दोनों चक्रों को प्रायः पेरियंथ का नाम दिया जाता है। इसके प्रायः दो भिन्न २ भाग हो जाते हैं, जो कार्य तथा रूप आदि में एक दूसरे से वहुत भिन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में उन दोनों को पुट तथा दलचक्र के नाम से ही पुकारते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी पुष्प हैं, जिनके दोनों चक्र अपने लक्षणों से अलग नहीं किये जा सकते। वे सव रंग-रूप में एक समान होते हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें पेरियंथ के ही नाम से पुकारते हैं। बहुत से पौधों में दो चक्रों के स्थान में एक ही चक्र पाया जाता है, जो कहीं पुटचक्र, कहीं दलचक्र और कही परिसवर्ण (Perianth) कहा जाता है। जिन पौधों में एक ही चक्र का होना वंश का लक्षण है, उनमें उसे परिसवर्ण और जिनमें वह चक्र दूसरे चक्र के लुप्त हो जाने से अवशिष्ट-चक्र के रूप में मौजूद है, उसे पुटचक्र या दलचक्र कहते हैं। जैसे, एरण्ड में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उस चक्र को परिसवर्ण और मोरवेल में पुटचक्र कहते हैं। जिन पुष्पोंमें दोनों चक्र होते हैं, उन्हें डाइक्लेमीडियस (Dichlamydeous), जिनमें एक हो इसे मोनोक्लेमीडियस और जिनमें एक भी न हो, उसे एक्लेमीडियस कहते हैं।

पुटचक्र—इसका कार्य साधारणतः पुष्प-कलिका को सुरक्षित रखने का है। ये प्रायः हरे होते हैं, पर कहीं-कहीं रंगीन भी होते हैं। रंगीन पुटपत्रों को पेटलायड (Petaloid) कहते हैं। इनका क्रम अधिकतर चाक्रिक (Cyclic) होता है, पर कहीं-कहीं (नागफनी) वे पेचदार क्रम (Spiral) में भी होते हैं। जब सब पुटपत्र आकार तथा कद में समान होते हैं, तो पुटचक्र नियमित, नहीं तो अनियमित (Irregular) कहा जाता है। पुटपत्र जब एक दूसरे से पूर्णतः अलग अलग होते हैं; तो पुटचक्र पालीसेपलस कहा जाता है, और वे जब मिले होते हैं, तो गैमोसेपलस कहा जाता है। दूसरी अवस्था में भी वे ऊपर की ओर कुछ न कुछ एक दूसरे से अलग होते हैं। इन्हीं स्वतन्त्र भागों को गिनकर पुटपत्रों की संख्या का ,निर्णय किया जाता है। बहुत से पौधों में पुटचक्र के अतिरिक्त पुटचक्र के नीचे हरी-हरी पत्तिओं का एक और चक्र होता है, जिसे इपीकैलिक्स (Epicalyx) कहते हैं। यह कहीं-कहीं पुटपत्रों के पुंखपत्रों से, और कहीं-कहीं वृन्तपत्रकों के समूह से बना होता है।

बहुत से पुष्पों में पुष्पकलिका के खिलने के साथ पुटपत्र

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गिर जाते हैं। ऐसे पुटपत्रों को पूर्वपाती (Caducous) कहते हैं, जैसे स्वर्णक्षीरी में। परन्तु बहुतों में पुष्प के साथ ही यह सूखता है। वहां इसे पश्चातपाती (Deciduous) कहते हैं। अन्य बहुत से पौधों में पुटचक्र स्थायी (Persistent) होता है अर्थात् फल के साथ भी मौजूद रहता है। स्थायी पुटचक्र फल की भी रक्षा करता है, इसीलिये कहीं-कहीं यह फल के साथ बढ़ भी जाता है, और मकोय में तो यह फल को पूर्णतः ढक लेता है। चूंकि पुटचक का कार्य रक्षा सम्बन्धी है, इसलिये यदि पुष्प की रक्षा किसी और तरह से हो जाती है तो इसका बहुत कम अथवा बिल्कुल विकास नहीं होता। इसीलिये गेंदा तथा गर्जरादि वर्गों में जहां पुष्पों की रक्षा समीपवर्ती अन्य पुष्पों के द्वारा हो जाती है, पुटचक्र नहीं पाया जाता, अथवा उसका पूर्ण विकास नहीं हुआ रहता। गेंदावर्ग के पुष्पों में पुटचक्र के स्थान में लम्बी रोमवत रचनायें पायी जाती हैं, जो फल-प्रसार में सहायता पहुंचाती हैं। इसे रोमश-पुट (Pappus) कहते हैं।

पुटपत्रों का पूर्ण रूप से वर्णन करना हो तो उसका वर्णन एक साधारण पत्ती की तरह करना चाहिये। इसके वर्णन में जिन विशेष शब्दों का प्रयोग होता है वे नीचे दिये गये हैं—

(१) Spurred (स्पर्ड या लांगूलित) पुटपत्र उन्हें कहते हैं, जिनके आधार पर बाहर की ओर एक नलिकाकार भाग निकला हो, जैसे त्रायमाण जाति में।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(२) Saccate (सैकेट या तुंडुल) पुटपत्रों के आधार कोषमय अथवा पाकेटयुक्त होते हैं जैसे सर्षप में ।

(३) Hooded (फणाकार) पुटपत्र ऊपर सर्प के फण की तरह, और इतने बड़े होते हैं, कि पुष्प के शेष भाग उसके नीचे पड़ जाते हैं जैसे अतीस में । उपर्युक्त प्रकार के पुटपत्र प्रायः पालीसेपलस पुटचक्र में पाये जाते हैं । गैमोसेपलस पुटचक्र के लिये निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग होता है :—

(१) नलिकाकार (Tubular) यदि पुटचक्र नलिका की तरह ऊपर से नीचे तक एकही चौड़ाई का हो (२) घंटिकाकार (Campanulate), यदि उसका आकार घंटी की तरह हो (३) फनेलाकार (Funnel shaped अथवा Infundibuliform) यदि नीचे का भाग कम चौड़ा और ऊपर का क्रमशः अधिक चौड़ा होता गया हो । (४) Bilabiate अथवा द्विओष्ठी यदि अनियमित पुटचक्र में ऊपर की ओर दो ओष्ठवत् भाग हो गये हों ।

इनके अतिरिक्त पुटचक्र गोला (Globose) अथवा सुराही के आकार का (Urceolate) भी हो सकता है ।

दलचक्र :—दलपत्र प्रायः सेचन कराने के लिये कीड़ों को आकर्षित करते हैं, अतः वे प्रायः रंगीन तथा सुगन्धयुक्त होते हैं । गर्भाधान के बाद इसीलिये वे प्रायः सूख भी जाते हैं । इनका प्रायः एकही चक्र होता है, परन्तु कहीं २, जैसे किसी २ धतूर और पोस्ते में, उनके दो चक्र होते हैं । कहीं २ इसका अभाव होता है (मोरवेल), और कहीं २ इसके स्थान पर मधु-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कोष पाये जाते हैं (अतीस)। बहुत से पौधों में दलपत्र पुटपत्रों की तरह हरे होते हैं, और सेपलायड दलपत्र कहे जाते हैं। पुटपत्रों की तरह दलचक्र भी नियमित अथवा अनियमित, चाक्रिक अथवा ऐचदार, संयुक्त (गैमोपेटलस) अथवा स्वतन्त्र (पालीपेटलस) हो सकते हैं। इनके आकार का परिचय कराने के लिये भी प्रायः उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिनका पुटपत्रों के लिये किया गया है।

कुछ विशेष प्रकार के दलपत्र तथा दलचक्र भी पाये जाते हैं। यदि दलपत्र का आधार नाल की तरह पतला हो, और ऊपर का भाग अधिक चौड़ा और फैला हुआ हो, तो उसे क्लाड (Clawed) कहते हैं। सर्षप में ऐसे ही चार दलपत्र होते हैं, जो पुष्प के कोणीय धरातलों में स्तम्भक से जुड़े रहते हैं। ऐसे दलचक्र को क्रूसीफार्म (Cruciform) कहते हैं यह सर्षप-वर्ग का लाक्षणिक दलचक्र है। क्लाड दलपत्रों में कहीं २ पतले और चौड़े भागों के जोड़ पर एक रेखा में बहुत से रोम पाये जाते हैं। इस रचना को लिग्यूल (Ligule) कहते हैं। गेंदावर्ग में ऐसे ही दलपत्र पाये जाते हैं, जहां इनसे युक्त पुष्पों को लिग्यूलेट कहते हैं। एक और भी विशेष प्रकार का दलचक्र शिम्बीवर्ग के कुछ पौधों में पाया जाता है, जिसे पैपिलि-ओनेशस् (Papilionaceous) दलचक्र कहते हैं। इसके पांच दलपत्रों में से पोस्टीरियर (Posterior) दलपत्र, अर्थात् जो दलपत्र तने और पुष्प के मध्य में पड़ता है, सबसे बड़ा रहता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है, और कलिकावस्था में पुष्प के शेष सब भागों को ढके रहता है। दो पार्श्वीय दलपत्र छोटे होते हैं, और शेष दूसरी ओर के दोनों दलपत्र परस्पर मिलकर एक नौकाकार रचना बना लेते हैं। लिंगचक्र और योनिचक्र इसी रचना के अन्दर छिपे रहते हैं। इस प्रकार के दलचक्र में पोस्टीरिअर दलपत्र को स्टैण्डर्ड (Standard) पार्श्वीय दलपत्रों का विंग्स (Wings) और नौकाकार रचना को कील (Keel) कहते हैं।

यदि दलचक्र के सब दलपत्रों की धारें अधिक से अधिक परस्पर स्पर्श करती हों तो उन्हें संलग्न (Valvate) कहते हैं। यदि किसी की दोनों धारें ऊपर हों और किसी की दोनों नीचे हों, और कुछ दलपत्रों की एक धार ऊपर हो और एक नीचे हो, तो ऐसे दलपत्रों से बने हुए दलचक्र को आच्छादित (Imbricate) कहते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे भी पुष्प पाये जाते हैं, जिनके सब दलपत्रों की एक धार ऊपर और एक नीचे होती है। ऐसे दलचक्र को क्रमाच्छादित (Twisted) कहते हैं। इन शब्दों का प्रयोग इन्हीं अर्थों में पुटचक्र के लिये भी किया जाता है।

पुष्प के आवश्यक भाग—पुष्प के चारों भागों में से लिंगचक्र और योनिचक्र आवश्यक भाग कहे जाते हैं, क्योंकि लैंगिक सन्तानोत्पत्ति के लिये इन दोनों का रहना नितान्त आवश्यक है। पुटचक्र और दलचक्र दोनों सहायक अथवा अनावश्यक भाग माने जाते हैं। जिन पुष्पों में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चारों भाग रहते हैं, उनको पूर्ण (Complete), और जिनमें कम भाग होते हैं उनको अपूर्ण (Incomplete) पुष्प कहते हैं जिन पुष्पों में दोनों आवश्यक भाग रहते हैं, उनको द्विलिंगी (Bisexual, Hermaphrodite अथवा Perfect) पुष्प कहते हैं, और जिनमें दोनों में से एक ही होता है, उन्हें एक लिंगी (Unisexual अथवा Imperfect) पुष्प कहते हैं। इनमें भी जिनमें लिङ्गचक्र अर्थात् नर भाग होता है, उन्हें नर-पुष्प (Male अथवा Staminate) कहते हैं, और जिनमें योनिचक्र अर्थात् नारी भाग होता है, उन्हें नारी-पुष्प Female अथवा Pistillate कहते हैं। चूंकि दोनों ही आवश्यक भाग है, इसलिये प्रत्येक उपजाति में उनका रहना आवश्यक है। कहींर तो उपजाति के प्रत्येक पौधों में प्रत्येक पुष्प द्विलिङ्गी होता है, कहीं-कहीं प्रत्येक पौधों के कुछ पुष्प नर-पुष्प, और कुछ नारी पुष्प होते हैं। इनके साथ कहीं द्विलिंगी पुष्प भी होते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ उपजातियां ऐसी भी होती हैं, जिनके कुछ पौधों में केवल नरपुष्प और कुछ में केवल नारीपुष्प होते हैं, जैसे ताड़, खजूर, भांग आदि। कुछ पौधों में थोड़े से पुष्प ऐसे भी होते हैं, जो नपुंसक Neuter होते हैं। ऐसे पुष्प गेंदा-वर्ग के कुछ पौधों में पाये जाते हैं।

१लिंगचक्र—एक प्रामाणिक पुष्पलिंग के तीन भाग होते हैं। नीचे का भाग पतला नालवत होता है। उसे लिंगसूत्र Filament कहते हैं। इसके अग्रपर पुष्पलिंग का वह भाग

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रहता है, जिसमें पराग रहता है, और जिसे लिंगछत्र Anther कहते हैं। प्रत्येक लिंगछत्र के प्रायः दो भाग होते हैं जिन्हें छत्र विच्छेद Anther-lobe कहते हैं। इन दोनों विच्छेदों को जोड़ने वाला पुष्पलिंग का तीसरा भाग होता है, जिसे संयोजक Connective कहते हैं। यह एक ऐसे तंतु का बना रहता है, जिसमें नाड़ी तंतु भी होता है। यदि प्रत्येक छत्र विच्छेद को काटकर देखा जाय तो प्रत्येक के अन्दर दो-दो कोष Chamber अथवा sac मिलेंगे, जो धूली के समान छोटे-छोटे कणों से भरे रहते हैं, इन कोषों का परागकोष Pollen Sac और छोटे-छोटे कणों को पराग कण Pollen-grain कहते हैं। किसी २ पौधों में पुष्पलिंग एक ही छत्र विच्छेद वाला होता है, क्योंकि वहां पुष्पलिंग निकलने के साथ ही कई भागों में बट जाता है, जिससे पुष्पलिंग की संख्या भी बढ़ जाती है, और उनमें एक ही छत्र विच्छेद होता है। ऐसा एरण्ड में पाया जाता है।

लिंगछत्र लिंग सूत्र से कई तरह से जुड़ा हुआ रहता है। कहीं लिंग सूत्र के आधार से (Basi fixed) और कहीं पृष्ठ से (Dorsi fixed) जुड़ा रहता है। कहीं कहीं लिंग सूत्र पृष्ठ से इस प्रकार जुड़ा रहता है, कि सूत्रपर छत्र स्वतन्त्रता पूर्वक गति कर सकता है। ऐसे छत्र को वर्सेटाइल (Versatile) कहते हैं।

लिंगछत्र का स्फोटन Dehiscence of Anthers-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जब पराग कण परिपक्व हो जाते हैं, तो लिंग छत्र फूट जाते हैं और पराग कण पराग कोष से निकलकर कीड़ों द्वारा अथवा अन्य साधनों द्वारा अपना प्रसार कराते हैं। लिंग छत्रों का स्फोटन कई प्रकार का होता है। कहीं-कहीं वे आधार से शीर्ष-तक लम्बी रेखा में फटते हैं। इस विधि को लम्ब स्फोटन (Longitudinal) कहते हैं। कहीं-कहीं वे पूरी लम्बाई में न फटकर केवल थोड़ी दूर तक फट जाते हैं। बहुत से पौधों में (बैंगन) पराग कणों के निकलने के लिये छत्र विच्छेदों की दीवाल में छोटे-छोटे छिद्र बन जाते हैं। ऐसे स्फोटन को छिद्रल (Porous) स्फोटन कहते हैं। कहीं-कहीं (तेजपात) पराग कोष की दीवाल का कुछ भाग कपाट की तरह खुल जाता है। ऐसे स्फोटन को कपाट स्फोटन (Transverse) कहते हैं। इन सबमें लम्ब स्फोटन अधिक पाया जाता है। इसमें भी यदि स्फोटन भीतर की ओर होता है, तो अन्तर्मुखी (Introrse) और बाहर की ओर होता है, तो बहिर्मुखी Extrorse कहा जाता है। पार्श्व में होने पर पार्श्वमुखी Lateral या पार्श्वीय भी कहा जाता है। बहुत से पुष्पों के कुछ पुष्पलिंगों में छत्र नहीं भी होते। ऐसे पुष्प लिंगों को विछत्रलिंग Staminode कहते हैं, जैसे मौलसिरी तथा चम्पा में। ये विछत्रलिंग कहीं-कहीं दलपत्रवत हो जाते हैं, जैसे भूमि चम्पा, सर्वजय आदि में। बहुत से पुष्पों में मधुकोष पुष्प-लिंगों के बहिरुद्भेद मात्र होते हैं (वायलेट में)।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ऊपर लिंगचक्र में संसक्ति (Cohesion) और संश्लेष (Adhesion) दोनों के उदाहरण मिलते हैं। लिंगचक्र के पुष्पलिंग जब सब स्वतंत्र होते हैं तो वह पालीऐंड्रस कहा जाता है, परन्तु जब वे परस्पर मिले होते हैं, तो लिंगचक्र दो तरह का होता है। एक में पुष्पलिंगों के केवल छत्र आपस में मिले होते हैं, और दूसरे में उनके केवल सूत्रभाग मिले रहते हैं। इन दोनों अवस्थाओं में लिंगचक्र को क्रमशः सिंजिनीसस् (Syngenesious) और एडलफस (Adelphous) कहते हैं। ये दोनों अवस्थायें संसक्ति की हैं क्योंकि इनमें सजातीय (Similar) भागों का संयोग हुआ है। सिंजिनीसस लिंगचक्र गेंदावर्ग में और एडलफस लिंगचक्र कार्पासवर्ग में पाया जाता है। एडलफस लिंगचक्र में कहीं २ सब पुष्पलिंग मिलकर एक बण्डल बनाते हैं, और कहीं २ वे कई बण्डलों में मिले रहते हैं। बण्डलों की संख्या के अनुसार वे मानो, डाइ, ट्राई तथा पालीएडलफस कहे जाते हैं। मटर में डाइएडलफस और सेमर में ५ एडलफस या पालीएडलफस के उदाहरण मिलते हैं। कंघो में मानो एडलफस लिंगचक्र होता है।

धतूर में पुष्पलिंग दलपत्रों के आधार पर इस तरह मिले रहते हैं, कि वे दलपत्रों से ही निकले हुए मालूम होते हैं। ऐसी अवस्था में दलपत्रों को इपीपेटलस Epipetalous कहते हैं, कभी कभी वे योनिचक्र से भी मिले हुए मालूम होते हैं, और गाइनैंड्रस कहे जाते हैं। ऐसा मदार, रास्ना तथा इसरमूल

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में होता है। ये संश्लेष अर्थात् विजातीय भागों के ऽते हैं के ये उदाहरण हैं। ध्वा

बहुत से पुष्पों में पुष्पलिंगों की लम्बाई में भी भिन्नता पायी जाती है। सर्षप वर्ग के पुष्पों में कुल ६ पुष्पलिंग होते हैं, जिनमें दो छोटे और चार बड़े होते हैं। ऐसे लिंग चक्र को टेट्राडाइनमस Tetradynamous कहते हैं। तुलसीवर्ग के बहुत से पुष्पों में कुल चार पुष्पलिंग होते हैं, जिनमें दो छोटे दो बड़े होते हैं, इन्हें Didynamous डाइडाइनमस कहते हैं।

परागपिंड—पराग कोष के अन्दर पराग प्रायः धूल के छोटे-छोटे कणों के रूप में पाया जाता है, परन्तु कहीं-कहीं उसके सब कण मिलकर एक या अधिक पिण्डवत रचनायें बना लेते हैं, जिन्हें परागपिण्ड Pollinium कहते हैं। प्रत्येक परागपिण्ड २, ४, ८, अथवा अधिक परागकणों का बना होता है। आर्किड वर्ग में उनकी संख्या प्रायः सम और दो से ८ तक की होती है। कहीं कहीं पराग कोष के सब परागकण मिलकर एक या दो पराग पिण्ड बनाते हैं। साधारणतः पराग पिण्ड एक नाल से जुड़ा रहता है जिसे पिण्डनाल (Caudicle) कहते हैं। दो-दो पराग पिण्ड कहीं-कहीं पिण्डनालों द्वारा एक ही डिस्क से जुड़े रहते हैं। मदारवर्ग तथा बब्बूलादि उपवर्ग में भी पराग पिण्ड होते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ऊपर के भाग नि
जैसे मदार

योनिचक्र

हुए रह चक्र को पुष्प योनिओं को भी साधारणतः पत्ती का रूपान्तर मानते हैं, पर इनके आकार को देखकर इस बात पर विश्वास नहीं होता, यद्यपि गुलाब, गन्धराज तथा जंगली बादाम के पुष्पों में पुष्प योनिओं का पत्रवत् परिवर्तन देखकर इसकी सत्यता भी प्रमाणित सी हो जाती है। यदि यह बात सत्य है तो, पुष्पयोनि का सम्भवतः निम्न रीति से विकास हुआ होगा। पत्ती मध्यपर्शुक पर दोहरी हो गयी होगी, और फलक की दोनों धारें मिल गयी होंगी। इस प्रकार से प्राप्त होने वाली रचना में दो संयोग रेखायें Suture होंगी। मध्य का भाग लम्बा और उसका अग्र कुछ मोटा होकर योनि छत्र हो गया होगा। बीच का लम्बा नालवत् भाग योनिसूत्र Style बन गया होगा। नीचे का भाग बहुत बड़ा और पोला होकर बीजोत्पादक डिम्बों (Ovules) को धारण किया होगा, और गर्भाशय (Ovary) के नाम से प्रसिद्ध हुआ होगा। इस कल्पित विकास विधि का कुछ आभास हमें नग्न बीजी तथा आवृत्तबीजी पौधों पर तुलनात्मक विचार करने से मिलता है। साइकस नाम के पौधे में नारी भाग पत्रवत होता है और डिम्ब उसकी धार पर लगे रहते हैं। पाइनस में वे डिम्ब उसके पृष्ठ पर फैले रहते हैं, और पत्रवत रचना भी पूर्ववत् फैली रहती है। इस श्रेणी के अन्य पौधों में एक रवात भी पाया जाता है, जो भिन्न-भिन्न गहराई का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होता है। (Taxus) टैक्सस में यह खातभागों के [illegible]ते हैं जाता है, और केवल अग्रपर खुला रहता है। [illegible] [illegible]धवा पौधों में, कहा जा सकता है, कि वही खात पूर्णतः [illegible] जाता है। प्रत्येक पुष्पयोनि में उपर्युक्त कल्पना के अनुसार दो जोड़ होने चाहियें और ऐसा ही होता भी है। मध्यपर्शुकवाले जोड़को डारसल (Dorsal) और धारों के जोड़ को वेन्ट्रल (Ventral) स्यूचर (Suture) अर्थात् जोड़ कहते हैं।

पुष्प योनियों की संख्या प्रायः पुष्प के और भागों से कम होती है। उनकी संख्या के अनुसार योनिचक्र मानोकार्पेलरी (Monocarpellary) बाइकार्पेलरी (Bicarpellary) ट्राई-कार्पेलरी (Tricarpellary) तथा मल्टीकार्पेलरी (Multi-carpellary) होता है। एक से अधिक पुष्प योनियों के होने पर योनिचक्र स्वतन्त्र योनि (Apocarpous) तथा संयुक्त योनि (Syncarpous) दोनों तरह का हो सकता है। पुष्प योनिओं के मिले रहने पर वह संयुक्त योनि और एक दूसरे से अलग-अलग होने पर स्वतंत्र योनि कहा जाता है। संयुक्तयोनि अवस्था में उनके संयोग की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। कभी सबों के गर्भाशय मिले रहते हैं, शेष स्वतन्त्र रहते हैं, कभी गर्भाशय और योनि सूत्र दोनों मिले रहते हैं, और कभी कभी सब पुष्प योनिओं के सब भाग मिलकर एक ऐसी रचना तैयार कर देते हैं, जिसमें एक गर्भाशय, एक योनिसूत्र तथा एक योनिछत्र मालूम होता है। कुछ ऐसे भी पौधे हैं, जिनमें

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ऊपर के भाग मिले रहते हैं, और नीचे के ही स्वतन्त्र रहते हैं, जैसे मदार में गर्भाशय स्वतन्त्र और शेष दोनों भाग मिले हुए रहते हैं।

संयुक्त योनिचक्र में पुष्पयोनिओं की संख्या का निर्णय करना कभी २ बहुत कठिन हो जाता है। जहां उनके एक भाग भी स्वतन्त्र रहते हैं, वहां तो उन्हें गिन कर पुष्पयोनिओं की संख्या बतलायी जा सकती है, यद्यपि वहां भी कभी २ अवयव विभाजन (Segmentation) के कारण कठिनाई पड़ जाती है। परन्तु जहां उनके तीनों भाग मिले रहते हैं, वहां गर्भाशय के अनुप्रस्थविच्छेद को देखकर ही उनकी संख्या का निर्णय किया जा सकता है। जितनी पुष्पयोनिओं के संयोग से गर्भाशय बना होगा, उसके अन्दर या तो उतने ही कोष्ठ होंगे, या उतने ही अपूर्ण व्यवधान (Partitions) होंगे, या उसकी भीतरी दीवाल पर उतनेही वेन्ट्रल स्यूचर होंगे। वेन्ट्रल स्यूचर प्रायः डार्सल स्यूचर की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता है क्योंकि वीज प्रायः इसी जोड़ पर पाये जाते हैं।

गर्भाशय:—संयुक्त योनि गर्भाशय के अन्दर कोष्ठ या कोटरियां एक या एक से अधिक हो सकती हैं। संख्या के अनुसार गर्भाशय ~~को~~ एककोष्ठी (Unilocular), द्विकोष्ठी (Bilocular), त्रिकोष्ठी (Trilocular) अथवा बहुकोष्ठी (Multi locular) हो सकता है। प्रायः इन कोष्ठों की संख्या पुष्प योनिओं की संख्या के बराबर होती है, पर कहीं-कहीं गर्भाशय के अन्दर मिथ्या-व्यवधान (False septum) भी होते

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हैं। ये व्यवधान लम्बवत् (Longitudinal) अथवा अनुप्रस्थ (trans verse) दोनों तरह के हो सकते हैं। शिम्बीवर्ग में (अमलतास) प्रायः अनुप्रस्थ व्यवधान होते हैं, जिनके कारण गर्भाशय नीचे से ऊपर तक बहुत सी कोठरिओं में बँटा रहता है। सर्षपवर्ग में ये मिथ्या व्यवधान लम्बवत् होते हैं। तीसी में पांच अपूर्ण व्यवधान डारसल स्यूचर से निकले होते हैं।

गर्भाशय के अन्दर डिम्ब (Ovules) भिन्न २ तरह से क्रमबद्ध रहते हैं। गर्भाशय के वेन्ट्रल जोड़ों पर प्रायः एक तन्तु होता है, जिसे प्लेसेन्टा कहते हैं। इसी को स्थिति के अनुसार बीजक्रम के भिन्न २ भेद होते हैं। एक पुष्पयोनि के साधारण गर्भाशय में प्रायः प्लेसेन्टा वेन्ट्रल स्यूचर पर होता है, और वहीं से बीज जुड़े हुए रहते हैं। इस प्रकार के बीज-क्रम (Placentation) को मार्जिनल (Marginal) अर्थात् धारीय कहते हैं। ऐसा बीजक्रम शिम्बीवर्ग में पाया जाता है। पोस्ता, पपीता तथा स्वर्ण क्षीरी में गर्भाशय एक कोष्ठी पर संयुक्त योनि होता है, और प्लेसेन्टा गर्भाशय के जोड़ों पर अथवा असम्पूर्ण व्यवधानों पर होता है। इनके बीजक्रम पेराइटल (Parietal) कहा जाता है। बहुकोष्ठी गर्भाशय में सब प्लेसेन्टा बीच में परस्पर मिल जाते हैं, और प्रत्येक कोष्ठ में उस संयुक्त स्तम्भवत् प्लेसेन्टा के दो-दो भाग पाये जाते हैं, जिनसे बीज निकले रहते हैं। ऐसे बीजक्रम को आक्षीय (Axile) कहते हैं (भिण्डी, नीबू)। यदि बहुकोष्ठी गर्भाशय के व्यवधानों का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लोप हो जाय, और संयुक्त प्लेसेन्टा वीजों के साथ बीच में मौजूद रहे तो वीजक्रम स्वतन्त्राक्षीय (Free-central) हो जायगा। एककोष्ठी गर्भाशय में कहीं २ स्तम्भक का बढ़ा हुआ भाग संयुक्त आक्षीय प्लेसेन्टा की तरह वीजों को धारण किये रहता है। यहां भी वीजक्रम को स्वतन्त्राक्षीय ही कहते हैं। वीजक्रम के इन मुख्य भेदों के अतिरिक्त दो और भी भेद होते हैं। एक में प्लेसेन्टा केवल एक विन्दु पर होता है। वह विन्दु कहीं २ आधार पर होता है, जब वीजक्रम आधारीय (Basal) कहा जाता है, और कहीं-कहीं वह अग्र पर होता है, जब वीजक्रम को एपिकल (Apical) कह सकते हैं। दूसरे प्रकार के वीजक्रम में प्लेसेन्टा पार्श्वीय दिशाओं में इतना अधिक बढ़ जाता है, कि वह गर्भाशय की भीतरी दीवाल को पूर्णतः ढक लेता है, और इसके भीतरी पृष्ठ पर चारों ओर वीज लगे होते हैं। यहां वीजक्रम को सुपरफिशल Superficial कहते हैं।

गर्भाशय के अतिरिक्त पुष्प-योनि के शेषभाग अर्थात योनि-सूत्र और योनिछत्र के भी आकार, स्थिति आदि में बड़ा बाहुल्य पाया जाता है जिनका वर्णन यहां अनावश्यक प्रतीत होता है।

मौलिक पुष्प की रचना तथा अन्य प्रकार के पुष्पों की उत्पत्ति—चूंकि पुष्प शाखा का रूपान्तर माना गया है, इसलिये अवाधित विकास होने पर पुष्प के क्रम तथा रचना आदि उन्हीं नियमों के अनुसार होने चाहिये जो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शाखा तथा उसकी पत्तिओं के लिये बताये गये हैं। परन्तु विकासक्रम में अनेक प्रकार के परिवर्तन भी आवश्यकतानुसार होते गये हैं, जिससे वास्तव में जैसे २ पुष्प हमें मिलते हैं वे सब उन नियमों के आधार पर बनाये हुए कल्पित पुष्प से भिन्न होते हैं। हमारे कल्पित मौलिक पुष्प में चारों भाग होंगे। हर एक भाग के छोटे-छोटे अवयवों की संख्या बराबर तथा एक भाग के अवयव दूसरे समीप वाले भाग के अवयवों के एकान्तर होंगे। प्रत्येक के सब अवयव कद और आकार में समान, और आपस में एक दूसरे से अथवा दूसरे भाग के अवयवों से अलग होंगे। स्तम्भक शंकाकार या उन्नतोदर होगा। अब यदि पुष्पों में पाये जाने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के परिवर्तनों की जांच की जाय तो, वे सब निम्नरीति से श्रेणीबद्ध किये जा सकते हैं।

(१) अवयवों के आकार में परिवर्तन—अधिकतर पुष्प की रचना तारकाकार Stellate होती है। चारों चक्र नियमित और वृत्ताकार क्रम में पाये जाते हैं। ऐसे पुष्पों को नियमित (Regular) पुष्प कहते हैं। आकार में परिवर्तन प्रायः अतिवृद्धि, बहिरुद्भेद (त्रायमाण में दलपत्र का पुच्छ) या अपूर्ण विकास Abortion के कारण होता है। विछत्रलिंग अपूर्ण विकास से ही होते हैं। नियमित पुष्पों को एक्टिनो-मार्फिक (Actinomorphic) कहते हैं। इन्हें कम से कम दो धरातलों में दो-दो समान भागों में बाट सकते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अनियमित पुष्पों में से कुछ तो एक धरातलमें दो समान भागों में बांटे जा सकते हैं, और कुछ एक धरातल में भी नहीं बांटे जा सकते। पहले प्रकार के पुष्पों को जाइगोमार्फिक (Zygomorphic) और दूसरे प्रकार के पुष्पों को एसिमेट्रि-कल (Asymmetrical) कहते हैं।

(२) संख्या में परिवर्तन—संख्या में अधिकता प्रायः चक्रों की संख्या के बढ़ने से होती है (धतूर)। अवयव विभाजन के कारण भी संख्या बढ़ जाती है (एरण्ड के पुष्पलिंग)। संख्या में कमी किसी चक्र के अथवा उसके कुछ अवयवों के बिल्कुल विकास न होने के कारण आती है।

(३) अवयवों की स्थिति में परिवर्तन—प्रायः एक चक्र के अवयव दूसरे चक्र के अवयवों के एकान्तर होते हैं, परन्तु जब कोई चक्र दो भागों में बट जाता है, अथवा किसी चक्र का लोप हो जाता है; तो वे विपरीत मालूम होते हैं।

(४) अवयवों के रूपान्तर—इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

(५) संश्लेष और संसक्ति के कारण होने वाले परिवर्तनों का भी वर्णन पहले हो चुका है।

<u>फ्लोरल डायग्राम</u> तथा फ्लोरल फार्मूला—

फ्लोरल डायग्राम (Floral diagram) में पुष्प कलिका के अनुप्रस्थ विच्छेद का चित्र होता है। इससे पुष्प के भिन्न-भिन्न भागों का पारस्परिक सम्बन्ध, संश्लेष तथा संसक्ति,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उनके अवयवों की संख्या तथा क्रम आदि का पता चलता है। ये चित्र दो तरह के होते हैं। एक तो वास्तविक (Empirical) होता है, जिससे पुष्प की वास्तविक वर्तमान रचना का पता चलता है, और दूसरा काल्पनिक (Theoretical) होता है, जिसमें लुप्त अवयवों को भी दिखाया जाता है। इन चित्रों को सफलता पूर्वक बनानेवालों को पुष्प के भिन्न-भिन्न धरातलों का जानना आवश्यक है। पुष्पदण्ड के समीप वाले भाग को, जो पुष्पदण्ड के बीच में और उनके सीध में होता है, पोस्टीरियर (Posterior) कहते हैं, और जो भाग इसके विपरीत होता है, उसे एण्टीरियर (Anterior) कहते हैं। इन दोनों भागों के मिलाने वाले धरातल को मध्य धरातल (Median plane) कहते हैं। इससे समकोण बनाने वाले धरातल को पार्श्वीय धरातल (Lateral plane) कहते हैं, और ४५ डिग्री के कोण बनाने वाले धरातलों को कोणीय Diagonal धरातल कहते हैं।

भिन्न-भिन्न पुष्पों के फ्लोरल डायग्रामों की परीक्षा करने पर मालूम होता है, कि आवृत्त बीजी पौधों में प्रायः एक पुटपत्र पोस्टीरियर होता है। कहीं-कहीं इस पुटपत्र का अभाव भी होता है। शिम्बीवर्ग में दो पुट पत्रों को पोस्टीरियर कहते हैं। यद्यपि पुष्प लिंग और पुष्प योनिओं के स्थान का उनके विलक्षण आकार के कारण प्रायः निश्चय नहीं हो पाता, तो भी कभी-कभी पुष्पदण्ड और इन भागों के बीच

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

निश्चित सम्बन्ध देखा जाता है। जैसे कण्टकारी वर्ग (कटेरी, मकोय) में गर्भाशय का व्यवधान कोणीय धरातल में पाया जाता है। फ्लोरल फार्मूला में पुष्पदण्ड को सबसे ऊपर एक विन्दु द्वारा, वृन्तपत्र को उसके विपरीत, और इन दोनों के वीच में भिन्न-भिन्न चक्रों को उतने ही एक केन्द्रीय वृत्तों द्वारा दिखलाया जाता है। संश्लेष तथा संसक्ति भी संयोजक अथवा विन्दुमय रेखाओं द्वारा दिखाया जाता है। पुष्पपत्रों का क्रम तथा उनकी संख्या भी इन चित्रों में दिखा दी जाती है। वास्तविक चित्र में लुप्त भागों को विन्दुओं द्वारा यथास्थान दिखला देने से वह चित्र काल्पनिक हो जाता है।

पुष्प की सभी बातें जिन्हें फ्लोरल डायग्राम द्वारा दिखा सकते हैं, पुष्प सूत्रों (Floral formula) द्वारा भी प्रगट की जाती हैं। पुष्पसूत्र बनाने में कुछ संकेतों का प्रयोग करना पड़ता है। पुटचक्र को प (K) दलचक्र को द (C); परिसवर्ण को स (P) लिंगचक्र को ल (A) और योनिचक्र को य (G) अक्षरों द्वारा सूचित करते हैं। प्रत्येक चक्र के अवयवों की संख्या तत्सूचक अक्षर के वाद रख दी जाती है। अधिक तथा अनिश्चित संख्या के लिये ∞ चिन्ह का प्रयोग होता है। किसी संख्या को कोष्ठ में रखने से संसक्ति का बोध होता है। दो चक्रों के संश्लेष को दिखाने के लिये उनके ऊपर एक अर्द्धचन्द्राकार रेखा खींच देते हैं। योनिचक्र की संख्या

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के नीचे आड़ी रेखा खींचने से सुपीरियर और ऊपर खींचने से इन्फीरियर गर्भाशय का बोध होता है। कभी २ जब एक अक्षर के आगे दो संख्यायें रहती हैं, और उनके बीच में धन का चिन्ह रहता है, तो उससे यह समझा जाता है, कि वह भाग दो चक्रों में है जिनकी संख्यायें अलग-अलग दी गयी हैं। कंट-कारी वर्ग के पुष्पों का पुष्पसूत्र इस प्रकार का है:—

K (5) $\overline{C (5)}$ A 5 G $\underline{(2)}$ इससे यह मालूम होता है कि पुटचक्र ५ संयुक्त पुटपत्रों का, दलचक्र ५ संयुक्त दलपत्रों का लिंगचक्र ५ पुष्पलिंगों का और इपीपेटलस योनिचक्र २ संयुक्त पुष्प योनिओं का और गर्भाशय सुपीरियर है।

अतः पुष्पसूत्र भी पुष्पों के परिचय करने में बहुत सहायक होते हैं और किसी पुष्प का विवरण विना पुष्पसूत्र तथा उपर्युक्त चित्र के अपूर्ण समझा जाता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद ६

सेचन क्रिया तथा गर्भाधान

(Pollination & fertilisation)

बतलाया जा चुका है, कि प्रत्येक जीवधारी के जीवन का प्रधान उद्देश अपने वंश को स्थायी बनाने का है। अतः वे कितनी ही क्षुद्र आकृतिवाले क्यों न हों, अर्थात् विकासक्रम में उनका कितना भी नीचा स्थान क्यों न हो, किसी न किसी प्रकार वे अपनी संतानोत्पत्ति अवश्य कर जाते हैं। वनस्पतिओं में सन्तानोत्पत्ति की साधारणतः तीन विधियां हैं। (१) वानस्पतिक (Vegetative) (२) अलैंगिक (Asexual) तथा (३) लैंगिक (Sexual)।

वानस्पतिक विधिः—जिन पौधों में सन्तानोत्पत्ति इस विधि से होती है, उनका कोई वानस्पतिक भाग अलग हो जाता है, और उससे जनक पौधे के समान एक नया पौधा तैयार हो जाता है। यह सन्तानोत्पादक भाग प्रायः एक विशिष्ट कलिका अथवा एक या एक से अधिक साधारण कलिकाओं से युक्त रहता है। इन कलिकाओं की वृद्धि के लिये जब अनुकूल अवस्थायें मिलती हैं, तो इनसे जड़ें निकल कर पृथ्वी में जाती हैं, और एक अंकुर निकल कर ऊपर की ओर बढ़ने लगता है। पहले कुछ समय तक केवल संचित भोज्य पदार्थों पर ही नवजात सन्तान की वृद्धि होती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

केला, बांस, हल्दी, प्याज, आलू तथा सूरण आदि में भौमिक तनों द्वारा सन्तानोत्पत्ति होती है, जिसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है। पथरकुचा, हिमसागर तथा वेगोनियां में पत्तिओं से नये पौधे बनते हैं। वाराहीकन्द में स्वतन्त्र कलिका Bulbil द्वारा वानस्पतिक सन्तानोत्पत्ति होती है।

(२) अलैंगिक विधि :—इसमें और पहली विधि में केवल इतना ही अन्तर है कि इसमें सन्तानोत्पादक भाग एकहो कोष्ठ का होता है, जिसे स्पोर (Spore) कहते हैं. और पहलो में वह बहुकोष्ठी होता है। इसके अतिरिक्त अलैङ्गिक सन्तानोत्पत्ति क्षुद्र वनस्पतिओं में ही पायी जाती है।

(३) लैंगिक विधि :—उच्च श्रेणी के, पुष्पवाले पौधों में वानस्पतिक तथा लैङ्गिक विधि से ही संतानोत्पत्ति होती है। इन दोनों में भी लैङ्गिक रीति प्रधान होती है, क्योंकि इससे एक तो बल और जीवनशक्ति (Vigour and vitality) का ह्रास नहीं होता, दूसरे सन्तानवृद्धि और पौधों का दूरदेशीय प्रसार अधिक और समुचित रूप से होता है।

लैंगिक सन्तानोत्पत्ति सम्बन्धी क्रियायें—

इस रीति से जहां भी सन्तानोत्पत्ति होती है वहां दो कोष्ठ आकर मिलते हैं, और उनके मिलने से जो नया कोष्ठ बनता है, उसी की वृद्धि से नवजात सन्तान का शरीर बनता है। क्षुद्र श्रेणी की वनस्पतिओं में इन दोनों कोष्ठों के रूप तथा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

व्यवहार में कुछ विशेष अन्तर नहीं होता। परन्तु ज्यों-ज्यों हम ऊपर चलते हैं, दोनों में अन्तर प्रकट होने लगता है, और तब एक को नरकोष्ठ Male cell और दूसरे को नारी कोष्ठ (Female cell) कहने लगते हैं। पुष्प वाले पौधों में जिन-जिन अवयवों में ये दोनों प्रकार के कोष्ठ बनते हैं, वे भी भिन्न २ तरह के होते हैं। इनमें पुष्प ही सन्तानोत्पादक भाग हैं। इसमें नर तथा नारी कोष्ठों को उत्पन्न करने वाले अवयव भिन्न २ होते हैं, और पुष्प लिंग तथा पुष्प योनि कहे जाते हैं। पुष्पलिंगों के पराग कोषों में परागकण होते हैं, जिनसे नर-कोष्ठ आते हैं, और पुष्पयोनिओं के गर्भाशयों में नारी कोष्ठ की उत्पत्ति होती है ।

इन दोनों कोष्ठों के मिलने की क्रिया को गर्भाधान (Fertilisation) कहते हैं। चूंकि नारी कोष्ठ स्थायी होता है, इसलिये गर्भाधान के लिये यह आवश्यक है, कि पराग कण किसी तरह पुष्प योनिओं के सम्पर्क में पहुँचाये जायं। परागकणों के योनि छत्र पर, जो पुष्प योनि का एक भाग है, जाने या ले जाये जाने की क्रिया को सेचन क्रिया (Pollination) कहते हैं ।

सेचन क्रिया दो प्रकार की होती है। एक में एक फूल का पराग दूसरे फूल की पुष्प योनि पर गिरता है, अथवा ले जाया जाता है। ऐसे सेचन को परसेचन Cross pollination कहते हैं। जब किसी पुष्प का पराग उसी पुष्प के योनिछत्र

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पर गिरता है, या ले जाया जाता है, तो ऐसे सेचन को आत्म सेचन (Self Pollination) कहते हैं।

परसेचन और आत्मसेचन की तुलना— चूंकि आवृत्तवीजी पौधों में पुष्प अधिकतर द्विलिंगी होते हैं, अतः उनमें आत्मसेचन अवश्य ही अधिक सुगम होना चाहिये। परन्तु उनमें भी परसेचन ही अधिक होता है, यहां तक कि परसेचन के लिये उनमें अनेकों प्रकार की सुविधायें भी पायी जाती हैं। इससे प्रकट होता है कि पौधों को पर-सेचन से विशेष लाभ होता है। वनस्पतिविशारदों ने अब इस बात को प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि परसेचन से बने हुए वीज अधिक पुष्ट और संख्या में अधिक होते हैं, और उनसे जो पौधे उगते हैं, वे जीवन संग्राम में अधिक सफल होते हैं। यह भी देखा जा चुका है कि यदि परसेचन दो भिन्न २ व्यक्तिओं के दर्मियान होता है, तो वीज उन पौधों के वीजों की अपेक्षा जिनमें परसेचन एक ही व्यक्ति के दो भिन्न २ पुष्पों के दर्मियान हुआ रहता है, अधिक पुष्ट और होनहार निकलते हैं। इसका कारण सम्भवतः यही है, कि दूसरे में नवजात सन्तान का जनक पौधा एक ही होता है, अर्थात् नर और नारी कोष्ठ वहां एक ही व्यक्ति से आते हैं, इसलिये उनके मिलने से जो सन्तान बनती हैं, उसमें पैत्रिक गुण केवल एक ही व्यक्ति से आते हैं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अर्थात् सन्तान में समान गुणों का ही सम्मिश्रण होता है। परन्तु पहले में गर्भाधान के समय भिन्न-भिन्न पैत्रिक गुणों का सम्मिश्रण होता है। अतः इस तरह से उत्पन्न की हुई सन्तान अधिक गुणों वाली होती है, और जीवन संग्राम में अपने अस्तित्व की अधिक सफलता के साथ रक्षा करती है।

परसेचन के साधन (Agencies of cross pollination) परसेचन वायु, जल तथा जन्तुओं की सहायता से होता है।

(१) वायु द्वारा परसेचन—जिन पुष्पोंका सेचन वायु द्वारा होता है उन्हें वायुसिक्त (Anemophilous) कहते हैं। इन पुष्पों में अनेकों ऐसी विशेषतायें पायी जाती हैं, जो वायु सेचन के अनुकूल होती है। पुष्प छोटे, मधु तथा गन्ध रहित, तथा रूपरंग में भी आकर्षक नहीं होते हैं। पराग अधिक बनता है, और पराग-कण चिकने, हल्के तथा सूखे से होते हैं। योनिछत्र बड़ा और प्रायः इस प्रकार का होता है कि उड़ते परागकणों को पकड़ सके। इसीलिये यह कहीं २ सशाख (एरण्ड) और कहीं २ रोमश होता है। मक्का में योनिछत्र पर बहुत लम्बे-लम्बे रोम होते हैं, जो इन्हीं परागकणों के पकड़ने के निमित्त होते हैं। रोमश योनिछत्र गोधूम वर्ग में अधिक पाया जाता है। बहुत से वायु द्वारा सेचन कराने वाले पौधे पुष्प आने के पहले अपनी पत्तियां भी गिरा देते हैं, जिससे उनके कारण पराग वितरण में कोई बाधा न पड़े।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ऐसे पुष्पों के लिंगछत्र प्रायः वर्सेटाइल होते हैं। पुष्पव्यूह प्रायः लम्बित अथवा विदण्डिक होता है जो हवा में आसानी से झूला करते हैं।

(२) जल द्वारा सेचन :—जल में होने वाले पौधे कुछ ऐसे होते हैं जिनका सेचन जल द्वारा होता है। इनके पुष्पों को जलसिक्त (Hydrophilous) कहते हैं। तालाबों में एक पौधा होता है, जिसे वैलिस्नेरिया स्पायरेलिस (Vallisnaria spiralis) कहते हैं। इसमें जल के द्वारा सेचन बड़ी विचित्र रीति से होता है। इसके कुछ पौधों पर केवल नर पुष्प और कुछ पौधों पर केवल नारी पुष्प होते हैं। नर पुष्प विनाल होते हैं, और जड़ के पास मूलीय पत्तिओं के मध्य में होते हैं। नारी पुष्पों के पुष्पनाल बहुत लम्बे सूत्रवत और लपेटे हुए (Coiled) रहते हैं। जब नर पुष्प परिपक्व हो जाते हैं, तो जनक पौधे से अलग होकर पानी के ऊपर तैरने लगते हैं। उस समय नारी पुष्पों के पुष्पनाल भी फैल जाते हैं, जिससे वे भी पानी की सतह पर आ जाते हैं। जब दोनों प्रकार के पुष्प समीप २ आ जाते हैं, तो पराग कण जल द्वारा योनि छत्र पर पहुंच जाते हैं। सेचन के बाद नारी पुष्पों के पुष्पनाल फिर पूर्ववत् लपेट उठते हैं, और पुष्पों को जल के अन्दर खींच लेते हैं। फल जल के अन्दर ही तैयार होता है, और बीजोद्भेद भी अन्दर ही कीचड़ में होता है। इसी प्रकार अन्य कुछ पौधों का सेचन भी जल द्वारा होता है, परन्तु इतना ध्यान

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रहे कि जल में होनेवाले प्रत्येक पौधे का सेचन जल द्वारा नहीं होता, बल्कि उनकी अधिक संख्या अपना सेचन कीड़ों अथवा हवा द्वारा ही करती है।

(३) जन्तुओं द्वारा सेचन :—यद्यपि चिड़िओं तथा घोंघा आदि की सहायता से भी परसेचन होता है पर ~~जन्तुसिक्त~~ जन्तु (Zoophilous) पुष्पों में कीटसिक्त (Entomophilous) पुष्प हो अधिक होते हैं, जिनका सेचन छोटे २ कीड़ों तथा मक्खिओं द्वारा होता है। कीटसिक्त पुष्प बड़े, सुन्दर, और प्रायः गन्ध युक्त होते हैं। उनके पुष्पव्यूह भो बहुधा आकर्षक होते हैं। पुष्पों के किसी न किसी भाग में प्रायः मधु भी बनता है। पराग इनमें अधिक नहीं बनता, क्योंकि कीड़ों के बदन में लगा हुआ पराग प्रायः व्यर्थ नहीं जाता। हवा में उड़ता हुआ पराग किसी स्थान पर गिर सकता है, परन्तु कीड़ों के बदन का पराग प्रायः पुष्पों पर ही गिरता है। इससे अधिक पराग की आवश्यकता इन पुष्पों को नहीं होती। केवल थोड़े से पौधों में, जिनके ऊपर कीड़े केवल पराग की ही लालच से जाते हैं, पराग अधिक बनता है (क्योंकि कुछ कीड़े पराग खाते भी हैं)। पराग कण प्रायः चिपचिपे (Sticky) होते हैं, जिससे कीड़ों के बदन में आसानी से चिपक जाते हैं।

कीटसिक्त पुष्पों में रचनात्मक भी अनेकों विशेषतायें होती हैं। जब कीड़े सुन्दरता, तथा सुगन्ध आदि से आकर्षित

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होकर अथवा पराग वा मधु के लोभ से पुष्पों पर जाते हैं, उस समय पुष्प इन्हीं विशेषताओं द्वारा कीड़ों की गति (Movement) को अपनी सुविधानुसार अपने हाथ में रखता है, अर्थात् पुष्पों की ऐसी रचना होती है, कि कीड़े अपनी इच्छा पूर्त्ति किसी विशेष रीति से ही कर सकते हैं। सैल्विया के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। यह तुलसीवर्ग का पौधा है। इसमें दलचक्र द्विओष्ठी होता है। इसका अधोष्ठ (Lower-lip) बहुत ही दर्शनीय और इस प्रकार फैला रहता है, कि कीड़े आकर पहले उसी पर बैठते हैं। ऊर्ध्वोष्ठ ऊपर की ओर उठा हुआ और अग्र पर भीतर की ओर मुड़ा हुआ रहता है। पुष्पलिंग और पुष्पयोनिआं इसी के अन्दर छिपी रहती हैं। परागवाले पुष्पलिंग केवल दो होते हैं। इनमें लिंगसूत्र तो छोटा होता है, परन्तु संयोजक लम्बा और धनुषाकार होता है। दोनों संयोजकों के नीचे के भाग परस्पर मिले रहते हैं, पर ऊपर के स्वन्त्र होते हैं। उनके स्वतन्त्र अग्रों पर एक २ छत्र विच्छेद होता है। दूसरा अग्र उन दोनों का पराग रहित और चिपटा होता है। अधोष्ठ पर बैठे हुए कीड़े पुष्प के आधार भाग की ओर, जहां मधु रहता है, अपनी चोंच जब बढ़ाते हैं, तो मधुकोष के पहले ही संयोजकों का संयुक्त भाग बीच में पड़ जाता है, और चोंच के दबाव से वह उठ जाता है। इसलिये संयोजकों के ऊपरी स्वतन्त्र भाग अचानक कीड़ों की पीठ पर आकर टक्कर लेते हैं। इस समय संयोजक लीवर (Lever) का काम करता है। परागकोषों से पराग निकल कर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उस समय कीड़ों की पीठ पर जमा हो जाता है। मधुकोष से कीड़ें के अपनी चोंच खींच लेने पर अथवा उनके चले जाने पर पुष्पलिंग फिर अपने स्थान पर आ जाते हैं। चूंकि पुष्प शुक्रपूर्व (Protandrous) होते हैं, इसलिये उनकी पुष्प योनिआं बाद में परिपक होती हैं, जब कि उनके पराग कीड़ों द्वारा पहले ही दूसरे पुष्पों पर पहुंचा दिये गये रहते हैं। परिपक्व होने पर योनिसूत्र नीचे को लटक जाता है। इसलिये जब फिर पराग से सने हुए कीड़े आते हैं, तो उनकी पीठ का स्पर्श उनके लटके हुए योनि छत्रों से ही होता है, और पराग योनिछत्रों पर पहुँच जाता है।

इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि पुष्पों और कीड़ों में कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। इसी घनिष्टता का यह परिणाम हुआ है, कि बहुत से पुष्पों और कीड़ों का शारीरिक विकास भी एक दूसरे के अनुकूल हुआ है। अर्थात्, जैसे २ पुष्पों की रचना बदलती गयी है वैसे ही वैसे सेचन करने वाले कीड़ों की शारीरिक रचना भी बदलती गयी है।

परसेचनानुकूल अवस्थायें तथा रचनायें— पुष्पों में रचना सम्बन्धी अथवा अन्य बहुत सी ऐसी अवस्थायें देखने में आती हैं, जिनका अस्तित्व परसेचन के ही निमित्त माना जाता है। उनमें कुछ तो ऐसी होती है, जिनसे आत्म-सेचन में भी किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती, परन्तु कुछ ऐसी होती हैं, जिनकी उपस्थिति में आत्मसेचन कठिनता से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हो पाता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी अवस्थायें होती हैं, जिनमें आत्म सेचन हो ही नहीं सकता। बहुत से पौधों में पुष्प एकलिंगी होते हैं, और कुछ पौधों में एक पुष्प का पराग उसी पुष्प की पुष्पयोनि का गर्भाधान नहीं करा सकता। पुष्पों की इन दोनों अवस्थाओं को क्रमशः यूनीसेक्सवलिटी और सेल्फस्टेरिलिटी (Self-Sterility) कहते हैं। ये दोनों अवस्थायें पुष्पों को परसेचन के लिये बाध्य करती हैं।

कुछ पौधों में पुष्पलिंग और पुष्पयोनिआं भिन्न२ समय पर परिपक्व होती हैं, जिससे उनमें आत्म सेचन द्वारा बीज का बनना असम्भव ही होता है। पुष्पयोनिओं के परिपक्व होने पर ही योनिछत्र चिपचिपे (Sticky) होते हैं, और पराग कणों को ग्रहण कर सकते हैं। उसी समय उनमें शर्करा घोल तथा अन्य रासायनिक पदार्थ भी जो पराग कणों की वृद्धि में सहायक होते हैं, बनते हैं। शुक्रपूर्व (Protandrous) पुष्पों में, जहां पुष्पलिंग पहले परिपक्व होते हैं, जिस समय पराग कण परिपक्व होकर निकलते हैं, उस समय उनके योनिछत्र ग्राही (Receptive) अर्थात् पराग ग्रहण करने योग्य नहीं हुए रहते। इसलिये यदि पराग उन पर आता भी है, तो व्यर्थ जाता है। अतः इस बात की आवश्यकता होती है, कि वे परागकण किसी ऐसे पुष्प पर ले जाये जायँ, जिनकी पुष्पयोनिआं परिपक्व हो गयी हों। इसी तरह से रजोपूर्व

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(Protogynous) पुष्पों में जब योनिछत्र ग्राही होता है, तो उनके परागकण परागकोषों में बन्द रहते हैं, इसलिये गर्भाधान के लिये उन्हें दूसरे पुष्पों के पराग की आवश्यकता पड़ती है।

बहुत से पौधों में योनिसूत्र और लिंगसूत्र की लम्बाई में भी भिन्नता होती है। इस अवस्था को सूत्र-भिन्नता (Heterostyly) कहते हैं। बहुत से मंजिष्ठादिवर्ग के, तथा धातकी के पुष्पों में यह अवस्था पायी जाती है। इनमें प्रायः दो प्रकार के पुष्प होते हैं, जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर पाये जाते हैं। एक प्रकार के सब पुष्पों के लिंगसूत्र बड़े और योनिसूत्र छोटे होते हैं, और दूसरों में लिंगसूत्र छोटे और योनिसूत्र बड़े होते हैं। इसलिए एक ही पुष्प में अथवा एक ही प्रकार के दो पुष्पों में सेचन होना यद्यपि असम्भव नहीं मालूम होता, तो भी इतना अवश्य है, कि दो भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्पों में सेचन अधिक सुगमता से होता होगा, और इसलिये प्रायः यही होता भी है।

आत्मसेचन—बहुत से पौधों में यद्यपि साधारणतः परसेचन ही होता हैं, फिर भी यदि किसी कारण से उनमें परसेचन नहीं हो पाता तो उन्हें आत्मसेचन का ही आश्रय लेना पड़ता है। जो पुष्प शुक्रपूर्व तथा रजोपूर्व होते हैं, उनमें भी यदि दोनों भागों के परिपक्व होने के समयों में अधिक अन्तर नहीं होता, तो उनमें भी आत्मसेचन हो जाया

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

करता है। गेंदावर्ग में प्रायः परसेचन ही होता है, परन्तु परसेचन न होने पर उनके योनिसूत्र इस प्रकार झुक जाते हैं, कि योनिछत्र लिंगछत्रों को स्पर्श करने लगते हैं, और आत्म-सेचन हो जाता है। आत्मसिक्त पुष्पों में बहुत से पुष्पों को क्लिस्टोगैमश (Clistogamous) कहते हैं। ये पुष्प कभी नहीं खिलते। इनका पुटचक्र शेष भागों को इस प्रकार अन्त तक ढके रहता है, कि पराग को बाहर जाने का अथवा बाहर से भीतर आने का रास्ता नहीं मिलता। ऐसे पुष्प प्रायः जिन पौधों पर पाये जाते हैं, उनमें भी साधारण पुष्प होते हैं, जिनका सेचन कीड़ों द्वारा होता है। यदि किसी कारण से परसेचन नहीं होता तो आत्मसेचन की सहायता लेनी पड़ती है। ऐसी अवस्था मूंगफली में देखी जाती है।

गर्भाधान—इस क्रिया को भली प्रकार समझने के लिये रजोपेटी (Ovule) तथा परागकण की रचना का ज्ञान तथा गर्भाधान की तैयारी में होने वाले इनके अन्दर के परि-वर्तनों की जानकारी बहुत आवश्यक है।

१रजोपेटी या डिम्ब की रचना—यहां एक डिम्ब-वाले गर्भाशय का वर्णन किया गया है। रजोपटी गर्भाशय के अन्दर एक नाल द्वारा प्लेसेन्टा से जुड़ी रहती है। इस नाल को डिम्बनाल (Funiculus) कहते हैं। रजोपेटी एक अथवा दो आवरणों से, जो मोटी दीवाल वाले कोष्ठों की कई तहों से बने रहते हैं, ढकी रहती है। इन आवरणों को डिम्बा-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वरण (Integument) कहते हैं। केवल एक स्थान पर रजोपेटी के ऊपर आवरण नहीं होता। उस स्थान को सूक्ष्म-छिद्र (Micropyle) कहते हैं, जो परिपक्व डिम्ब अथवा बीज में भी पाया जाता है। इन आच्छादनों के अन्दर के तंतु को न्यूसेलस (Nucellus) कहते हैं। न्यूसेलस के जिस स्थान से दोनों आवरण निकलते हैं, उसे सन्धि-स्थान (Chalaza) कहते हैं, और जिस स्थान पर डिम्ब डिम्बनाल से मिलता है, उसे नालचिन्ह (Hilum) कहते हैं।

न्यूसेलस में सूक्ष्मछिद्र के समीप एक बड़ा कोष्ठ होता है जिसे गर्भकोष (Embryo sac) कहते हैं। इसका न्यूक्लियस पहले दो भागों में विभक्त होता है, जो गर्भकोष के दोनों सिरों पर चले जाते हैं। ये दोनों फिर दो-दो बार विभक्त होकर कुल आठ न्यूक्लियस उत्पन्न कर देते हैं, जिनमें चार २ दोनों सिरों पर रहते हैं। इनमें से तीन-तीन तो अपने स्थान पर रह जाते हैं, पर दोनों सिरों से एक-एक आकर बीच में मिल जाते हैं, और सेकेन्डरीन यूक्लियस (Secondary nucleus) बनाते हैं। हर एक सिरे पर के न्यूक्लियस जीवनमूल से घिर जाते हैं। सूक्ष्मछिद्र के समीप के तीनों कोष्ठों को अण्डयन्त्र (Egg apparatus) कहते हैं, जिसमें ऊपर के दो कोष्ठों को सहायक कोष्ठ (Help-cells) और नीचे के कोष्ठ को गर्भाकोष्ठ या नारीकोष्ठ (Egg cell) कहते हैं। यद्यपि इन तीनों रचनाओं को हम कोष्ठ कहते हैं,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पर इनमें कोष्ठावरण (Cell-wall) नहीं होते । विपरीत सिरे पर के तीनों कोष्ठों को ऐण्टीपोडल (Anti-podal) कोष्ठ कहते हैं। यद्यपि गर्भकोष के अन्दर इतना परिवर्तन हो जाता है, तो भी उसकी रचना एक साधारण कोष्ठ से बहुत मिलती जुलती है। इसमें पहले का कोष्ठावरण रहता ही है। इसका जीवन मूल भी कोष्ठावरण के समीप चारों ओर रहता है। सेकेण्डरी न्यूक्लियस के चारों ओर से जीवन-मूलीय सूत्र निकल कर किनारे के जीवनमूल से मिले रहते हैं।

भिन्न-भिन्न प्रकार की रजोपेटिओं में, नालचिन्ह, सन्धि-स्थान तथा सूक्ष्मछिद्र का पारस्परिक सम्बन्ध भिन्न २ होता है। डिम्बावरण भी कहीं एक, कहीं दो अथवा कहीं कहीं तीन भी होते हैं। बहुत साधारण प्रकार की रजोपेटी में सन्धिस्थान और नालचिन्ह बहुत समीप २ होते हैं, और सूक्ष्मछिद्र, नाल-चिन्ह तथा न्यूसेलस की अक्ष तीनों एक सीधी रेखा में पाये जाते हैं। ऐसी रजोपेटी को आर्थोट्रापस (Orthotropous) कहते हैं। दूसरी प्रकार की रजोपेटिओं में इसका उलटा होता है। रजोपेटी की वृद्धि एक ओर की अपेक्षा दूसरी ओर इतनी अधिक होती है, कि सन्धिस्थान नालचिन्ह से हटकर दूसरी ओर चला जाता है, और सूक्ष्मछिद्र, नालचिन्ह तथा पहली प्रकार की रजोपेटिओं का शीर्ष एक जगह हो जाता है। ऐसी वृद्धि में न्यूसेलस का अक्ष सीधा रह जाता है, और डिम्बनाल

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उससे एक ओर मिल जाता है। इस संयुक्त भाग को रेफ (Raphes) कहते हैं। इस प्रकार की रजोपेटी ककड़ियों में पायी जाती है, और एनाट्रापस (Anatropous) रजोपेटी के नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनों के बीच की अवस्था तीसरे प्रकार की रजोपेटिओं में मिलती हैं। यहां भी न्यूसेलस सीधा ही रह जाता है, पर इसका अक्ष डिम्बनाल से समकोण बनाता है। इसमें भी एक छोटा रेफ होता है। चौथी प्रकार की रजोपेटिओं में न्यूसेलस इतना टेढ़ा हो जाता है, कि सूक्ष्मछिद्र, नालचिन्ह तथा संधिस्थान सब समीप २ आ जाते हैं। इनमें रेफ नहीं होता। तीसरी प्रकार की रजोपेटी को ऐम्फीट्रापस (Amphitropous) और चौथी प्रकार की रजोपेटी को कैम्पिलोट्रापस (Campylotropous) कहते हैं।

परागकण और उसका उद्भेद :—परागकण एक-कोष्ठी होते हैं। उनका आकार प्रायः एक साधारण कोष्ठ से मिलता है, परन्तु उनके आकार, क़द तथा रङ्ग आदि में बड़ी विभिन्नता भी पायी जाती है। इनमें साधारणतः दो आवरण होते हैं। बाहरी आवरण (Extine) क्यूटीन-स्तर से बना होता है और भीतरी सेलुलोज़-स्तर का बना होता है। अन्तरावरण (Intine) प्रायः चिकना, बारीक और पारदर्शक होता है, पर बाह्यावरण कठोर होता है, और इसका पृष्ठ कणमय, कण्टकित तथा पाशवत रचनावाले बहिरुद्भेदों से युक्त होता है। रङ्ग में परागकण पीला, लाल, नीला, काला, तथा श्वेताभ हो सकता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है। आकार में वे प्रायः गोल होते हैं, पर कभी २ त्रिभुजाकार, बहुभुजाकार, शंखाकार नलिकाकार तथा सूत्राकार परागकण भी देखने में आते हैं। परागकणों में छोटे २ छिद्र (Slit) भी होते हैं जो प्रायः एकदली में एक और द्विदली में तीन की संख्या में होते हैं।

परागकोषों से निकलने के पहले ही इनका न्यूक्लियस प्रायः दो भागों में बट जाता है। इन दोनों में छोटे भाग को, जो बड़े के अन्दर होता है और कुछ जीवनमूल के साथ एक आवरण के अन्दर घिर जाता है, उत्पादक-कोष्ठ (Generative cell) कहते हैं। दूसरे भाग को वानस्पतिक कोष्ठ (Vegetative cell) कहते हैं। सेचन के पहले ही अथवा योनिछत्र पर पहुँच जाने के बाद उत्पादक-कोष्ठ के दो भाग हो जाते हैं जिनको नरकोष्ठ (Male cells) कहते हैं। इस बार इन नर-कोष्ठों में आवरण नहीं होते।

इसके बाद परागकण में जितने परिवर्तन होते हैं वे सब योनिछत्र पर ही होते हैं। योनिछत्र से निकले हुए पोषक घोल को पाकर परागकणों के अन्दर एक नवीन वृद्धिशक्ति आ जाती है। उनके अन्दर का जीवनमूल किसी एक छिद्रों पर आवरण को फाड़ कर बाहर निकल आता है, और नलिकाकार हो जाता है। इस भाग को परागनलिका (Pollen-tube) कहते हैं। यह नलिका योनिछत्र और योनिसूत्र के तन्तुओं में से होते हुए गर्भाशय के अन्दर पहुंचती है। वहां पहुँच कर यह

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रायः सूक्ष्मछिद्र से होकर न्यूसेलस में जाती है, और अण्ड यन्त्र के बहुत निकट आ जाती है। तबतक दोनों नरकोष्ठ और वानस्पतिक कोष्ठ का न्यूक्लियस भी उस नलिका के अग्र तक आ जाता है। कहा जाता है कि सहायक कोष्ठों में जीवन-मूल तो कम होता है, पर कोष्ठरस (Sap) बहुत होता है। परागनलिका इसका शोषण करके बहुत फूल जाती है, और अन्त में फट भी जाती है। इसके बाद एक नरकोष्ठ नारीकोष्ठ से जाकर मिल जाता है, और दोनों के मिलने से जो नया कोष्ठ बनता है, उसीको ऊस्पोर (Oospore) कहते हैं। यह बनते ही सेलुलोज़ के आवरण से घिर जाता है। नवजात सन्तान इसी एक कोष्ठ के रूप में पहले-पहल उत्पन्न होती है। उपर्युक्त प्रकार से नर और नारी कोष्ठों के मिलने की क्रिया को ही गर्भाधान कहते हैं। बहुत से पौधों में दूसरा नरकोष्ठ सेकेन्डरी-न्यूक्लियस से मिलकर इण्डोस्पर्म न्यूक्लियस (Endosperm nucleus) की सृष्टि करता है। इस संयोग को कभी-कभी पुनर्गर्भाधान (Double fertilisation) कहते हैं, क्योंकि इण्डोस्पर्म न्यूक्लियस दो बार दो-दो कोष्ठों के मिलने से प्राप्त होता है। वानस्पतिक कोष्ठ का न्यूक्लियस नष्ट हो जाता है।

गर्भाधान के बाद गर्भकोष तथा गर्भाशय में परिवर्तन—गर्भाधान हो जाने पर गर्भकोष तथा गर्भाशय में अनेक प्रकार के परिवर्तन होने लगते हैं। इन समस्त परिवर्तनों के फल स्वरूप हमें फल तथा बीज की प्राप्ति होती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गर्भाधान हो जाने पर ऊस्पोर बड़े वेग से बढ़ने लगता है, और इसके बार-बार विभक्त होने से एक कोष्ठपुंज बन जाता है, जिसे गर्भ (Embryo) कहते हैं। साथ ही सेकेन्डरी न्यूक्लियस बार-बार विभक्त होकर बहुत से न्यूक्लियस बना लेता है, जो क्रमशः जीवनमूल और आवरणों से घिर कर एक तंतु में बदल जाते हैं, जिसे इन्डोस्पर्म कहते हैं। गर्भकोष की वृद्धि के लिये प्लेसेण्टा से होकर भोज्य-पदार्थ लगातार गर्भाशय के अन्दर आता रहता है। इसी में का कुछ अंश निशास्ता (Starch) एल्यूरोन कण तथा तैल आदि के रूप में इन्डोस्पर्म के कोष्ठों में भी भर जाता है, जो बीजोद्भेद के समय काम देता है। गर्भ में जो वेग के साथ वृद्धि और रचना भेद होता रहता है, उसके कारण प्रारम्भिक जड़ (Radicle), गर्भकलिका (Plumule) तथा बीजपत्र नामक रचनाओं की उत्पत्ति हो जाती है।

इन्डोस्पर्म और गर्भ के बढ़ जाने से गर्भकोष भी बहुत अधिक बढ़ जाता है, और न्यूसेलस क्रमशः नष्ट हो जाता है। रजोपेटी के आच्छादन भी सूखकर कड़े हो जाते हैं, और बीजावरण (Testa) कहे जाने लगते हैं। स्वयं रजोपेटी को बीज कहने लगते हैं। प्रायः एक दली और बहुत से द्विदली पौधों में भी गर्भ के साथ इन्डोस्पर्म स्थायी रूप से मौजूद पाया जाता है, परन्तु बहुत से द्विदली तथा कुछ एकदली पौधों में भी, भोज्य पदार्थों का संचय बीजपत्रों के ही अन्दर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होता है और इन्डोस्पर्म का सर्वथा अभाव पाया जाता है। कुछ थोड़े से पौधों में न्यूसेलस का पूर्ण नाश नहीं होता। उसका थोड़ा सा भाग गर्भ के चारों ओर मौजूद रहता है, और इसके कोष्ठ भोज्य पदार्थों से भरे रहते हैं। इस अवशिष्ट भाग को गर्भावरण (Perisperm) कहते हैं। यह तंतु काली मिर्च में पाया जाता है।

गर्भाधान से जो उत्तेजना मिलती है, वह गर्भकोष के ही वृद्धि का कारण नहीं होती, वरन् वह गर्भाशय तथा पुष्प के अन्य भागों में भी वृद्धिशक्ति का संचार कर देती है, जिससे गर्भाशय अनेक प्रकार के परिवर्तनों के बाद फल का रूप धारण कर लेता है। प्रायः परिपक्व गर्भाशय को ही हम फल कहते हैं, जिसका बीज को सुरक्षित रखना और उपयुक्त समय पर बीजप्रसार करा देना ही मुख्य कार्य माना गया है।

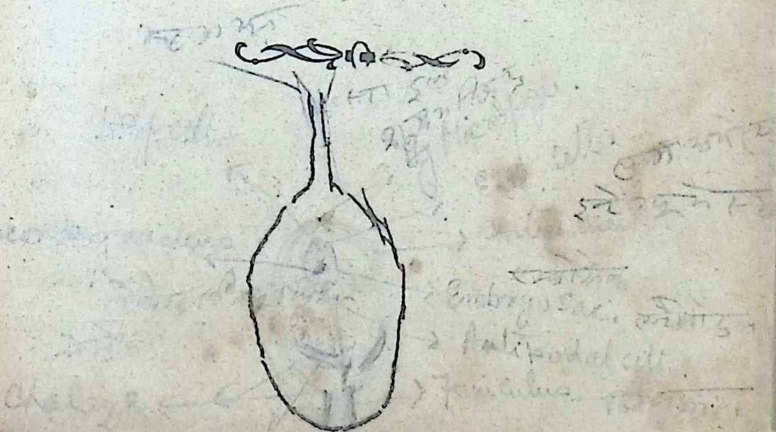

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद ७

फल तथा बीज ।

पौधों की जिस रचना को हम फल मानते हैं, वह प्रायः परिपक्व गर्भाशय ही होता है। कहीं २ पुष्प के अन्य भाग भी फल के बनने में सहायता पहुंचाते हैं। पहले प्रकार के फलों को वास्तविक फल (True fruits) और दूसरे प्रकार के फलों को सूडोकार्प (Psuedocarp अथवा false fruit) कहते हैं। नासपाती, सेव तथा तरबूज में स्तम्भक, तुलसीवर्ग, चालता, सागोन, वैगन तथा मकोय में पुटचक्र, भल्लातक में पुष्पदण्ड तथा बरगद, गूलर, तून और अनानास में सम्पूर्ण पुष्पव्यूह फल के बनने में हाथ बटाते हैं। इसलिये इन सब फलों को सूडोकार्प कहते हैं।

जबतक गर्भाशय फल का रूप धारण करता है, तबतक उसमें बहुत से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाते हैं। इस समय बहुत से गर्भाशयों में अनुप्रस्थ अथवा लम्बवत् व्यवधान (False septum) बन जाते हैं, जो पूर्ण (गोक्षुर) अथवा अपूर्ण (धतूर) होते हैं। इसके अतिरिक्त कभी २ गर्भाशय के कुछ भागों का लोप भी हो जाता है। जैसे वर्च में गर्भाशय दो कोष्ठ तथा दो डिम्बवाला होता है, पर फल एक कोष्ठ तथा एक बीज का रह जाता है। नारियल में गर्भाशय त्रिकोष्ठी होता है, पर फल एक ही कोष्ठ का होता है। गर्भाशय के कुछ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में तो वृद्धि सभी पौधों में हो जाती है। फल में मांसल और खाद्य भाग जो पीछे से बनता है, और फल को बहुत बढ़ा देता है, वह प्रायः गर्भाशय, फल की दीवाल (आम), प्लेसेन्टा (टोमाटो और शन्तरा) तथा स्तम्भक (सेव, नासपाती) से बना होता है।

फल बनने के बाद फल की दीवाल गर्भाशय की दीवाल से प्रायः बहुत भिन्न हो जाती है। कभी तो वह सूखी और पतली रह जाती है, और कभी वह चर्मवत् मालूम पड़ती है। कहीं तो वह बहुत कठोर होती है, और कहीं मांसल तथा रसदार हो जाती है। फल की दीवाल को पर्योत्त्र (Pericarp) कहते हैं। बहुत से फलों में यह तीन स्पष्ट तहों में अलग २ की जा सकती है। जैसे आम तथा बेर में ऊपर की तह चर्मवत होती है, और इपीकार्प (Epicarp) कही जाती है। बीच की मांसल तह मीज़ोकार्प (Mesocarp) और अन्दर की पाषाणवत् कठोर तह इण्डोकार्प (Endocarp) कही जाती हैं। बादाम तथा अखरोट में ये तीनों तहें न्यूनाधिक स्पष्ट होती हैं, पर अधिक पौधों में ये तीनों स्पष्ट रूप से अलग २ नहीं की जा सकतीं। बादाम में इण्डोकार्प पतला पर कठोर होता है, जिसके ऊपर शेष दोनों तहें मिलकर एक हरा पर्दा बनाये रहती हैं। अखरोट में इण्डोकार्प बहुत कड़ा होता है, और शेष दोनों तहें मिलकर हस्क (Husk) बनाती हैं।

फलों का स्फोटन :— कुछ परिपक्व फलों के सूख

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जाने पर उनकी दीवाल इसलिये फट जाती है, कि उनके बीज निकल कर अपना बीजोद्भेद कर सकें। जिन फलों में बीज-प्रसार की सुविधायें मौजूद रहती हैं, वे प्रायः अपना स्फोटन नहीं करते। उनके बीज अकस्मात् फल से अलग हो जाते हैं, अथवा बीजोद्भेद के समय फल सड़ जाता है, तब वे अङ्कुरित होते हैं। अतः स्फोटी फलों में बीजप्रसार का कार्य बीजों ही द्वारा सम्पादित होता है, जो बीजप्रसार के निमित्त भिन्न २ प्रकार की आकृतिक सुविधाओं से सुसज्जित रहते हैं। इस श्रेणी के कुछ फलों का स्फोटन ही इस प्रकार का होता है, कि उसके कारण कुछ न कुछ बीजप्रसार हो जाता है। कुछ फलों में उनका अग्रभाग कपाट की तरह आधार भाग से अलग हो जाता है, अर्थात् अनुप्रस्थ धरातल में फल दो भागों में टूट जाता है। ऐसे स्फोटन को अनुप्रस्थ (Transverse) स्फोटन कहते हैं। पोस्ते में अग्रभाग पर चारों ओर दीवाल में छोटे २ छिद्र बन जाते हैं, और जब फल हवा के झोंके में इधर-उधर झूलता है, तो बीज एक २ करके निकल २ कर ज़मीन पर गिर जाते हैं। ये छिद्र कहीं २ आधार पर भी होते हैं। ऐसे स्फोटन को छिद्रल (Porous) स्फोटन कहते हैं। अधिकतर फलों का लम्ब स्फोटन होता है। वे डार्सल, वेन्ट्रल अथवा कहीं २ दोनों जोड़ों पर लम्बवत् फट जाते हैं। ऐसा स्फोटन जब आंशिक होता है, तो अग्र पर बहुत से दांत बन जाते हैं, और स्फोटन दन्त-स्फोटन के नाम से प्रसिद्ध होता है, परन्तु कहीं २

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नहीं होती । स्फोटन भी होता है । वहां फल कई लम्बवत् की एक रचअलग हो जाता है ।

है । य

युक्त गर्भाशय से बने हुए बहुकोष्ठी फलों का स्फोटन तीन तरह से होता है । सेप्टीसाइडल (Septicidal) जब फल वेंट्रल जोड़ों पर फटता है, अर्थात् प्रत्येक व्यवधान दो दो भागों में फटकर अपने-अपने बीजों के साथ एक दूसरे से अलग हो जाता है (कालिचकम)। (२) लाक्युलिसाइडल (Loculicidal) जब फल डार्सल जोड़ों पर फटता है, और उसके लम्बवत् टुकड़े मध्य अक्ष से अलग हो जाते हैं, और व्यवधानों को भी अपने साथ रखते हैं। (३) सेप्टीफ्रेगल (Septifragal) जब फल दो में से किसी एक प्रकार के जोड़ों पर फटे, और साथ ही साथ व्यवधान भी मध्य अक्ष से टूटकर अलग हो जायं, जिससे बीज प्लेसेन्टा के साथ बीच में ही रह जायं (धतूर)।

फल के भेदः—फल (१) साधारण Simple (२) सामूहिक Aggregate तथा (३) पुष्पव्यूही Composite तीन तरह के होते हैं। साधारण फल ऐसे पुष्पों से बने होते हैं, जिनका योनिचक्र एक योनि अथवा संयुक्त-योनि होता है। सामूहिक फल भी एक ही पुष्प से बनता है, पर उसमें पुष्प-योनियां स्वतन्त्र होती है। पुष्पव्यूही फल एक पुष्प व्यूह से बना होता है। साधारण फलों में कुछ ऐसे होते हैं जिनका पर्योल शुष्क और दृढ़ होता है, और कुछ ऐसे होते हैं,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जिनमें पर्योल्व रसदार तथा मांसल होता है। पहले उनके बीज फलों को शुष्क (Dry) और दूसरे प्रकार के फलों को बीज-(Succulent) फल कहते हैं। शुष्क साधारण फलस्फोटन तीन प्रकारके हो सकते हैं, अर्थात् (१) एकीनियल (Achenial) (२) कैप्सुलर (Capsular) (३) और साइज़ोकार्पिक (Schizocarpic)।

एकीनियल फल अनस्फोटी तथा एकबीजी होते हैं। इस श्रेणी में पांच प्रकार के फल होते हैं। (१) एकीन (Achene) उस फल को कहते हैं, जो सुपीरियर गर्भाशय से बना रहता है, और जिसका पेरिकार्प बीजावरण से अलग, चर्मवत् अथवा झिल्ली के समान होता है जैसे बरगद का बीज। (२) सिप्सेला (Cypsela) उसे कहते हैं जो एकीन के समान होता है पर इन्फीरियर गर्भाशय से बना होता है। गेंदा वर्ग का यह लाक्षणिक फल है। प्रसार के निमित्त इसमें प्रायः पैपस भी होता है। (३) कैरियोप्सिस (Caryopsis) यह एकीन से केवल इस बात में भिन्न होता है कि इसका पर्योल्व बीजावरण से मिला रहता है। गोधूम वर्ग में जौ, गेहूँ, मक्का आदि के दाने यद्यपि बीज समझे जाते हैं, पर वस्तुतः वे इसी श्रेणी के फल होते हैं। (४) समारा (Samara) इसमें फल के दोनों ओर पेरिकार्प पंखवत् फैला रहता है, जिससे वायु द्वारा प्रसार में सहायता मिलती है। चिरबिल्व में ऐसा फल मिलता है। (५) नट (Nut) इसमें पर्योल्व बहुत कड़ा होता है, और इसकी भिन्न-भिन्न तहें एक दूसरे से अलग

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नहीं होती । इन फलों के साथ प्रायः क्यूप्यूल (Cupule) नाम की एक रचना होती है, जो वृन्तपत्रकों के मिलने से बनी होती है। यह अंशतः अथवा पूर्णतः फल को ढके रहती है. और साधारतः हस्क के नाम से प्रसिद्ध है । एकार्न और चेन्टनट इसके उदाहरण हैं ।

कैप्सुलर फल स्फोटी तथा वहुबीजी होते हैं इस श्रेणीके अन्दर पांच प्रकार के फल होते हैं। (१) एकस्फोटी (Follicle) यह फल एक योनि गर्भाशय से बना होता है, और सूखने पर प्रायः वेंद्रल जोड़ पर ही फटता है। साधारण एकस्फोटी फल प्रायः नहीं पाये जाते। सामूहिक फल के छोटे २ फल प्रायः ऐसे होते हैं। (२) युग्मस्फोटी (Legume अथवा Pod) इन फलों में स्फोटन दोनों जोड़ों पर होता है। शिम्बीवर्ग का यह लाक्षणिक फल है। आकारविभिन्नता इनमें बहुत होती है। (३) शिलिका (Siliqua) यह फल सुपीरियर गर्भाशय से बना हुआ, लम्बा, पतला और मिथ्याव्यवधान के कारण दो कोष्ठों का होता है। स्फोटन के समय पेरिकार्प दोनों जोड़ों पर फट कर दो भागों में दोनों तरफ अलग हो जाता है। बीज दोनों पेराइटल प्लेसेन्टा से जुड़े रहते हैं और बीच में मिथ्या व्यवधान फैला रहता है। सर्षपवर्ग का यह लाक्षणिक फल है (४) सिलिकुला (Silicula) यह सिलिका का रूपान्तर मात्र है। सिलिका की अपेक्षा छोटा और मोटा होता है। यह भी सर्षपवर्ग में ही पाया जाता है। (५) कैप्स्यूल (Capsule)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अन्य जितने स्फोटी बहुवीजी फल हैं और संयुक्त, एककोष्ठी या वहुकोष्ठी गर्भाशय से बने हैं, सब इसी श्रेणी में रखे जाते हैं। इन सब का स्फोटन भिन्न २ तरह से होता है, जिसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है। अहिफेन, चिरायता तथा ब्राह्मी आदि वर्गों में इसी प्रकार के फल पाये जाते हैं।

साइज़ोकार्पिक फल भी यद्यपि स्फोटी और वहुवीजी होते हैं, पर इनका स्फोटन भिन्न रीति से होता है। ये लम्बवत् अथवा अनुप्रस्थ धरातल में एकवीजी भागों में अलग हो जाते हैं, जो मेरिकार्प (Mericarp) कहे जाते हैं। वीजोद्भेद के समय इन एकवीजी भागों के पेरिकार्प सड़ जाते हैं, तभी वीज अङ्कुरित होता है, अर्थात ये मेरिकार्प प्रायः अस्फोटी होते हैं। इस श्रेणी में भी पांच प्रकार के फल सम्मिलित हैं।

(१) लोमेन्टम् (Lomentum) इन फलों के लक्षण वे ही होते हैं. जो लेग्यूम और सिलिक्वा के हैं। अन्तर केवल स्फोटन विधि में है। निकटस्थ वीजों के वीच में फल पतला होता है, और वहीं वह टूटता है। ये फल भी शिम्बी तथा सर्षपवर्गों में पाये जाते हैं।

(२) Cremocarp क्रीमोकार्प यह गर्जरादि वर्ग का लाक्षणिक फल है। यह दो पुष्पयोनि वाले संयुक्त द्विकोष्ठी इन्फीरियर गर्भाशय से बनता है, और लम्बवत फट कर दो भागों में बट जाता है, जो कुछ समय तक द्विभक्त कार्पोफोर से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक कोष्ठ में एक-एक वीज होते हैं, जो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शोर्ष भाग मे निकले रहते हैं। (३) कार्सेरुलस (Carcerulus) यह फल तुलसी-वर्ग में पाया जाता है, और द्वियोनि, पर मिथ्याव्यवधान के कारण चार कोष्ठवाले गर्भाशय से बना होता है। फल चार एकवीजी भागों में बट जाता है। इनमें गर्भाशय के सब कोष्ठ पहले योनिसूत्रों द्वारा एक दूसरे से वीच में मिले होते हैं, और स्फोटन के समय एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। (४) रेग्मा (Regma) ऊपर के फलों से इसमें यही विशेषता होती है, कि इसके मेरिकार्प स्फोटी होते हैं और इसीलिये काक्सी (Cocci) कहे जाते हैं। ऐसा फल एरण्ड में पाया जाता है। (५) संयुक्त समारा (Compound-Samara) यहां सम्पूर्ण फल कई समारा का बना होता है अर्थात् उसके मेरिकार्प एक-एक समारा होते हैं। मैपुल (Maple) में प्रत्येक फल दो समारा का समूह होता है।

साधारण मांसल फल—इस श्रेणी में तीन प्रकार के फल हैं। (१] ड्रूप (Drupe) इन फलों का पेरिकार्प तीन स्पष्ट भागों में विभक्त रहता है। इन्डोकार्प बहुत कड़ा होता है, और मीज़ोकार्प मांसल तथा रसदार होता है। इपीकार्प पतले चर्मवत् परदे के रूप में होता है। यह एकयोनि अथवा संयुक्तयोनि गर्भाशय से बना होता है, इसलिये यद्यपि ऐसा फल प्रायः एकवीजी तथा एककोष्ठी ही होता है, पर कभी २ वहुकोष्ठी तथा बहुवीजी ड्रूप भी पाये जाते हैं। बेर में प्रायः एक से अधिक वीज होते हैं, और एक ही इन्डोकार्प के अन्दर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रहते हैं। कुछ बहुबीजी ड्रूपों के बीज पृथक-पृथक इन्डोकार्पों से घिरे रहते हैं, पर इनमें मीज़ोकार्प एक ही होता है। इस विशेषता के कारण ऐसे फल पाइरीन (Pyrene) भी कहे जाते हैं। एकयोनि गर्भाशयों से बने हुए ड्रूप आम तथा बेर के होते हैं, और अखरोट तथा नारियल के फल संयुक्तगर्भाशयों से बने होते हैं। बादाम, नारियल तथा अखरोट में मीज़ोकार्प सौत्रिक (Fibrous) होता है, और बादाम के मीज़ोकार्प में तो कड़ापन भी होता है। अखरोट में इपीकार्प और मीज़ोकार्प दोनों एक पतले छिलके के समान होते हैं, और इन्डोकार्प दो खण्डों का और कठोर होता है, जिसके भीतरी पृष्ठ से बहिरुद्भेद निकलकर इतनी दूर तक बढ़े रहते हैं, कि बीज कई खण्डों में बटा हुआ मालूम होता है। नारियल में मीज़ोकार्प सौत्रिक होता है, और उसका खाद्य-भाग बीज के इन्डोस्पर्म से बना होता है।

बेरि (Berry)—इसमें पेरिकार्प की तीनों तहें अलग भी हो सकती हैं और नहीं भी। परन्तु यहाँ इन्डोकार्प कठोर कभी नहीं होता। फल एकयोनि अथवा बहुयोनि संयुक्त, इन्फीरियर अथवा सुपीरियर गर्भाशय से बना होता है, और इसके एक अथवा अनेक बीज लुग्दीतुल्य मांसल भाग में छिटके रहते हैं। प्रामाणिक बेरी में मांसल भाग प्लेसेन्टा से बने रहते हैं। पहले बीज प्लेसेन्टा से जुड़े रहते हैं, पर वे बाद में अलग होकर मांसल भाग में छिटक जाते हैं। इस श्रेणी के कुछ विशेष

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पीपर के फलों के विशेष नाम हैं, जैसे कुष्मांड वर्गकी ककड़िओं को पेपो (Pepo) कहते हैं। इनमें वीजों का सम्बन्ध प्लेसेन्टा से कभी नहीं टूटता। नीबू, शंतरा तथा इस वर्ग के अन्य फलों को हेस्पेरीडियम (Hesperidium) कहते हैं। इनमें पेरिकार्प आसानी से अलग कर दिया जा सकता है। इसकी सबसे भीतरी तह से बहुत से पतले बहिरुद्भेद व्यवधानों के रूप में भीतर की ओर निकले रहते हैं। वीज मांसल भाग में धंसे रहते हैं और कोष्ठों के भीतरी कोणों पर जुड़े रहते हैं। छुहारा तथा खजूर के फलों को भी एक वीजी बेरी कहना चाहिये, क्योंकि इनका कठोर भाग इन्डोकार्प से नहीं बना होता, वल्कि वह स्वयं बीज होता है। इन्डोकार्प का एक पतला परदा मौजूद रहता है।

पोम (Pome)—यह इन्फीरियर गर्भाशय से बनता है, जो दो से अधिक कोष्ठों तथा वीजों से युक्त रहता है। इनमें पुष्पयोनिओं से बना हुआ भाग मांसल स्तम्भक से घिरा रहता है। इसका बाहरी छिलका तथा मांसल भाग वीज रहित होता है, क्योंकि ये भाग स्तम्भक से बने होते हैं। मध्य का कुछ बड़ा भाग पुष्पयोनिओं से बना होता है। गुलाब वर्ग में इस प्रकार के फल पाये जाते हैं। सेब तथा नासपाती इसके उदाहरण हैं।

सामूहिक फल—यह उन छोटे-छोटे फलों का समूह मात्र होता है, जो पुष्प के स्वतन्त्र गर्भाशयों से बने होते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इन्हीं छोटे-छोटे फलों की रचना के आधार पर इन सामूहिक फलों का वर्गीकरण किया जाता है। सामूहिक फल प्राय: एकीन, ड्रूप तथा एक स्फोटी (Follicle) फलों के समूह होते हैं। रसभरी (Raspberry) तथा ब्लैकबेरी में फल ड्रूपों का समूह होता है। एकीन और फालिकिल के समूह प्राय: अतीस तथा गुलाब के वर्गों में पाये जाते हैं। देवकांडर स्ट्राबेरी तथा जंगली गुलाब में एकीनों का सामूहिक फल होता है। अतीस, त्रायमाण तथा मदार में फालिकिल के समूह होते हैं।

पुष्पव्यूही फल—इन फलों के बनने में प्राय: पुष्पों के अनावश्यक भाग तथा वृन्तपत्र भी सम्मिलित हो जाते हैं। तूत, ~~कटहल~~, अनानास, अंजीर आदि इसके उदाहरण हैं। कटहल में बीच का जो मूसला होता है, वह वास्तव में पुष्प दण्ड है। जो कोये खाये जाते हैं, वे उसपर के विनल पुष्प हैं जिनमें नारी भाग और पेरियंथ पत्र होते हैं। खाद्यभाग पेरियंथ पत्रों का ही होता है। फल के ऊपर जो नोकीले दांत होते हैं, वे इन्हीं पुष्पों के अग्रभाग हैं। तूत में भी मांसल भाग मुख्यत: पुटचक्रों का होता है। इन सब फलों को सोरोसिस (Sorosis) कहते हैं। दूसरे प्रकार के पुष्पव्यूही फल वट तथा अंजीर में मिलते हैं। यहां पुष्पदण्ड ही घड़े के आकार का होता है। इसके भीतरी पृष्ठ पर बहुत छोटे २ फल होते हैं जिनको लोग बीज समझते हैं। बरगद और

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पीपल में ये छोटे २ फल एकीन श्रेणी के होते हैं। इन सब फलों को साइकोनस Syconus कहते हैं। कटहल

नग्नबीजी पौधों में कुछ रचनाओं को फल कहते हैं, यद्यपि वे हमारी परिभाषा के अनुसार फल नहीं हो सकते। पाइन में पुष्पयोनि-वाहक पत्तियां एक लम्बे अक्ष पर पेचदार-क्रम में पायी जाती हैं। प्रत्येक पत्ती के ऊपर दो-दो बीज रहते हैं। कुछ समय के बाद ये ही पत्तियां कड़ी हो जाती हैं, और सब मिलकर शंक्वाकार रचना की सृष्टि करती हैं, जिसे एक फल मान कर कोन (Cone) अथवा स्ट्रोबिलस (Strobilus) के नाम से पुकारते हैं।

बीज :—बीज में प्रायः दो आवरण होते हैं, जिनमें बाहरी को बाह्यबीजावरण (Testa) और भीतरी को अन्तरबीजावरण (Tegment) कहते हैं। गर्भाधान के बाद कहीं-कहीं तीसरा परदा भी ऊपर की ओर बन जाता है, जिसे एरिलस (Arillus) कहते हैं। वाह्यावरण प्रायः चिकना होता है, पर कहीं २ वह भिन्न २ प्रकार के वहिरुद्भेदों से भी युक्त होता है, जिनमें कपास की रूई, मदार तथा कनेर आदि के रोमगुच्छ (Coma) और सहजन के पंख विशेष महत्त्व के हैं। बीजावरण के ऊपर निश्चित स्थानों पर पायी जानेवाली रचनायें नालचिन्ह, सूक्ष्मछिद्र तथा रेफ़ के नाम से प्रसिद्ध हैं। अन्तरावरण बहुत बारीक होता है, और कभी २ वाह्यावरण से पूर्णतः मिल जाने के कारण इसका अभाव सा मालूम होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अधिकतर यह बीज की गुद्दी से मिला रहता है। सुपारी में गुद्दी के भीतर जगह २ पर यह धँसा हुआ रहता है, और काट कर देखने से ऐसा मालूम होता है, कि गुद्दी के भीतर नाड़ियां फैली हुई हैं। एरिसल नाम का तीसरा आवरण डिम्बनाल, सूक्ष्मछिद्र अथवा दोनों भागों से निकला रहता है। जावित्री, जो इसी प्रकार का वहिरुद्‌ मात्र है, नाल चिन्ह तथा सूक्ष्म छिद्र से उत्पन्न होकर सम्पूर्ण बीज को ढके रहती है। कमल में यह प्याले के आकार का होता है, और डिम्ब के आधार से निकलता है। इनके अतिरिक्त बीज प्रायः अन्य छोटी-छोटी रचनाओं से भी युक्त रहता है, जो दोनों सिरो पर अथवा पार्श्व में हो सकती हैं। इन्हें भी साधारणतः एरिल Aril ही करते हैं जैसे एरण्ड में।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद ८

बीजप्रसार (Dispersal of seeds)

अपने समुचित शारीरिक विकास तथा वंशपरम्परा को स्थायी रखने के लिये पौधों को अपना निवास-स्थान समय २ पर बदलना पड़ता है। क्षुद्र श्रेणी के पौधे अपना स्थान परिवर्तन उन छोटे २ सन्तानोत्पादक कोष्ठों द्वारा करते हैं, जिन्हें स्पोर कहते हैं और जो प्रतिकूल परिस्थिति में सुप्तावस्था धारण करने की क्षमता रखते हैं, और बहुत सूक्ष्म होने के कारण अधिक संख्या में उत्पन्न होकर वायु आदि वाह्य साधनों द्वारा अपना दूरदेशीय वितरण भी करा लेते हैं। उच्च श्रेणी के स्थलीय पौधों में कुछ कारणों से स्पोर का स्थान बीज को लेना पड़ता है, जिसमें स्पोर की ही तरह सुषुप्ति तथा वितरण की क्षमता होती है।

पुष्पवाले पौधों में जातिप्रसार के लिये यद्यपि बीज और फल सबसे उत्तम साधन हैं, तथापि उनमें यह कार्य अन्य भागों द्वारा भी होता है। कहीं सन्तानोत्पादक वानस्पतिक भागों द्वारा, कहीं सम्पूर्ण पौधे द्वारा, (विच-ग्रास-जिसमें सम्पूर्ण पौधा हवा में उड़ता हुआ और बीजों को बिखेरता हुआ बहुत दूर तक चला जाता है), कहीं उड़ते हुए पुष्पव्यूह द्वारा, तथा कहीं अङ्कुरित शिशु वनस्पति द्वारा (मानग्रोव) यह कार्य होता है। इन सब में वानस्पतिक सन्तानोत्पादक भागों को

Harshvardhan

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

छोड़कर, शेष सबों का सन्तानोत्पादक-भाग बीज ही होता है। अतः इन सबों में प्रसारित भाग चाहे जो हो, प्रसार बीज का ही कराना अभीष्ट होता है। पहले ही बतलाया गया है, कि अपरिपक्वावस्था में बीज की रक्षा तथा पोषण और परिपक्व होने पर उसका प्रसार करना ही फल का एकमात्र कार्य है। अतः कभी २ अपना प्रसार करके और कभी २ विचित्र स्फोटन के द्वारा वे बीज प्रसार कराते हैं। इसलिये हम कह सकते हैं, कि यद्यपि फलप्रसार और बीजप्रसार दो भिन्न २ क्रियायें हैं, पर बीजप्रसार कराना ही दोनों का एक मात्र अभिप्राय है।

बीज प्रसार की आवश्यकता—बतलाया गया है, कि शारीरिक विकास और जाति प्रसार के लिये बीज-प्रसार होता है। बीजों द्वारा पौधों का जो सन्तानोत्पादन होता है उसके कारण नवजात सन्तानों के बीच एक गहरा जीवन-संग्राम ठन जाना अनिवार्य हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में बीज-प्रसार ही एक ऐसा उपाय है जिससे नवजात सन्तानों की अधिक से अधिक संख्या का अधिक से अधिक मात्रा में कल्याण हो सकता है। बीज-प्रसार की आवश्यकता पर हम दूसरी दृष्टि से विचार कर सकते हैं। जितनी ही अधिक दूरी में बीज प्रसार होता है, उतनी ही अधिक इस बात की सम्भावना बढ़ जाती है, कि पौधे नयी २ परिस्थिति वाले नये नये स्थानों को आबाद कर सकेंगे। सम्भव है कि इस तरह उन्हें बहुत सी ऐसी नयी परिस्थितियां मिल जायं जो उनके लिये बहुत

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ही अनुकूल हों। इसके अतिरिक्त चूंकि अधिकांश जन्तु-संख्या अपना जीवन निर्वाह इन्हीं फलों और वीजों पर करते हैं, इसलिये दूर २ स्थानों में फैल जाने के कारण वे फल और वीज पशुपत्ती तथा मनुष्य आदि की तीदण-दृष्टि से वच भी सकते हैं।

वीजप्रसार की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यदि हम फलों और वीजों की रचनात्मक विभिन्नताओं पर विचार करें तो उनकी उपस्थिति आकस्मिक तथा अनावश्यक कभी न मालूम होगी वलिक नैमित्तिक अर्थात् वीजप्रसार के लिये आवश्यक सिद्ध होगी। कुछ पौधों को छोड़कर प्रायः सभी पौधे वीजप्रसार के लिये वाह्य साधनों की सहायता लेते हैं। जो ऐसा नहीं करते, उन्हें यह कार्य स्वयं करना पड़ता है। अतः फलप्रसार तथा वीजप्रसार कहीं स्वयं पौधों द्वारा होता है, और कहीं वाह्य साधनों की सहायता से होता है।

पौधे द्वारा प्रसार—कुछ पौधों में फल इस प्रकार ज़ोर से फटता है कि उसके वीज बहुत दूर-दूर तक जाकर गिरते हैं। इसमें फल के निर्जीव तन्तुओं के भिन्न २ मात्रा में संकोच करने से स्फोटन होता है। टच-मी-नांट नाम के पौधे में भी ऐसा ही स्फोटन होता है पर यहां स्फोटन फल के सजीव तन्तुओं के टर्गर टेंशन (Turgor tension) के कारण होता है। फल के पकने के समय फल की दीवाल अन्दर के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

व्यवधानों से अलग हो जाती है, और सन्धियों पर उसके टुकड़े जुड़े रहते हैं, अन्यथा वह इन जोड़ों पर इतनी कमजोर होती है कि स्पर्श मात्र से कई टुकड़ों में अलग हो जाती है। जिस समय स्फोटन होता है, फल के खण्ड बड़ी तेजी से घड़ी की स्प्रिंग की तरह लपेट उठते हैं, और बीज दूर-दूर तक फेंका जाते हैं। पाधे द्वारा प्रसार होने का तीसरा बहुत रोचक उदाहरण जिरेनियम में मिलता है। इसके फल में येनिसूत्र द्वारा बना हुआ जो शूक (Awn) होता है वह पहले पांच भागों में बट जाता है। प्रत्येक के आधार पर फल के एकबीजी खण्ड जुड़े रहते हैं। सूखने पर शूक लपेट उठता है, और भीगने पर फैल जाता है। इस प्रकार की गति बार २ हुआ करती है, जिससे बीज ज़मीन पर रेंगते-रेंगते बहुत दूर तक जा सकता है, और अगर कहीं जमीन के दरार में प्रवेश कर जाता है, तो जब तक उसका उद्भेद नहीं होता, तब तक वहीं सुरक्षित होकर पड़ा रहता है। चांगेरी में मांसल एरिल स्थिति-स्थापक (Elastic) होता है और बीज को ढके रहता है। छूने ही से वह बहुत तेज़ी के साथ उलट जाता है और बीज बाहर आ जाते हैं।

बाह्य साधनों द्वारा प्रसार—तीन प्रकार के बाह्य साधन बीजप्रसार में सहायक होते हैं, वायु, जल तथा जन्तु।

वायु द्वारा प्रसार:—इनमें कुछ फल या बीज तो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ऐसे होते हैं जो बहुत छोटे क़द के होने के कारण बहुत समय तक वायु में रह सकते हैं, और दूर २ तक उड़कर चले जाते हैं (Orchids के बीज)। दूसरे प्रकार के वायु द्वारा फैलनेवाले बीज तथा फल रोमगुच्छ. तथा पंखवत रचनाओं से युक्त होते हैं। पंखयुक्त बीज मुचकुन्द, तून तथा सहजन के होते हैं, और पंखयुक्त फल (Samara) चिरविल्व के होते हैं। माधवलता तथा वाराहीकन्द के फल भी कुछ २ पंखवत् फैले रहते हैं। इतना स्मरण रखना होगा, कि पंखयुक्त फल तथा बीज केवल ऊंचे २ वृक्षों तथा भारी २ लताओं के ही होते हैं, क्योंकि ये फल तथा बीज अधिक देर तक वायु में नहीं ठहर सकते, इसलिये ऊंचाई पर होने से अधिक तेज़ हवा के कारण नीचे तक आते २ वे कुछ न कुछ दूर तक चले ही जाते हैं। वायु द्वारा प्रसार कराने के लिये रोम तथा रोमगुच्छ अधिक उपयोगी होते हैं। रोमश तथा रोमगुच्छों से युक्त फल तथा बीज कार्पास, मन्दार तथा गेंदावर्ग में अधिक पाये जाते हैं। कपास और सेमर की रूई, मदार और कनेर का रोमगुच्छ तथा गेंदावर्ग का रोमश पुट फल तथा बीज प्रसार के ही निमित्त होता है। मकोय के पुटचक्र द्वारा बनी हुई वायुपूरित थैली का भी यही अभिप्राय है।

बहुत से पौधों में स्फोटन इस प्रकार होता है, कि बीज स्फोटन के बाद भी तभी निकलते हैं, जब फल वायु में खूब हिलता है जिससे सब बीज एक ही साथ और एक ही स्थान

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पर नहीं गिरने पाते। बीजप्रसार की इस विधि को सेन्सर मेकनिज़्म (Censor Mechanism) कहते हैं। पोस्ता, स्वर्ण-क्षीरी, अतीस तथा सूर्यमुखी (यहां रोमशपुट नहीं होता) में इसी तरह प्रसार होता है।

जल द्वारा प्रसार :—जल द्वारा बहुत कम पौधों का बीजप्रसार होता है। जल में होनेवाले बहुत से पौधों का प्रसार प्रायः जन्तुओं द्वारा होता है। कमल में फलप्रसार जल द्वारा होता है। इसमें स्तम्भक बहुत बड़ा और विरल तन्तुओं का बना होता है, जिसके अन्दर वायु भरी रहती है, जिससे वह पानी के ऊपर तैरता रहता है। बहुत सी जल वनस्पतिओं में बीज वायुपूरित स्थानों से युक्त होने के कारण पानी के ऊपर तैर सकते हैं। वास्तुक, तथा मारिष ऐसे कुछ पौधों के बीज कूड़े कचड़े के साथ अक्सर दूर २ तक निकल जाते हैं, और इसीलिये ये तालावों अथवा नालों के समीप अधिक पाये जाते हैं। कुछ पौधों के बीज कीचड़ के साथ पक्षिओं के पैर में लगकर दूर २ तक चले जाते हैं।

समुद्री प्रवाह के द्वारा जो बीजप्रसार होता है, वह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। समुद्र तट पर होने वाले पौधों के फल तथा बीज प्रायः मोटे और जलाभेद्य आवरणों से इस लिये युक्त होते हैं कि कहीं उनके अन्दर जल प्रवेश करके उनकी उद्भेदशक्ति को न नष्ट कर दे। इन आवरणों में भी प्रायः वायुपूरित विरल तन्तु होते हैं। नारियल, बादाम तथा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सुपारी के ऐसे ही फल होते हैं। नारियल के फल में इपीकार्प क्यूटीनयुक्त और चर्मवत् होता है, मीज़ोकार्प सौत्रिक और हलका होता है; तथा इन्डोकार्प पाषाणवत् कठोर होता है। जलप्रसार के कितना अनुकूल इसका फल है इसे हम स्वयं समझ सकते हैं।

जल द्वारा प्रसार कराने वाले पौधों में मानग्रोव वृक्षों का प्रसार बहुत ही विचित्र और रोचक है। इनके बीज वृक्ष से अलग होने के पहले ही अपना उद्भेद कर लेते हैं। प्रारम्भिक जड़ बढ़कर फल को छेदती हुई बाहर आ जाती है, और भाले के आकार की हो जाती है। कुछ दिनों के बाद यह शिशुवनस्पति वृक्ष से अलग होकर नीचे दलदल ज़मीन में गिर जाती है और सीधी खड़ी रहती है। कुछ समय के बाद उसके पार्श्व से जड़ें निकलकर उसे जमीन में सुदृढ़ कर देती हैं। गिरते समय यह तीर की तरह ऊपर से आती है, और ज़मीन में धंस जाती है। उपर्युक्त बातें तो प्रसार विरोधी हैं, परन्तु यदि हम इन वृक्षों के भौगोलिक विवरण की ओर ध्यान ले जाते हैं, तो मालूम होता है, कि जल के द्वारा इनका प्रसार अवश्य हुआ होगा। अमेरिका के पूर्वी किनारों तथा अफ्रिका के पश्चिमी किनारों पर होने वाली जातियों की समानता और पूर्वी मानग्रोव जातियों की समानता इस बात को सिद्ध करती हैं। फिर हमें पता चलता है कि इन्हीं शिशु वनस्पतिओं द्वारा इन वृक्षों का प्रसार भी होता है। ये दो २

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

माह तक पानी में तैरा करती हैं, और समुद्र प्रवाह के साथ पश्चिमी अफ्रिका से ब्राज़ील तक जा सकती हैं। इन शिशु वनस्पतिओं द्वारा इन वृक्षों का प्रसार होना भी असंगत नहीं है, क्योंकि दलदल की अस्थिर मिट्टी में यदि ऊपर से गिरी हुई सन्तानों का किसी कारण पैर उखड़ गया, अथवा पानी अधिक होने से वे जमीन तक पहुँच ही न सकीं, तो उनका नाश ही हो जाय, यदि कुछ समय तक पानी के ऊपर तैरते रहने की उनमें शक्ति न हो।

जन्तुओं द्वारा प्रसारः—जन्तुओं द्वारा दो तरह से बीज तथा फल प्रसार होता है। मांसल फलों का जन्तु भक्षण करते हैं और अनजान में उनके बीजों का प्रसार भी करते हैं। दूसरे प्रकार के कुछ शुष्क फल ऐसे होते हैं, जो जन्तुओं के शरीर में चिपककर दूर-दूर तक चले जाते हैं। मांसल और स्वादिष्ट फलों की खोज में जन्तु घूमा करते हैं। कहीं २ तो वे फलों को खाकर बीज छोड़ देते हैं, और कहीं कहीं बीजों को भी खा जाते हैं, जो प्रायः उनकी विष्ठा के साथ फिर बाहर आ जाते हैं, क्योंकि इनका प्रायः पाचन नहीं हो सकता। इस तरह से बीजों की उद्भेदशक्ति को भी कोई हानि नहीं पहुंचती, बल्कि कहीं २ तो वह सुधर जाती है (बरगद पीपल)। बहुत से फल खाने में रेचक होते हैं, जिससे बीज अवश्य ही बाहर आ जाते हैं। चूंकि केवल परिपक्व फलों का ही प्रसार अभीष्ट होता है, इसलिये मांसल फल पकने के पहले न तो खाने में अच्छे होते और न तो देखने में ही आकर्षक होते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चिपकनेवाले फल:—बहुत से शुष्क फलों में हुक तथा हुकदार कांटे होते हैं, जिनके द्वारा वे जन्तुओं के बालों में अथवा मनुष्यों के कपड़ों में फँस जाते हैं और अपना प्रसार कर लेते हैं। हुक, हुकदार कांटों तथा इस तरह की पकड़नेवाली रचनाओं की उत्पत्ति भिन्न २ भागों से हुई रहती है। बिछुआ में योनिछत्र अग्र पर टेढ़ा होकर हुक बना लेता है। रोमश पुट के कुछ रोम ही कांटेदार होते हैं। उत्कंटक तथा कांटा चौलाई में वृन्तपत्रों के अग्र भाग तीक्ष्ण होकर कांटे का काम करते हैं। इसी तरह अपामार्ग में परिसवर्ण-खण्ड कांटे की तरह पकड़ने का काम करता है। इनके अतिरिक्त बहुत से फलों का सम्पूर्ण पृष्ठ बहुत सूक्ष्म नोकीली रचनाओं से ढका रहता है, जिससे वे आसानी से कपड़ों में चिपक जाते हैं। शालपर्णी जाति (Desmodium) के पौधों में प्रायः ऐसे फल पाये जाते हैं। लसदार फलों के उदाहरण पुनर्नवा, चित्रक, सैलिया तथा अतीस में मिलते हैं।

बीज तथा फलप्रसार में मनुष्य भी विशेष रूप से भाग लेता है। वह अपने भिन्न २ व्यवसायिक उद्योगों को करता हुआ जान अथवा अनजान में कितनेही बीजों तथा फलों का प्रसार करा देता है। आज भारतवर्ष में कितने ऐसे पौधे कसरत से पैदा हो रहे हैं, जो कुछ समय पहले यहां देखने को नहीं मिलते थे। सिनकोना, नासपाती, पपीता, आलू, तमाखू, मक्का, कुमारी, मिर्च तथा अनानास भारत के आदि निवासी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

न होने पर भी यहां कसरत से पाये जाते हैं। इन पौधों को हम लोगों ने जान बूझ कर अपने यहां स्थान दिया है, पर इनके अतिरिक्त बहुत से ऐसे पौधे भी हैं, जिनके वीज वाहर से आनेवाले अन्नों तथा अन्य पदार्थों के साथ अशुद्धि रूप में आते रहते हैं।

अन्त में हमें उन पौधों की ओर अपना ध्यान ले जाना है, जिनको अपनी जाति तथा वंश की रक्षा के लिये वीज-प्रसार रोकना भी पड़ता है। इन पौधों में वीजप्रसार रोकने का वही अभिप्राय है, जो अन्य पौधों में वीजप्रसार कराने से पूरा होता है। मानग्रोव का उदाहरण हमें पहले ही मिल चुका है। परिस्थिति की विचित्रता से उसे पहले प्रसार विरोधी व्यापार करने पड़ते है। इसमें असफल होने पर उसे फिर प्रसारसहायक व्यापार करने पड़ते हैं। ऐसा ही मनोरञ्जक उदाहरण हमें मूंगफली में मिलता है। यहां गर्भाधान के बाद गर्भाशय ज़मीन के अन्दर चला जाता है, और वहीं फल बनता हैं। चूंकि इनके वायवीय भागों को जानवर वड़े चाव से खाते हैं, इसलिये यह भय रहता है, कि उनके नष्ट हो जाने पर फल नहीं बनेगा, तो इसकी जातिरक्षा नहीं हो सकेगी। परन्तु नहीं, भौमिक शाखाओं के रहने से इनमें फल बन जाता है, और जातिरक्षा हो जाती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद ६

वीजरचना तथा वीजोद्भेद

आवृतवीजी पौधों के जीवन-चक्र का अन्तिम भाग इस अध्याय में पूरा होगा। इनके जीवन-चक्र के जिस स्थान से हमने इनकी रचनाओं पर विचार करना प्रारम्भ किया था उस पर पहुँचने के लिये केवल एक सीढ़ी रह गयी है जिसे हम वीजोद्भेद की सीढ़ी कह सकते हैं। वीजप्रसार की मंज़िल के बाद वीजोद्भेद की मंज़िल रह जाती है, जिसके बाद हमारे सामने एक नये पौधे का नया जीवन-चक्र आ जाता है और पहला पौधा विस्मृत सा हो जाता है। वीजप्रसार के बाद वीज प्रायः कुछ समय तक सुप्तावस्था में पड़े रहते हैं। जब वीजोद्भेद के लिये अनुकूल अवस्थायें मिलती हैं तो वे अपनी वृद्धि फिर प्रारम्भ कर देते हैं। परन्तु ऐसा देखा गया है कि वीजप्रसार के बाद यदि उद्भेदानुकूल अवस्थायें प्राप्त हो जाती हैं तो वीज प्रायः तुरन्त ही वीजोद्भेद नहीं करने लगते। वीजप्रसार और वीजोद्भेद के बीच में उन्हें कुछ समय तक विश्राम लेने की आवश्यकता पड़ती है।

यह विश्रामकाल (Resting period) प्रायः कुछ हफ्तों से लेकर वर्षों तक का होता है। अनुकूल अवस्थाओं के न मिलने पर कुछ वीज तो सैकड़ों वर्षों तक पड़े रहने पर भी वीजोद्भेद के योग्य बने रहते हैं, पर कुछ ऐसे भी होते हैं, जो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

एक हस्ते के बाद ही व्यर्थ हो जाते हैं। विश्रामकाल में बीज प्रायः मिट्टी तथा पत्तिओं के नीचे पड़े रहते हैं। कुछ तो जिरेनियम की तरह ज़मीन की दरारों में चले जाते हैं। मूगफली का फल ही ज़मीन के अन्दर बनता है। अलसी के बीज म्यूसिलेज की सहायता से, तथा अन्य प्रकार के बीज हुक तथा अन्य प्रकार की ऐसी ही पकड़ने वाली रचनाओं के द्वारा ज़मीन को पकड़े रहते हैं।

विश्रामकाल के बीत जाने पर और अनुकूल अवस्थाओं के प्राप्त होने पर उनका बीजोद्भेद प्रारम्भ हो जाता है। इस अध्याय में हमें यही देखना है कि बीजोद्भेद के समय बीज की आन्तरिक रचना कैसी होती है और बीजोद्भेद के समय उसमें कौन-कौन से परिवर्तन होते हैं जिससे हमें पहले की तरह एक नया पौधा मिल जाता है। इसी अभिप्राय से भिन्न-भिन्न प्रकार के बीजों का वर्णन नीचे किया गया है।

चने का बीज:—परीक्षा करने के पहले बीज को कम से कम १२ घण्टे पानी में भिगो देना चाहिये। बीज का एक सिरा कुछ नोकीला और मुड़ा हुआ रहता है, और दूसरा गोल होता है। बीज एक ओर कुछ थोड़ा सा नतोदर मालूम पड़ता है। इसी पृष्ठ पर नोकीले सिरे से दूसरे सिरे तक एक रेखा होती है। नोकीले भाग के समीप इसी रेखा पर सूक्ष्म छिद्र होता है और इसके समीप ही काला नाल-चिन्ह होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बीज का भूरा छिलका बीजावरण होता है। इसे हटा देने पर सम्पूर्ण भाग गर्भ का रह जाता है। इसे यदि दबाया जाय तो यह मोटे मांसल भागों में अलग हो जाता है, जो बीजपत्र (Cotyledons) होते हैं। एक बीजपत्र के भीतरी पृष्ठ पर नोकीले सिरे के समीप एक पोली रचना दिखायी पड़ती है, जो भावी पौधे की अक्ष होती है। इस अक्ष के नोकीले सिरे को, जो बीज के नोकीले भाग की ओर होता है, प्रारम्भिक जड़ (Radicle) कहते हैं। अक्ष के दूसरे सिरे को भ्रूणकलिका (Plumule) कहते हैं। प्रारम्भिक जड़ और भ्रूणकलिका दोनों के बीच में अक्ष से दोनों बीजपत्र जुड़े रहते हैं। शिम्बीवर्ग के प्रायः सब पौधों में बीज इसी तरह के होते हैं।

(२) एरण्ड का बीज :—इसमें बीजावरण बहुत कड़ा होता है। इसके एक सिरे पर सफेद एरिल होता है। बीजावरण के हटा देने पर गर्भ और इन्डोस्पर्म रह जाते हैं। बीजावरण को हटा कर यदि शेष भाग को खड़ेखड़ दो बराबर भागों में बांट दें, तो अन्दर की सब रचनायें दीखने लगती हैं। ऊपर का श्वेत भाग जिसके अन्दर गर्भ छिपा रहता है इन्डोस्पर्म होता है। इसके अन्दर दो पतले पत्रवत् बीजपत्र होते हैं। दोनों बीजपत्रों के बीच में भ्रूणकलिका और एरिल की ओर सिरे पर प्रारम्भिक जड़ होती है। इसमें यही विशेषता है, कि यहां भोज्य-पदार्थ इन्डोस्पर्म नाम के विशेष तन्तु में संचित रहते हैं, और चने में वे बीजपत्रों के अन्दर होते हैं। इन्डोस्पर्म-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

युक्त बीजों को अल्व्यूमिनस (Albuminous) और शेष को एक्स-एलव्यूमिनस बीज कहते हैं।

(३) **सेम का बीज**—बीजावरण के ऊपर लम्बा, पतला, सफेद रेखाकार भाग नाल-चिन्ह का होता है। इसके एक सिरे पर सूक्ष्म छिद्र होता है। बीजावरण के अन्दर सम्पूर्ण भाग गर्भ का होता है, जिसमें प्रारम्भिक जड़, भ्रूण-कालिका तथा दो मोटे बीजपत्र होते हैं। प्रारम्भिक जड़ गर्भ के बाहर बीजावरण के एक पाकेट में पड़ी रहती है। भ्रूणकलिका दोनों बीजपत्रों के बीच में होती है। अन्त का दूसरा सिरा भी पत्रवत् रचनाओं से युक्त होता है।

बीजोद्भेदः—जब बीज को ऐसी मिट्टी में बो देते हैं जहां उद्भेदानुकूल सारी अवस्थायें मौजूद रहती हैं, तो उसमें वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है। सूखा बीज उपयुक्त अवस्थाओं में पड़ने के बाद जितने समय में अंकुरित होता है, उतने समय में उसमें जितने भी परिवर्तन होते हैं सबको मिलाकर बीजोद्भेद कहते हैं। उद्भेद के लिये आर्द्रता, ताप तथा आक्सीजन का होना बहुत आवश्यक है। यदि एक लकड़ी के दोनों सिरों पर और उसके बीच में एक २ सेम के बीज रखकर आलपीन लगा दें और लकड़ी को एक बीकर में (जो उबाले हुए पानी से आधा भरा हुआ है) खड़ी करके इस प्रकार रख दें कि बीचवाला बीज पानी में आधा डूबा हुआ हो, तो कुछ दिन के बाद बीचवाला बीज पूर्णतः अंकुरित हो जायगा, पर दोनों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सिरों पर के बीज अंकुरित न होंगे। बीचवाला बीज तीनों आवश्यक उपकरणों की उपस्थिति में अंकुरित होता है, पर ऊपर के बीज को आर्द्रता तथा नीचे के बीज को आक्सीजन नहीं मिलता। इससे उनका बीजोद्भेद नहीं होता। इस प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि तीनों उपकरण बीजोद्भेद के लिये आवश्यक है।

बीजोद्भेद के प्रारम्भ में प्रारम्भिक जड़ पहले बढ़ती है, क्योंकि सूक्ष्म छिद्र के समीप होने से सूक्ष्म छिद्र से प्रवेश करने वाला जल पहले इसी भाग को मिलता है। इसलिये इसमें वृद्धि होने लगती है, और यह पानी सोखकर फूल भी जाता है और सूक्ष्म छिद्र के समीप बीजावरण को तोड़ कर बाहर निकल आता है। बीज चाहे जिस तरह रखा हो, सबसे पहले निकला हुआ प्रारम्भिक जड़ का अंकुर नीचे की ओर बढ़ने लगता है और ज़मीन के अन्दर क्रमशः फैल जाता है।

इसके बाद की घटनायें भिन्न-भिन्न प्रकार के बीजों में भिन्न-भिन्न तरह से होती हैं। अल्ब्यूमिनस बीजों में कम से कम एक बीजपत्र प्रायः जमीन के अन्दर रह जाता है और इन्डोस्पर्म से भोज्यपदार्थों का शोषण करके वृद्धिशील भागों को देता है। इस प्रकार के बीजोद्भेद को हाइपोजियल (Hypogeal) कहते हैं। प्रायः सभी एकदली बीजों में यही होता है। द्विदली बीजों में भी जो बड़े होते हैं और जिनके बीजपत्रों में पर्याप्त मात्रा में भोज्य पदार्थ संचित रहते हैं ऐसा ही बीजोद्भेद होता है जैसे बंगाली चना (जिसका वर्णन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ऊपर दिया गया है), मटर तथा आम में। दूसरे प्रकार के द्विदली बीजों में, जहां खाद्य पदार्थ पर्याप्त मात्रा में नहीं होते, यह आवश्यक होता है कि उनके बीजपत्र ऊपर आकर साधारण पत्तिओं की तरह नये खाद्य पदार्थ तैयार करें। इसलिये इन बीजों के खाद्य पदार्थ चाहे बीजपत्रों में हों या इन्डोस्पर्म में, इनके बीजपत्र बीजोद्भेद के समय ऊपर आ जाते हैं। ऐसा बीजोद्भेद इपीजियल (Epigeal) कहा जाता है। एरंड तथा सेम में यही होता है।

सेम में प्रारम्भिक जड़ के निकलने के बाद, प्रारम्भिक जड़ के बाद का अक्ष का भाग बड़े वेग से बढ़ने लगता है। चूंकि इस समय तक बीजपत्र अन्दर ही बन्द रहते हैं, इसलिये यह बढ़ता हुआ भाग जिसे हाइपोकाटिल (Hypocotyl) कहते हैं, धनुषाकार हो जाता है। अधिक वृद्धि हो जानेपर इसका इतना ज़ोर पड़ता है कि बीजपत्र भ्रूणकलिका के साथ ज़मीन के बाहर आ जाते हैं, और हाइपोकाटिल सीधा हो जाता है। बीजपत्र हरे होकर साधारण पत्तिओं का काम करने लगते हैं। एरण्ड में बीजपत्र पहले इन्डोस्पर्म के अन्दर संचित पदार्थों का शोषण करके मोटे होते हैं, और फिर बाहर निकलते हैं।

मक्का का बीज—एकदली पौधों में बीजरचना तथा बीजोद्भेद जानने के लिये मक्का के बीज का उदाहरण पर्याप्त होता है। जिन मक्के के दानों को हम बीज समझते हैं वे वस्तुतः फल होते हैं। ऊपर का पर्दा पेरिकार्प और बीजावरण दोनों के मिलने से बना होता है। दाने के एक सिरे पर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

थोड़ा सा स्थान आयताकार और हलके रंग का होता है। ठीक इसके नीचे परदे के अन्दर गर्भ पड़ा रहता है। यदि दाने को खड़े खड़ और इस आयताकार भाग के बीचोबीच काटकर दो भागों में अलग कर दिया जाय तो सब रचनायें स्पष्ट रूप से दीखने लगती हैं। यदि दाने के कटे हुए पृष्ठ पर आयोडीन घोल छोड़ दिया जाय तो वह अधिकांश नीला हो जाता है जिससे उसके अन्दर स्टार्च की उपस्थिति सिद्ध होती है। स्टार्चयुक्त सम्पूर्ण भाग इन्डोस्पर्म का होता है। इसकी सबसे वाहरी कोष्ठतह आयोडीन घोल में पीली हो जाती है क्योंकि इसके अन्दर प्रोटीन होता है। इस कोष्ठतह को एल्यूरोन तह कहते हैं। इन्डोस्पर्म से लगा हुआ दूसरी ओर एक बीजपत्र होता है जिसे स्कूटेलम (Scutellum) कहते हैं। इससे लगा हुआ बाहर की ओर गर्भ का भाग होता है जिसमें प्रारम्भिक जड़ तथा भ्रूणकलिका होती है। ये दोनों भाग काफी बड़े होते हैं और इनके अग्रभाग कोषों से ढके रहते हैं। बीजोद्भेद के समय स्कूटेलम अन्दर ही रहकर इन्डोस्पर्म का शोषण करता है। इसकी बाहरी तह जिसे इपीथीलियल (Epithelial) तह कहते हैं, एक विश्लेषक रस (Diastase) का निर्माण करती हैं जिससे स्टार्च शर्करा में बदल जाता है और वृद्धिशील भागों में घोल रूप में पहुंचता है।

पहले प्रारम्भिक जड़ बीज के परदे तथा अपने कोष को फाड़ कर बाहर निकलती है और ज़मीन के अन्दर चली जाती है। इस जड़ का अधिक विकास नहीं होता, इसलिये तने के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आधार भाग से अनियमित जड़ें निकल कर पौधे का काम चलाती हैं। अनियमित जड़ों के निकलने के स्थान गर्भ में हो देखे जा सकते हैं। गर्भकलिका बढ़कर ज़मीन के ऊपर आती है और कोष को फाड़ कर शीघ्र पहली पत्ती निकल आती है। यहां गर्भकलिका का अग्र नोकीला होता है, इसलिये हाइपो-काटिल की तरह इसे धनुषाकार नहीं होना पड़ता।

एकदली पौधों में प्रायः इसी तरह बीजोद्भेद होता है। प्याज तथा खजूर में कुछ भिन्नता देखने में आती है। इनमें गर्भकलिका पहले एक पोली नलिकाकार रचना के अन्दर बन्द होकर बाहर आती है। यह नलिककार रचना मुड़कर घुटने के शक्ल की हो जाती है और तब पहली पत्ती उसके मोड़ पर प्रगट होती है।

चूंकि बहुत से बीज बहुत कठोर बीजावरण अथवा इन्डो-कार्प से ढके रहते हैं इसलिये इन कठोर आवरणों को तोड़कर बाहर निकलना प्रारम्भिक जड़ ऐसे कोमल भाग के लिये असम्भव सा प्रतीत होता है। आम तथा बेर आदि में बीज दो ओर की दो रेखाओं पर कमज़ोर होते हैं इसलिये बीज अथवा गुठली बीजोद्भेद के समय दो भागों में बट जाती है और प्रारम्भिक जड़ के निकलने में आसानी होती है। खजूर में एक स्थान पर एक गोलाई में पाये जानेवाले कोष्ठ कमज़ोर होते हैं और बीजोद्भेद के समय वहीं से प्रारम्भिक जड़ निकलती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

द्वितीय भाग

आन्तरिक रचना (Internal morphology)

परिच्छेद १

कोष्ठ रचना ।

जिस प्रकार ईंटों की बनी हुई मीनार की रचना में एक ईंट रचना की सबसे छोटी ईकाई है उसी प्रकार सजीव पदार्थों की रचना के सबसे छोटे एकाङ्क (Unit) को कोष्ठ (Cell) कहते हैं। वानस्पतिक कोष्ठ प्रायः एक कोष्ठावरण से घिरा रहता है पर कुछ क्षुद्र वनस्पतिओं का शरीर सर्वदा अथवा सन्तानोत्पत्ति के समय आवरण हीन कोष्ठ का ही बना होता है। अतः कोष्ठ का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग वह है जो कोष्ठावरण के अतिरिक्त है। इस भाग को कोष्ठांग (Cell body) कहते हैं। इसके दो भाग होते हैं जीवित कोष्ठांग (Protop last) और अजीवित कोष्ठांग (Inclusions of the protoplast)। कोष्ठ के अन्दर प्रायः एक गाढ़ा द्रव पदार्थ होता है जिसे जीवनमूल (Proto. plasm) कहते हैं। इसके अतिरिक्त जीवित कोष्ठांग के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट जीवनमूलीय रचनायें होती हैं जिन पर आगे विचार किया जायगा। इस तरह अधिकतर कोष्ठों के तीन मुख्य भाग होते हैं, कोष्ठावरण, जीवित कोष्ठांग और अजीवित कोष्ठांग ।

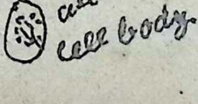

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कोष्ठावरण :—यह प्रायः एक ऐसे पदार्थ से बना रहता है जिसे सेलुलोज (Cellulose) कहते हैं। यह कार्बो-हाइड्रेट श्रेणी का पदार्थ है। इसके साथ प्रायः सर्वदा उसी श्रेणी के दूसरे पदार्थ भी पाये जाते हैं जिन्हें अर्ध-सेलुलोज़ तथा पेण्टोज़न कहते हैं। कोष्ठ के जीवनकाल में कोष्ठावरण की रासायनिक रचना में प्रायः बहुत परिवर्तन हो जाता है। ये परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं। कभी २ तो कोष्ठावरण के प्रारम्भिक पदार्थ ही दूसरे पदार्थों में बदल जाते हैं जिन्हें क्यूटीन (Cutin) लिग्निन (Lignin), सुवेरिन (Suberin), तथा म्यूसिलेज (Mucilage) कहते हैं। और कभी २ बाहर से कुछ पदार्थ आकर कोष्ठावरण में मिल जाते हैं।

क्यूटिन प्रायः इपीडर्मिस (बाह्यचर्म) के बाहरी कोष्ठावरणों पर पाया जाता है। यह मोम की तरह कोष्ठ को जलाभेद्य तथा मजबूत बना देता है। पत्तिओं के पृष्ठ पर होने से यह उन्हें जल त्याग से बचाता है। सुवेरीन भी मोम तथा वसा (Fat) की तरह होता है और कार्क तन्तु के कोष्ठावरणों में पाया जाता है। इससे भी कोष्ठावरण जलाभेद्य हो जाता है। लिग्निन प्रायः काष्ठ तथा स्कलेरेनकाइमा के तन्तुओं में पाया जाता है। इसके कारण कोष्ठावरण बहुत दृढ़ हो जाते हैं। बहुत से बीजों में बीजावरण की बाहरी कोष्ठतह म्यूसिलेज युक्त होती है (अतसी), और बहुत सी कलिकाओं के वल्क पत्रों में बाह्य तन्तु भी म्यूसिलेज युक्त होते हैं जिन में म्यूसिलेज

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के कारण जलशोषण तथा जलग्राहकता की शक्तियां विशेष रूप से विद्यमान रहती हैं। शुष्क परिस्थिति में संचित जलकोष की रक्षा में यह विशेष उपयोगी होता है। म्यूसिलेज युक्त बीजावरण होने के कारण बहुत से बीज मिट्टी से चिपके रहते हैं।

बाहर से आने वाले जिन रासायनिक पदार्थों के कारण कोष्ठावरण में रासायनिक परिवर्तन होता है उनमें कैल्शियम कार्बोनेट तथा आक्जलेट और सिलिका मुख्य हैं। सिलिका गोधूम वर्ग के पौधों में इपीडर्मिस के कोष्ठावरणों में अधिक पाया जाता है। शेष दोनों पदार्थ प्रायः स्फटिक रूप में कहीं कहीं कोष्ठावरणों में पाये जाते हैं। रबर की पत्तिओं में कोष्ठा-वरण एक स्थान पर भीतरकी ओर निकलकर नालवत् हो जाता है और इस नाल के सिरे पर कैल्शियम कार्बोनेट के स्फटिकों का क्रमशः एक गुच्छा सा बन जाता है। इस रचना को सिस्टोलिथ (Cystolith) कहते हैं।

कोष्ठावरण में अनेक प्रकार के आकृतिक परिवर्तन भी होते हैं जिनके कारण एक ही तरह के साधारण रचना वाले नवजात कोष्ठों से अनेक आकार प्रकार के कोष्ठ बन जाते हैं। ये परिवर्तन भी दो तरह के होते हैं। एक में केवल कोष्ठावरण के क्षेत्र फल में और दूसरे में केवल उसकी मोटाई में वृद्धि होती है।

कोष्ठावरण के क्षेत्रफल में वृद्धि—ऐसी वृद्धि सार्व-

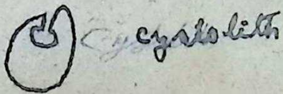

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

त्रिक अथवा केवल स्थानीय (Local) होती है। पहली प्रकार की वृद्धि से कोष्ठ क़द में बढ़ जाता है पर उसका आकार नहीं बदलता। स्थानीय वृद्धि में आकार परिवर्तन होता है। यदि किसी कोष्ठ के केवल दो विपरीत सिरों पर ही उन्हीं दोनों दिशाओं में वृद्धि हो तो कोष्ठ बहुत लम्बा और नोकीला हो जाता है। ऐसे कोष्ठ को प्रोसेनकाइमेटस् (Prosenchymatous) कोष्ठ कहते हैं। अन्य प्रकार के सब कोष्ठ जिनकी लम्बाई चौड़ाई में अधिक अन्तर नहीं होता पैरेनकाइमेटस् (Parenchymatous) कहे जाते हैं। सब जगह वृद्धि होने पर भी यदि कोष्ठावरण कुछ स्थानों पर औरों की अपेक्षा अधिक बढ़ सकता है तो उन स्थानों पर कोष्ठावरण से लम्बे बहिरुद्भेद निकल आते हैं और कोष्ठ को रश्म्याकार (Stellate) बना देते हैं। इसी तरह यदि सार्वत्रिक वृद्धि में समीपवर्ती कोष्ठ बाधक हो जाते हैं तो भुजाकार कोष्ठों का आविर्भाव होता है। क्षेत्रफल में वृद्धि सब जगह समान अथवा असमान होने से अनेक प्रकार के कोष्ट बन जाते हैं जो आकार में अंडाकार, नलिकाकार, आयताकार, त्रिपार्श्वाकार (Prismatic) तथा अन्य प्रकार के हो सक्ते हैं।

कोष्टावरण की मोटाई में वृद्धि—मोटाई में भी वृद्धि सार्वत्रिक (Uniform) अथवा स्थानीय होती है पर पहली प्रकार की वृद्धि बहुत कम होती है। स्थानीय वृद्धि कई तरह की होती है। जब स्थूलकारी पदार्थ कोष्ठावरण

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के भीतरी पृष्ठ पर बहुत से चक्रों में जमा होते हैं तो इस प्रकार की वृद्धि को चक्राकार (Annular) कहते हैं। यदि दीवाल पर एक अथवा कई पेचदार रेखाओं पर कोष्ठावरण मोटा हो गया हो तो ऐसी वृद्धि को पेचदार (Spiral) कहेंगे। यदि ऐसी पेचदार रेखायें बहुत अधिक हो जांय और सब परस्पर मिलकर कोष्टावरण पर पाश या जाल के सदृश रचना बना लें तो ऐसी वृद्धि को पाशवत् (Reticulate) वृद्धि कहेंगे। इसमें भी अधिकता होने से ऐसी अवस्था उपस्थित हो जायगी कि कुछ विन्दुओं पर हो कोष्ठावरण पतला और प्रारम्भिक मोटाई का रह जायगा। ऐसी हालत में पतले स्थान विन्दुओं की तरह मालूम होने लगते हैं। इस प्रकार की वृद्धि को विन्दुमय (Pitted) वृद्धि कहते हैं। इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि उपर्युक्त सब प्रकार की वृद्धिओं में केवल मात्रा का अन्तर है। अन्तिम प्रकार की वृद्धि में पतले भाग गोले, आयताकार, रेखाकार तथा टेकुआ के आकार के हो सकते हैं। वे मोटी दीवालों में छिद्र, नतपृष्ठ, तथा नलिकाओं की तरह मालूम होते हैं। जब कोष्ठावरण पर मोटे रेखाकार भाग सीढ़ी के डंडों की तरह मालूम होते हैं तो वहां वृद्धि स्केलरीफार्म (Scalariform) कही जाती है।

बहुत से कोष्ठावरणों पर स्थूलकारी पदार्थ तहवार जमा होता जाता है यहां तक कि कहीं कहीं कोष्ठ लगभग पूरा पूरा दीवाल से ही घिर जाता है। ऐसी वृद्धि को तहवार

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वृद्धि (Stratified) कहते हैं। इन कोष्ठों में यदि पतले विन्दुवत् भाग रह जाते हैं तो वे नलिकाकार मालूम होते हैं। ऐसे कोष्ठ प्रायः स्क्लेरेनकाइमा तंतु के होते हैं। इस तंतु में कभी-कभी एक और विशेष प्रकार के कोष्ठ होते हैं, जो आकार में पैरनेकाइमेटस होते हैं और उनके दीवाल के अन्दर की नलिकायें परस्पर मिली रहती हैं। ऐसे कोष्ठों को पाषाण-कोष्ठ (Stone-cells) कहते हैं।

उन्नत विन्दु (Bordered pit)—विन्दुमय-वृद्धि में विन्दुवत् भागों का यह एक रूपान्तर मात्र है। यहां कोष्ठावरण के गोले विन्दुवत् पतले भागों के चारों ओर से स्थूल-कारी पदार्थ जमा होते-होते एक गुम्बज के आकार की रचना तैयार कर लेता है जो शीर्ष पर खुला रहता है। इसीके सामने दूसरी ओर भी समीपवाले कोष्ठ में इसी तरह की रचना तैयार हो जाती है अर्थात् दो कोष्ठों के बीच वाले कोष्टावरण में दोनों ओर आमने सामने दो गुम्बज के आकार की रचनायें बन जाती है जो शीर्ष पर खुली रहती हैं। दोनों कोष्ठों के बीच की प्रारम्भिक दीवाल भी प्रायः बीच में मोटी हो जाती है। इस मोटे भाग को टोरस (Torus) कहते हैं। प्रायः पूर्ण विकसित अवस्था में प्रारम्भिक दीवाल एक ओर को हट कर उधर के छिद्र को बन्द कर देती है अथवा कभी-कभी बिल्कुल नष्ट भी हो जाती है। ऐसे उन्नत विन्दु प्रायः आवृत बीजी तथा नग्नबीजी पौधों में काष्ट तंतु के कोष्टों पर पाये

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जाते हैं। विन्दुमय वृद्धि में कोष्टों के विन्दुवत पतले स्थान आमने सामने होते है और समीपवर्ती कोष्टों के बीच सम्बन्ध स्थापित करनेवाले जीवन मूलीय सूत्र इन्हीं स्थानों से होकर गुज़रते हैं।

जीवित कोष्टांग—जीवन मूलीय पदार्थ सर्वत्र एक तरह का नहीं होता बल्कि उसमें भी रचनात्मक जटिलता देखने में आती है। प्रत्येक नवजात कोष्ट में प्रायः एक गोली रचना होती है जिसे न्यूक्लियस (Nucleus) कहते हैं। कोष्टावरण और न्यूक्लियस के बीच का स्थान एक कणमय द्रव पदार्थ से भरा रहता है जिसे कोष्ट जीवनमूल (Cytoplasm) कहते हैं। इसमें भी कई रंगहीन चमकीले भाग जो प्रायः न्यूक्लियस के चारों ओर होते हैं पाये जाते हैं। इन्हें वर्ण-जनक (Chromatophores) कहते हैं। ये ही तीनों मिलकर जीवित कोष्टांग बनाते हैं

जीवन मूल—यह स्वच्छ, न्यूनाधिक पारदर्शी, किंचित कणमय (Granular) गाढ़ेद्रव के सदृश होता है। कर्मण्य अवस्था में इसमें जल की मात्रा अधिक और अकर्मण्य अवस्था में कम होती है। जल का अंश अधिक होने पर यह जिले-टीन की तरह द्रव और कम होनेपर वीज के जीवनमूल की तरह ठोस होता है। जीवन मूल की भौतिक अवस्था तैल मिश्रित जल की सी होती है जिसे इमल्सायड (Emulsiod) अवस्था कहते हैं। यह कणमय इसलिये मालूम होता है कि

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इसमें उन रासायनिक पदार्थों के सूक्ष्म बूंद या कण बिखरे रहते हैं जो जीवनमूल के बनने में भाग लेते हैं अथवा उसके विश्लेषण से प्राप्त होते हैं। इनमे प्रोटीन, कार्बोहाइडे्ट, वसा तथा फर्मेन्ट सभी होते हैं। रासायनिक दृष्टिसे जीवनमूल कोई एक पदार्थ नहीं होता बल्कि बहुत से रासायनिक यौगिकों के मिश्रण से बना होता है जो निरन्तर रासायनिक परिवर्तन किया करते हैं और जिनके रासायनिक परिवर्तनों के फल स्वरूप अनेकों जीवन सम्बन्धी क्रियायें होती रहतो हैं। उपर्युक्त रासायनिक यौगिकों में सबसे प्रधान प्रोटीड (Protied) होते हैं। इनके अतिरिक्त फर्मेंट, कार्बोहाइडे्ट, वसा तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के नत्र जनीय यौगिक होते हैं। जीवनमूल के रासायनिक विश्लेषण से कार्बन, आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, सल्फर और कभी-कभी फास्फोरस तत्व मिलते हैं।

जीवनमूल प्रायः ५०° तापक्रम के ऊपर जीवित नहीं रह सकता। एल्कोहल तथा आम्लिक घोलों में भी इसकी मृत्यु हो जाती है। रासायनिक क्रियाओं में यह क्षारिक अथवा उदासीन होता है आम्लिक कभी नहीं होता। जीवनमूल द्वारा सम्पादित होने वाली प्रधान क्रियायें निम्नलिखित हैं—

(१) शोषण और मलत्याग (Absorption & excretion)—शोषण के द्वारा जीवनमूल बाहर से उन पदार्थों को घोल रूप में प्राप्त करता है जो उसकी वृद्धि के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लिए आवश्यक होते हैं। मलत्याग में यह अन्दर के अनावश्यक पदार्थों का त्याग करता है।

(२) पदार्थनिर्माण तथा पदार्थविनाश की क्रियायें—जीवनमूल आत्मनिर्माता तथा आत्मसंचालक कहा जाता है क्योंकि शोषण द्वारा प्राप्त किये हुए पदार्थों को लेकर यह अपना ही निर्माण करता है और भिन्न-भिन्न क्रियाओं के सम्पादन के लिये उन्हीं पदार्थों के विश्लेषण से शक्ति प्राप्त करता है।

(३) वृद्धि तथा सन्तानोत्पत्ति—शोषण तथा पदार्थनिर्माण सम्बन्धी क्रियाओं से इसकी वृद्धि होती है। इसी की वृद्धि से पौधा भी बढ़ता है। सन्तानोत्पत्ति को भी एक प्रकार की वृद्धि ही समझना चाहिये।

(४) गतिः—जीवनमूल में गति करने की शक्ति होती है और यह प्रायः गति किया करता है। नग्न जीवनमूल में गति करने की शक्ति विशेष रूप से पाई जाती है जैसे अमीवा अपनी गति से मिथ्यापाद बनाता और नष्ट करता हुआ अभीष्ट स्थानों में भ्रमण करता रहता है। आवरणयुक्त जीवनमूल में यह शक्ति यद्यपि कम और अस्पष्ट होती है तब भी इसका सर्वथा अभाव नहीं होता। कोष्टावरण के अन्दर जीवनमूल की गति दो प्रकार की होती है। जब कोष्टावरण के किनारे-किनारे जीवनमूल एक निश्चित

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दिशा में चक्कर लगाया करता है तो उसकी इस गति को चक्रगति (Rotation) कहते हैं। इलोडिया और वैलिस्नेरिया नामक जलवनस्पतिओं में ऐसी गति होती है। जब धाराप्रवाह की दिशा बदलती रहती है और उसका निश्चित मार्ग नहीं होता तो ऐसी गति को वक्रगति (Circulation) कहते हैं। ट्रेड्सकैंशिया के पुष्पलिंगों पर होनेवाले रोमों में वक्रगति बहुत स्पष्ट मालूम होती है। यहां धारा कोष्टावरण के किनारे-किनारे तथा बीच के, किनारे से निकले हुए जीवनमूलीय सूत्रों में भी बहती रहती है। जीवनमूल के कण, न्यूक्लियस, तथा वर्णधारकों (Plastids) के स्थानान्तरित होने से चक्रगति का, और जीवनमूलीय सूत्रों के प्रतिक्षण अपनी स्थिति बदलते रहने से वक्रगति का ज्ञान होता है।

(५) उपर्युक्त कार्यों का कारण जीवन मूल में उत्तेजितत्व शक्ति का होना है। ताप, प्रकाश, रासायनिक पदार्थ तथा अन्य वाह्य उत्तेजनाओं से उपर्युक्त कार्यों पर जो प्रभाव पड़ता है वह इसी उत्तेजितत्व शक्ति (Irritability) के द्वारा होता है। जैसे लाजवन्ती की पत्तिओं की गतिपर स्पर्श तथा ताप का जो प्रभाव पड़ता है सबको विदित है।

कोष्ट-जीवन-मूल (Cytoplasm)— नवजात कोष्ठों में जीवनमूल सम्पूर्ण कोष्ठ को भरे रहता है परन्तु पुराने होने पर जब कोष्ठ क्षेत्रफल में बहुत अधिक बढ़ जाता है तो कोष्ठ के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अन्दर खात बन जाते हैं। इनमें रासायनिक पदार्थों का घोल भरा रहता है जिसे कोष्ठरस (Cell-sap) कहते हैं। नवजात कोष्ठों में कोष्ठरस बहुत कम होता है और छोटी-छोटी बूंदों के रूप में जीवनमूल में बिखरा रहता है। कोष्ठवृद्धि के साथ ये बूंदे बहुत अधिक हो जाने से आपस में मिल जाती हैं और खातों के रूप में दिखाई देती हैं। कोष्ठखात के बन जाने पर कोष्ठ-जीवनमूल कोष्ठावरण के किनारे आ जाता है और बीच में कोष्ठरस से भरा हुआ खात रहता है। बहुत से कोष्टों में जीवनमूल की विशिष्ट रचनायें (न्यूक्लियस आदि) कोष्ठा-वरण के पास ही जीवनमूल में पड़ी रहती हैं पर बहुतों में न्यूक्लियस खात के बीच में रहता है और जीवनमूलीय सूत्रों द्वारा किनारेके जीवनमूल से सम्बन्धित रहता है। ऐसी अवस्था में बड़ा खात उन जीवनमूलीय सूत्रों द्वारा कई छोटे-छोटे खातों में विभक्त हो जाता है।

कोष्ट जीवनमूल एक कोष्ट में भी सर्वत्र समान रचना का नहीं होता। कोष्टावरण तथा खातो से लगा हुआ भाग अधिक दृढ़ और प्रायः कणहीन होता है। यह धारीय जीवन-मूल (Ectoplasm) बहुत महत्वपूर्ण कार्य करता है। रासा-यनिक पदार्थों के अन्तर्कोष्ठीय स्थानान्तर, किसी कोष्ठ में उनके प्रवेश, तथा उससे बाहर जाने की क्रिया का नियमन इसी धारीय जीवनमूल के द्वारा होता है। यह अर्धभेद्य परदे की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तरह जल के लिये पूर्णतः भेद्य, कुछ घुले हुए पदार्थों के लिये अभेद्य, और कुछ के लिये कष्टभेद्य होता है ।

न्यूक्लियस—यह प्रायः गोला अंडाकार या अर्ध-चन्द्रकार होता है। कहीं कहीं यह लम्बा भी हो जाता है। नवीन कोष्ठों में बड़ा पर पुरानों में छोटा मालूम होता है। प्रत्येक कोष्ट में प्रायः एक ही न्यूक्लियस होता है पर बहुत सी क्षुद्र वनस्पतिओं के कोष्ठों में ये एक से अधिक भी होते हैं। यह एक पतले परदे से घिरा रहता है जिसके अन्दर एक अर्ध-तरल पदार्थ और इसमें फैली हुई क्रोमेटीनपाश नाम को पाश-वत् रचना होती है। पाश के सूत्र लिनिन (Linin) नाम के पदार्थ से बने होते हैं और उनपर क्रोमेटीन (Chromatin) के बने हुये बहुत से कण अथवा डिस्क पाये जाते हैं जो बहुत ही अच्छे वर्णधारक होते हैं। सूत्रों के बीच-बीच में प्रायः एक या अधिक अन्य वर्णधारक रचनायें भी पाई जाती हैं जिन्हें सेन्ट्रोस्फीयर (Centrosphere) कहते हैं । ये रचनायें जान्तव कोष्ठों में हमेशा पाई जाती हैं और कोष्ट के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण कार्य करती हैं पर वानस्पतिक कोष्ट के लिए ये अनावश्यक मानी जाती हैं अतः कम पाई जाती हैं। यद्यपि न्यूक्लियस को बहुत से लोग जीवन सम्बन्धी क्रियाओं का नियामक मानते हैं पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इसका उन क्रियाओं से किस तरह का सम्बध है

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हां, इतना तो निर्विवाद है कि पैत्रिक गुणों का सन्तान में संक्रमण इसी रचना के द्वारा होता है।

वर्णजनक—इनकी भी रचना प्रायः न्यूक्लियस के समान हो होती है। इनमें भी एक अर्धतरल पदार्थ और पाश्चात् रचना होती है। इनमें कुछ रंगहीन और कुछ रंगयुक्त होते हैं। नवीन कोष्ठों में ये प्रायः न्यूक्लियस के चारों ओर पाये जाते हैं और प्रारम्भ में सब रंगहोन, छोटे, पारदर्शक और गोले तथा अन्य आकार के होते हैं। पुराने कोष्ठों में ये भिन्न-भिन्न रंग के हो जाते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं।

ल्यूकोप्लास्ट (**Leucoplast**)—पौधों के उन भागों में जहां प्रकाश नहीं पहुँचता, ये पाये जाते हैं। ये रंगहीन गोले तथा अन्य आकार के होते हैं। ये प्रायः उन तन्तुओं में होते हैं जो स्टार्च का संचय करते हैं क्योंकि इनका मुख्य कार्य घुलनशील शर्करा को संचयार्थ अघुलनशील स्टार्च में बदल देने का होता है। इसीलिये ये स्टार्चयुक्त बीज, आलू तथा शकरकन्द आदि में पाये जाते हैं। प्रकाश पाने पर ये हरित वर्णवाहकों में बदल जाते हैं।

(२) **हरित वर्णवाहक** (Chloroplast)—पत्तियों तथा प्रकाश में होने वाले वाह्य तंतुओं में ये पाये जाते हैं। ये भी शर्करा को स्टार्च में बदल देते हैं। इसके अतिरिक्त जल और कार्बनडाइ आक्साइड लेकर ये प्रकाश में कार्बोहाइड्रेट भी बनाते हैं। ये अधिकतर गोले होते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(३) क्रोमोप्लास्ट (Chromoplast)—प्रकाश में होने वाले भागों में अन्य प्रकार के वर्णवाहक भी होते हैं। फूलों और फलों में लाल, पीले तथा अन्य रंग इन्हीं के कारण होते हैं। हरितवर्णवाहक भी क्रोमोप्लास्ट में बदल जाया करते हैं। पतझड़ के समय पत्तियों में पीला रंग इसी तरह आता है।

वर्णवाहकों का रंग प्रायः उन रासायनिक पदार्थों के कारण होता है जिन्हें वर्णमूल (Pigments) कहते हैं। हरित वर्णवाहक के वर्णमूल अल्कोहाल से खींचे जाते हैं और परीक्षा करने पर वे चार प्रकार के सिद्ध होते हैं। इन्हें हरितवर्णमूल अ (Chlorophyll A) हरितवर्णमूल ब (Chlorophyll B) पीतवर्णमूल अ (Carotin) और पीतवर्णमूल ब (Xanthophyll) कहते हैं। हरितवर्णमूलों की अधिकता से हरितवर्णवाहक हरे मालूम होते हैं।

जीवित कोष्ठांग के भिन्न-भिन्न भागों की उत्पत्ति—इसके कोष्ठजीवनमूल, न्यूक्लियस तथा वर्णजनक तीनों भागों की उत्पत्ति स्वतन्त्र नहीं होती। ये अपनी वृद्धि करके केवल मात्रा अथवा संख्या में बढ़ सकते हैं। इनके विभक्त होने से ही इनकी संख्या वृद्धि होती है। इस सम्बन्ध में इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि किसी कोष्ठ के न्यूक्लियस के विभक्त होने पर प्रायः उसका जीवनमूल भी विभक्त होने के लिये उत्तेजित हो उठता है। दोनों का विभा-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जन एक दूसरे से बहुत सम्बन्ध रखता है जिसका स्पष्टीकरण आगे के पृष्ठों में किया जायगा।

अजीवित कोष्ठांग—जीवनमूल में होनेवाली रासायनिक क्रियाओं से जो रासायनिक पदार्थ प्राप्त होते हैं वे पहले सम्भवतः उन छोटी छोटी बूंदों के रूप में प्रगट होते हैं जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है। ये ही आगे चलकर द्रव तथा ठोस रूप में खानों में अथवा सम्पूर्ण जीवित कोष्ठांग में अनियमित रूप से बिखरे पड़े रहते हैं। पौधों के लिए उनकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर हम उन्हें तीन श्रेणियों में रखते हैं।

(१) खाद्योपयोगी (Plastic substances)—इनमें कुछ घोल रूप में और कुछ ठोस रूप में पाये जाते हैं। इनमें कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें पौधे ठोस रूप में भविष्य के लिये रख छोड़ते हैं जैसे स्टार्च, प्रोटीड, वसा इत्यादि। इनके संचयार्थ पौधों में कन्द तथा बीज आदि नाम के संचयतंतुयुक्त अंग पाये जाते हैं। घोल अवस्था में पाये जाने वाले पदार्थों में शर्करा, एमाइड (Amides) तथा एमाइड की तरह के अन्यत्रजनीय यौगिक मुख्य हैं।

(२) खाद्यानुपयोगी (Secretions)—इस श्रेणी में ऐसे पदार्थ हैं जो खाद्योपयोगी न होने पर भी दूसरे रूप में उपयोगी होते हैं। जैसे फर्मेन्ट नाम के पदार्थ रासायनिक क्रियाओं में प्रवर्तक का काम करते हैं।

(३) अनुपयोगी (Excretions)— इस श्रेणी के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पदार्थ पौधों के लिये सर्वथा अनुपयोगी समझे जाते हैं इस लिये मल की तरह वे त्याज्य होते हैं। चूंकि मलत्याग के लिये पौधों में विशेष अंग नहीं होते इसलिये ये पदार्थ पौधों के प्रायः निश्चित भागों में अलग करके भेज दिये जाते हैं। वृक्षों की छालों तथा पत्तियों में वे जमा होते रहते हैं और समय २ पर उन्हीं के साथ पौधे से अलग कर दिये जाते हैं। इनमें एल्कोलायड (Alkoloids) नाम के पदार्थ प्रधान हैं जो चिकित्सा में बहुत उपयोगी होते हैं। कंटकारी, अहिफेन तथा अतीसवर्गों के पौधों का विषैलापन इन्हीं के कारण होता है। इस श्रेणी में प्रायः उड़नेवाले तैल, रेज़िन, टैनिन, खनिजपदार्थ, ग्लूकोसाइड तथा म्यूसिलेज आदि सभी रखे जाते हैं पर इनमें बहुत से कहीं-कहीं पौधे के लिये उपयोगी भी पाये गये हैं, जैसे कहीं-कहीं ग्लूकोसाइड और म्यूसिलेज संचित खाद्य पदार्थ के रूप में पाये जाते हैं।

उपर्युक्त तीनों श्रेणी के पदार्थ घोल, द्रव अथवा ठोस रूप में साधारण जीवनमूल में अथवा वर्ण जनक आदि विशिष्ट रचनाओं में पाये जाते है। साधारण जीवन मूल में घोल अथवा द्रव रूप में वे सर्वदा कोष्ठ खातों में बन्द रहते हैं। कोष्ठरस इन्हीं पदार्थों का घोल मात्र होता है। बड़े बड़े खातों के अतिरिक्त बहुत से छोटे-छोटे खात अथवा बूंद भी होते हैं जिनमें बहुत से पदार्थ द्रव रूप में भरे रहते हैं। इनमें वसा के तैल (Fatty oils), रेज़िन तथा उड़नेवाले तैल

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(Volatile oils) मुख्य हैं। वसा के तैल प्रायः फलों और बीजों में अत्यन्त चमकीली बूंदों के रूप में और उड़नेवाले तैल भीतर के कोष्ठ अथवा कोष्ठसमूहों में या रोमों में पाये जाते हैं। रेजिन नाम के अनेकों पदार्थ द्रव रूप में कोष्ठों, कोष्ठ-समूहों तथा नलिकाओं में पाये जाते हैं।

ठोस अजीवित कोष्ठांग— ठोस रूप में पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थ प्रायः स्फटिकाकार अथवा अनिश्चिताकार होते हैं। स्फटिकाकार पदार्थों में कैल्शियम आक्ज़लेट प्रधान है। पौधों में कुछ क्रियाओं में आकज़लिक अम्ल बनता रहता है जो घुलनशील होता है और अधिक गाढा हो जाने पर जीवनमूल के लिये विषवत् हो जाता है। अतः इसे जीवनमूल के संसर्ग से हटाना पड़ता है। यह अम्ल कैल्शियम के साथ मिलकर लवण के रूप में बदल जाता है जो अघुलनशील होता है। यह स्फटिकाकार लवण प्रायः सभी पौधों में तथा उनके सभी अंगों में पाया जाता है पर अधिकतर वार्षिक पौधों के तनों में, वृक्षों की छाल, पत्ती, तथा जड़ों में अधिक पाया जाता है। इसके स्फटिक कोष्ठ के अन्दर अकेले अथवा समुदाय में पाये जाते हैं। समुदाय में होने वाले स्फटिक गोले अथवा बहुभुजाकार होते हैं। ऐसे समुदायों को कोणीय स्फटिकसमुदाय (Sphaeraphide) कहते हैं। कहीं-कहीं सूच्याकार स्फटिक समुदाय (Raphides) भी पाये जाते हैं। पहले में स्फटिक एक केन्द्र के चारों ओर रश्मिवत्

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

क्रमबद्ध रहते हैं और दूसरे में सूच्याकार स्फटिक समानान्तर क्रम में समुदायबद्ध रहते हैं। इस तरह समुदायबद्ध होने के अतिरिक्त कहीं-कहीं छोटे-छोटे स्फटिक वालुकाकण की तरह जीवनमूल में बिखरे पड़े रहते हैं।

कैल्शियम आक्ज़लेट के अतिरिक्त कैल्शियम कार्बोनेट, प्रोटीड तथा सिलिका के यौगिक भी ठोस रूप में पाये जाते हैं। प्रोटीड यद्यपि नवीन कोष्ठों में अथवा कहीं-कहीं पुराने कोष्ठों में (संचितावस्था) घोल रूप में पाया जाता है पर अधिकतर शुष्क बीजों तथा साधारण जलयुक्त कोष्ठों में भी यह ठोस ही अवस्था में पाया जाता है। ठोस अवस्था में इसके कण अनिश्चिताकार अथवा स्फटिकाकार दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इसके कण स्वतन्त्र अथवा अन्य रचनाओं से सम्बद्ध रहते हैं। एरंड में ये उन बड़े-बड़े कणों के बीच में पाये जाते हैं जिन्हें एल्यूरोन (Aleurone) कण कहते हैं। एल्यूरोन कण एक जातिवाचक नाम है। इससे साधारणतः ऐसे सभी प्रकार के कणों का बोध होता है जिनके अन्दर अधिकांश संचित प्रोटीन का होता है। यद्यपि वे स्वयं स्फटिकाकार नहीं होते तथापि उनका आकार न्यूनाधिक निश्चित होता है। मटर और गेहूं के बीज में साधारण रचनावाले कण होते हैं पर एरंड में इनकी रचना बहुत जटिल होती है। इनका अधिकांश प्रोटीन स्फटिक से बना होता है जिसे प्रोटीन स्फटिकांश (Protien crystalloid) कहते हैं। शेष भाग प्रायः खनिज (कैल्शियम, मैगनीशियम

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तथा आर्गेनिक पदार्थों के) यौगिकों का होता है। आकार में गोला होने से इसे गोलांश (Globoid) कहते हैं। किसी किसी कण में एक से अधिक स्फटिकांश होते हैं और कहीं-कहीं इसके अन्दर कैल्शियम आक्जलेट के स्फटिक भी पाये जाते हैं।

न्यूक्लियस तथा वर्णग्राहकों के अन्दर भी रासायनिक पदार्थ पाये जाते हैं। वर्णवाहकों के अन्दर प्रोटीन और वर्णमूल के अतिरिक्त स्टार्च पाया जाता है जो प्राणीमात्र के लिए बहुत उपयोगी पदार्थ है। पत्ती तथा तने के हरित वर्णवाहकों में प्रकाश की उपस्थिति में इसके छोटे-छोटे कण बनते हैं। रात्रि के समय जब इसका बनना बन्द हो जाता है तो वह घुलनशील शर्करा के रूप में बदलकर अन्य भागों में चला जाता है जहां उसी समय काम में लाया जाता है अथवा भविष्य के लिये संचित कर दिया जाता है। संचय के लिए शर्करा से बदलकर इसे अपने असली रूप में आना पड़ता है। प्रायः देखा गया है कि किसी पौधे के स्टार्च कण क़द, आकार तथा अन्य लक्षणों में सब एक तरह के होते हैं। यही नहीं, बल्कि यहां तक कि बहुत सी उपजाति, जाति तथा वर्गों में पाये जानेवाले कण आपस में बहुत समानता रखते हैं। यह बात संचित स्टार्च के लिए विशेष रूप से लागू है। भिन्न-भिन्न पौधों से बने हुए भिन्न-भिन्न प्रकार के बाज़ारू स्टार्च का निर्णय, तथा स्टार्चयुक्त औषधियों की तथा उनके शुद्धता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की पहचान स्टार्च के लक्षणों द्वारा करने में बड़ी सहायता मिलती है।

हरितवर्णवाहकों के स्टार्च कण बहुत छोटे और प्रायः गोले होते हैं पर संचय तन्तुओं में उनके आकार तथा क़द में बड़ा परिवर्तन हो जाता है। संचय तन्तुओं में स्टार्चकण ल्यूकोप्लास्ट द्वारा बनते हैं। इसमें बने हुए सब तरह के कणों में एक निर्माण केन्द्र (Hilum) होता है जो एक किनारे (आलू) तथा बीच में (शिम्बीवर्ग और गोधूम वर्ग) होता है। जब स्टार्चकण वर्णवाहक के एक किनारे पर बनना प्रारम्भ होता है तो उसका केन्द्र भी किनारे हो होता है अन्यथा बीच में पाया जाता है। आलू में संयुक्त अथवा अर्धसंयुक्त कण भी पाए जाते हैं। जब कई कणों का निर्माण एक साथ प्रारम्भ होता है तो कुछ समय के बाद वे एक दूसरे से मिल जाते हैं और संयुक्त कण बन जाता है। कभी-कभी मिल जाने पर भी संयुक्त कण के चारो ओर तहें बन जाती हैं। इस तरह के समुदाय को अर्धसंयुक्त कण कहते हैं। कहीं २ स्टार्चकण डम्बल अथवा रेखा के आकार के भी होते हैं। आयोडीन घोल में स्टार्च काला अथवा नीला हो जाता है। शीत जल तथा एल्कोहल में नहीं घुलता पर गर्म जल में कुछ-कुछ और आम्लिक घोल तथा डायस्टेज के द्वारा बिल्कुल घुलनशील (शर्करा में परिवर्तित होकर) बनाया जा सकता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कोष्ठोत्पत्ति (Cell formation)

प्रत्येक सजीव पदार्थ अपना जीवन चक्र एक कोष्ठी शरीर से प्रारम्भ करता है, अतः यह स्पष्ट है कि बहुकोष्ठी बनस्पतिओं तथा जन्तुओं का शरीर उसी प्रारम्भिक कोष्ठ से उत्पन्न हुआ है और उसके अन्दर जितने कोष्ठ हैं उसी कोष्ठ से बने हैं।

नये कोष्ठों की उत्पत्ति छः प्रकार से होती है। वानस्पतिक भागों की बृद्धि में बृद्धिशील कोष्ठों के बार-बार विभक्त होने से नये-नये कोष्ठ बनते रहते हैं। जब बृद्धिशील कोष्ठ कद में बहुत बढ़ जाता है तो उसके न्यूक्लियस में परिवर्तन होने लगते हैं। न्यूक्लियस कद में बढ़ जाता है और उसके सूत्र मोटे होकर इस प्रकार अलग हो जाते हैं कि क्रोमेटीन पाश के स्थान में एक बहुत लम्बा लपेटा हुआ सूत्र बन जाता है। इस समय तक न्यूक्लिओली और न्यूक्लियस का आवरण भी अदृश्य हो जाता है। सेन्ट्रोस्फीयर यदि रहते हैं तो कोष्ठ के दोनों सिरों पर चले जाते हैं। लम्बा क्रोमेटीन सूत्र बहुत से V अथवा U आकार की रचनाओं में टूट जाता है जिन्हें क्रोमोज़ोम (Chromosome) कहते हैं। ये रचनायें केन्द्र के चारों ओर इस तरह क्रमबद्ध हो जाती हैं कि इनका मुड़ा हुआ भाग केन्द्र की ओर होता है। इसी बीच में कोष्ठ के अन्दर अनेक जीवनमूलीय सूत्र बन जाते हैं जो कोष्ठ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दोनों सेन्ट्रोस्फीयर के बीच में फैले रहते हैं। ये सब सूत्र मिलकर एक पीपे के आकार की रचना बनाते हैं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जिसे न्यूक्लियर स्पिंडिल (Nuclear spindle) कहते हैं। क्रोमोजोम मुड़े हुए सिरों पर इन सूत्रों से जुड़े रहते हैं और उन्हीं को पकड़े-पकड़े सब कोष्ठ के बीच में आ जाते हैं। अब इन सबके मिलने से जो रचना तैयार होती है उसे न्यूक्लियर डिस्क (Nuclear Disc) कहते हैं। प्रत्येक क्रोमोज़ोम फिर खड़ेखड़ दो भागों में बट जाते हैं और उनके दोनों टुकड़ों के मुंह दो ओर (दोनों सिरों का ओर) हो जाते हैं। इनके बाद ये टुकड़े अपने समीप के सिरों की ओर बढ़ने लगते हैं। सिरों पर पहुँचते-पहुचते उनका रुख बदल जाता है। पहुँचने पर दोनों सिरों के टुकड़े परस्पर मिल जाते हैं और पहले की तरह लम्बे लपेटे हुए सूत्र बन जाते हैं जिनसे फिर क्रोमेटीन पाश तैयार हो जाता है। नये आवरण तथा न्यूक्लिओली भी प्रगट हो जाते हैं। इस तरह एक न्यूक्लियस से दो नये न्यूक्लियस तैयार हो जाते हैं। सेन्ट्रोस्फीयर मौजूद रहता है तो वह भी दो भागों में बटकर न्यूक्लियस से किसी स्थान पर सम्बद्ध हो जाता है। जीवन-मूलीय सूत्र तबतक बने रहते हैं जब तक बीचवाली दीवाल नहीं तैयार हो जाती। कभी-कभी जीवनमूलीय सूत्र बाद में और अधिक संख्या में बनकर सम्पूर्ण कोष्ठ को भर लेते हैं। जिस समय क्रोमोज़ोम दोनों सिरों की ओर बढ़ते रहते हैं उसी समय जीवनमूलीय कण उपरोक्त सूत्रों से होकर बीच में एक रेखा में जमा होते रहते हैं और क्रमशः एक पतली दीवाल बना लेते हैं जिसे कोष्ठ पट्ट (Cell plate) कहते हैं। कुछ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
समय के बाद यही खड़े-खड़े दो भागों में बट जाता है जिनके बीच में प्रारम्भिक कोष्ठावरण जिसे मध्य पट्ट (Middle lamella) कहते हैं, बन जाता है। कोष्टपट्ट के दोनों भागों से सेलुलोज़ के आवरण बनते हैं।

वानस्पतिक कोष्ठों में न्यूक्लियस प्रायः इसी विधि से विभक्त होता है। इस विधि को केरिओकाइनेटिक विधि (Karyokinetic) कहते हैं। इसमें विशेषता यह है कि प्रत्येक क्रोमोज़ोम खड़ेखड़ दो भागों मे विभक्त होता है इसलिये नये न्यूक्लियस में भी उतने क्रोमोज़ोम हो जाते हैं जितने पुराने में थे। दूसरे प्रकार के विभाजन में नये न्यूक्लियस में इनकी संख्या आधी हो जाती है। इस विधि को लघ्वीकरण विधि (Reduction) कहते हैं। लैंगिक कोष्ठों के बनने के समय इस विधि से क्रोमाज़ोमों की संख्या आधी कर दी जाती है कि जिससे गर्भाधान के समय फिर उनकी संख्या पूरी हो जाय। इसीलिये किसी उपजाति के सभी वानस्पतिक कोष्ठों में इनकी संख्या सर्वदा बराबर रहती है। न्यूक्लियस एक तीसरी विधि से भी अपना विभाजन करता है। इस विधि से वह साधारण रीति से दो भागों में बट जाता है। इस विधि से प्राप्त हुये दोनों नये न्यूक्लियसों का बराबर होना आवश्यक नहीं है। साधारण कोष्ठांग के विभक्त होने की विधियां भी भिन्न-भिन्न हैं। वानस्पतिक कोष्ठों में कोष्ठांग विभाजन की सामान्य विधि का वर्णन ऊपर किया गया है। इसके अतिरिक्त गर्भकोष की वृद्धि के समय दूसरी विधि से विभाजन होता है। उसमें पहले बहुत

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

से न्यूक्लियस बन जाते हैं और तब उसके अन्दर जीवनमूलीय सूत्र तथा कोष्ठावरण बनते हैं। द्विदली पौधों में परागनिर्माण के समय परागकणों के जनककोष्ठ (Mother-cells) का न्यूक्लियस पहले दो भागों में बट जाता हैं। साथ ही जीवनमूलीय सूत्र भी बनते हैं पर वे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। दोनों न्यूक्लियस फिर दो-दो भागों में विभक्त हो जाते हैं। इस बार जीवनमूलीय सूत्रों से स्थायी कोष्ठावरण भी बन जाते हैं। एक एक कोष्ठ से एक-एक परागकण बनते हैं।

ईस्ट (Yeast) नाम की क्षुद्र वनस्पतिओं में विभाजन दूसरी ही रीति से होता है। यहां कोष्ठ से एक बहिरुद्भेद निकलता है और कोष्ठावरण दो आमने सामने के स्थानों पर भीतर की ओर बढ़ता हुआ बीच में मिल जाता है। इस तरह वहिरुद्भेद एक कोष्ठ के रूप में जनककोष्ठ से अलग हो जाता है पर उससे सम्बद्ध रहता है। चौथी विधि में पहले कई बार न्यूक्लियस का विभाजन होता है। इसके बाद प्रत्येक न्यूक्लियस के चारो ओर जीवनमूल इकट्ठा हो जाता है और अनेकों नग्नकोष्ठ बन जाते हैं। ये नग्नकोष्ठ इसी अवस्था में अथवा कहीं-कहीं कोष्ठावरण से युक्त होने पर जनककोष्ठ से मुक्त होते हैं। ऐसे कोष्ठ भी क्षुद्र पौधों में पाये जाते हैं और सन्तानोत्पत्ति से सम्बन्ध रखते हैं।

उपर्युक्त चारों विधियों में एक जनककोष्ठ से अनेक नये कोष्ठ बन जाते हैं पर कोष्ठोत्पत्ति की दो ऐसी भी विधियां हैं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जिनमें कोष्ट संख्या में वृद्धि नहीं होती। ये दोनों विधियां भी संतानोत्पत्ति से सम्बन्ध रखती हैं। पहली विधि को स्फुरण (Rejuvescence) और दूसरी को संयोग (Conjugation) विधि कहते हैं। पहली में कोष्ट का जीवनमूल कोष्टावरण को छोड़कर बीच में इकट्ठा हो जाता है और कोष्टावरण के फट जाने पर बाहर निकल आता है। नवीन कोष्ट जनककोष्ट की अपेक्षा अधिक गुणसम्पन्न और स्फूर्तियुक्त होता है। परागोत्पादक कोष्टों से इसी प्रकार परागकण बनते हैं पर इसके उदाहरण क्षुद्र पौधों में अधिक मिलते हैं। अंतिम विधि में दो कोष्टों के मिलने से एक नया कोष्ट बनता है। क्षुद्र श्रेणी के पौधों में दोनों मिलने वाले कोष्ट प्रायः एक ही तरह के होते हैं। वहां इस विधि को संयोग (Conjugation) विधि कहते हैं। उच्चश्रेणी के पौधों में ये दोनों कोष्ट भिन्न तरह के होते हैं और नर तथा नारी कोष्ट कहे जाते हैं। यहां इन दोनों कोष्टों के मिलने की क्रिया को गर्भाधान (Fertilisation) कहते हैं। एक-**कोष्टी तंतु (Coeno cyte)**:- कहीं २ न्यूक्लियस के बारम्बार विभक्त होने पर भी कोष्ट ज्यों का त्यों बना रहता है, ऐसे कोष्ट दो तरह के होते हैं। एक में न्यूक्लियस के बारम्बार दो टुकड़े होते जाते हैं और दूसरे में न्यूक्लियस केरिओकाइनेटिक विधि से विभक्त होता है इसलिये ऐसे कोष्ट को एक आवरण से घिरे हुये बहुत से नग्न कोष्टों का समुदाय समझ कर एक कोष्टीतंतु मानते हैं। इसके उदाहरण दुग्धवाहक तंतु में मिलते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Important:

तंतु तथा तंतु संस्थान

क्षुद्र श्रेणी की वनस्पतिओं को छोड़कर प्रायः सभी वनस्पतिआं बहुकोष्ठी होती हैं। बहुकोष्ठी वनस्पतिओं में भी प्रारम्भ की वनस्पतिओं में सब कोष्ट प्रायः एक हो तरह के होते हैं और सबमें सब कार्य्यों के करने की योग्यता रहती है। ऊपर चलने पर भिन्न २ कोष्ठ तथा कोष्ठ समुदाय अपने ऊपर भिन्न २ कार्यों का भार लेते हैं। ऐसे ही कोष्ठसमूहों को तंतु कहते हैं। प्रत्येक तंतु के सब कोष्ठ प्रायः एक हो तरह के होते हैं। उत्पत्ति भी उनकी एकही कोष्ठ अथवा कोष्ठसमुदाय से होती है। नवीन कोष्ठ प्रायः सब एकही तरह के होते हैं। इनमें पुराने हो जाने पर भिन्न २ प्रकार के परिवर्तन हो जाते हैं जिससे भिन्न २ प्रकार के कोष्ठों की उत्पत्ति होती है। ये परिवर्तन पांच प्रकार के होते हैं—(१) कोष्ठावरण के क्षेत्रफल में वृद्धि (२) कोष्ठावरण की मोटाई में वृद्धि (३) कोष्ठावरण की रासायनिक रचना में परिवर्तन (४) कोष्ठ के अन्दर जीवित तथा अजीवित पदार्थों में परिवर्तन (५) कोष्ठ अथवा कोष्ठावरण का शोषण तथा कोष्ठावरण का फटना।

उपर्युक्त परिवर्तनों में पहले चार प्रकार के परिवर्तनों का वर्णन पहले किया जा चुका है। पांचवें प्रकार के परिवर्तनों से पौधों के अन्दर भिन्न २ प्रकार के खात, अन्तर्कोष्ठीय स्थान तथा नलिकायें बन जाती हैं। बहुत से पौधों में तने पोले हो जाते हैं क्योंकि वहां के कोष्ठों की दीवालें नष्ट हो जाती हैं और

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

साथही उनके कोष्ठांग भी लुप्त हो जाते हैं। कहीं २ कोष्ठों की कुछ तहें एक सीधी रेखा में ग़ायब हो जाती हैं और नलिकायें बन जाती हैं। वास्तविक नलिकायें उस अवस्था में बनती हैं जब किसी कोष्ठतह की बीच २ की दीवालें नष्ट हो जाती हैं। कोष्ठतंतु की नलिकायें ऐसी ही होती हैं। जब भिन्न २ दिशाओं में जाने वाली इस प्रकार की नलिकायें परस्पर मिल जाती हैं तो नलिकाओं का पाश सा बन जाता है। दुग्धवाहक नलिकायें प्रायः ऐसी ही होती हैं।

कोष्ठावरणों के अलग हो जाने पर भी खात, नलिकायें तथा अन्तर्कोष्ठीय स्थान बनते हैं। नवीन कोष्ठों के बीच में प्रायः खाली स्थान नहीं रहता पर पुराने होने पर बीच २ में, अधिकतर कोष्ठों के कोणों पर खाली जगहें छूट जाती हैं इन्हें अन्तर्कोष्ठीय स्थान (Inter cellular space) कहते हैं। ये स्थान एक दूसरे से मिले रहते हैं और तंतुओं में बननेवाली गैसों तथा वाष्प का विनियम इन्हीं के द्वारा होता है। कोष्ठावरणों के अलग हो जाने से कभी २ बड़े २ तथा चौड़े मार्ग (Passages) भी बन जाते हैं। बहुत से पौधों में रेज़िन-मार्ग इसी तरह के होते हैं। नलिकाओं तथा खातों की पहली प्रकार की उत्पत्ति को लाइसीजेनस (Lysigenous) और दूसरी प्रकार की उत्पत्ति को साइज़ोजेनस (Schizogenous) कहते हैं।

तंतुओं के भेद:—वानस्पतिक तंतुओं को दो मुख्य समुदायों में विभक्त कर सक्ते हैं (१) वृद्धि शीलतंतु (**Meriste-**

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

matic) और (२) स्थायी तंतु (Permanent) पहले प्रकार के तंतु प्रायः वृद्धिशील भागों में पाये जाते हैं जो या तो अग्रस्थित (Apical) या पुराने तंतुओं के बीच में (Intercalary) होते हैं। उत्पत्ति की दृष्टि से भी वृद्धि शील तंतु दो प्रकार के होते हैं प्रारम्भिक अथवा गौंड (Primary or Secondary), प्रारम्भिक वृद्धिशील तंतु प्रायः वे हाते हैं जो किसी अंग की वृद्धि के प्रारम्भ से ही मौजूद रहते हैं अथवा जो प्रारम्भ से ही वृद्धिशील रहते हैं। इनमें कुछ ऐसे होते हैं जो समय पर ही वृद्धिशील होते हैं नहीं तो अकर्मण्य अवस्था में पड़े रहते हैं, जैसे द्विदली तनों का कैम्बियम। गौंड वृद्धिशील तंतु स्थायी तंतुओं के वृद्धिशील हो जाने से बनते हैं जैसे द्विदली जड़ों का कैम्बियम। अग्रस्थित वृद्धिशील तंतुओं के कोष्ट प्रायः बहु-भुजाकार और कैम्बियम के कोष्ट प्रायः चिपटे और अधिक लम्बे होते हैं। और बातों में थे कोष्ट प्रायः नवीन कोष्ट की तरह होते हैं।

स्थायी तंतु :—कोष्टों के आकार तथा कद के आधार पर स्थायी तंतु दो ही तरह के हांते हैं। जिस तंतु के कोष्ट प्रायः लम्बाई और चौड़ाई में बराबर होते हैं और, यदि लम्बाई में बड़े रहते हैं, तो अग्र पर एक दूसरे से मिले रहते हैं। ऐसे तन्तुओं को पहले पैरेनकाइमा (Parenchyma) कहते हैं, जिस तन्तु के कोष्ट अधिक लम्बे होते हैं और उनके अग्र नोकीले होकर दूसरे कोष्टों के बीच २ में फैले रहते हैं, उस तन्तु को

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रोसेनकाइमा (Prosenchyma) कहते हैं। तन्तुओं का यह वर्गीकरण पुराना है और भिन्न २ प्रकार के तन्तुओं का इससे ठीक ज्ञान नहीं होता। इसलिये कोष्ठों के क़द, आकार, बनावट, तथा कार्य आदि सब बातों का ध्यान रखकर दूसरा वर्गीकरण किया गया है जिसके अनुसार निम्नलिखित भिन्न २ तन्तु होते हैं।

(१) **पतली दीवाल का पैरेनकाइमा (Thin-walled Parenchyma :—** इसके कोष्ट पैरेनकाइमेटस् और कोष्ठावरण पतले होते हैं। यह तन्तु पौधों में अधिक मात्रा में पाया जाता है और भिन्न २ स्थान पर भिन्न २ कार्य करता है। कोष्ठावरण सेलुलोज़ का होता है। जीवनमूल कम या अधिक मात्रा में सर्वदा मौजूद रहता है। आकार और कार्य के अनुसार इसके भी कई भेद होते हैं।

(२) **कोलेनकाइमा (Collenchyma) :—**जैसे जन्तुओं में शरीर को दृढ़ रखने के लिये पहले कार्टिलेज तन्तु बनता है उसी तरह पौधों में कोलेनकाइमा होता है। यह एक प्रकार का मोटी दीवाल का पैरेनकाइमा है। कोष्ठावरण केवल कोणों पर अधिक मोटे होते हैं। इसमें अन्तर्कोष्ठीय स्थान प्रायः नहीं होते और यह प्रायः नवीन भागों में ही पाया जाता है।

(३) **स्क्लेरनकाइमा Schlerenchyma) :—**जन्तुओं में जो काम हड्डिओं द्वारा होता है वह पौधों में प्रायः इस तन्तु के द्वारा होता है। यह तन्तु प्रायः परिपक्व भागों में पाया जाता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है और प्रायः स्थूल और लिग्निनयुक्त आवरणों से घिरे हुये मृत कोष्ठों का बना होता है जो साधारण पैरेनकाइमेट्स अथवा सूत्रवत् प्रोसेनकाइमेटस होते हैं। इसके पैरेनकाइमेट्स कोष्ठ प्रायः पाषाण कोष्ठ कहे जाते हैं। बहुत से पौधों के वानस्पतिक भागों से जो सूत्र निकाले जाते हैं और कपड़े बनाने के काम आते हैं वे इसी तन्तु के कोष्ठों से बने होते हैं।

(४) **क्यूटीन और सुबेरीनयुक्त तंतु (Cutinised and suberised tissues)**:—इनके कोष्ठ प्रायः पैरेनकाइमेट्स होते हैं और कोष्ठावरण पूर्णतः अथवा अंशतः क्यूटीन अथवा सुबेरीनयुक्त होते हैं। ऐसे कोष्ठ प्रायः इपीडर्मिस, कार्क तथा इन्डोडर्मिस में पाये जाते हैं। क्यूटीन और सुबेरीन के गुणों के अनुसार इनका कार्य होता है।

(५) **रसारोहण तंतु (Tracheal tissue)** यह प्रायः लिग्निनयुक्त मृत कोष्ठों का बना होता है जो प्रायः एक दूसरे से अग्र पर जुड़े रहते हैं और क़तारों में पाये जाते हैं। इनके कोष्ठावरण चक्राकार, पेचदार, पाशवत् तथा विन्दुमय वृद्धि के कारण मोटे होते हैं। जब कोष्ठों के बीच की दीवालें पूर्णतः या अंशतः नष्ट हो जाती हैं तो वे ही नलिकाओं के रूप में देख पड़ते हैं जिन्हें रसारोहण नलिका (Tracheae अथवा Vessel) कहते हैं। नग्नवीजी पौधों में रसारोहण तन्तु प्रायः लिग्निनयुक्त मृत प्रोसेनकाइमेटस कोष्ठों का बना होता है जिन्हें रसारोहण कोष्ठ (Trachied) कहते हैं। स्थूल कोष्ठावरण में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कारण यह तन्तु पौधे को दृढ़ता भी प्रदान करता है। कोष्ठावरण की मोटाई में जिस तरह की वृद्धि हुई रहती है उसी तरह का नाम भी नलिकाओं का होता है।

(६) रसारोहण तन्तु (Sieve-tube-tissue):—उपर्युक्त तन्तु की नलिकाओं द्वारा अनिर्मित खाद्य पदार्थों का घोल पत्तिओं में पहुँचाया जाता है और निर्मित पदार्थों का घोल रसावरोहण तन्तु द्वारा पौधे के भिन्न २ भागों में पहुँचाया जाता है। इस तन्तु की मुख्य नलिकाओं को सीवनलिका (Sieve-tube) कहते हैं। जिन कोष्ठों के मिलने से ये नलिकायें बनी होती हैं वे पतले अग्र पर एक दूसरे से मिले हुये, और पतले तथा सेलुलोज़ के कोष्ठावरण वाले होते हैं। बीच की दीवालें विशेष रूप से मोटी होती हैं पर इनमें बहुत से अस्थूल स्थान छूटे रहते हैं जहां मध्यपट्ट भी नष्ट हो गया रहता है। इसीलिये बीच की दीवाल चलनी की तरह मालूम होती है। जीवनमूल कोष्ठावरण के किनारों पर होता है और समीपवर्त्ती कोष्ठों के जीवनमूल छिद्रों से एक दूसरे से मिले रहते हैं। साधारणतः बीचवाली दीवाल सब जगह एक तरह छिद्रमय हो जाती है पर कहीं २ वह कई छिद्रमय भागों में बट जाती है जिन्हें सीवपट्ट (Sieve-plate) कहते हैं।

सीवपट्ट पर प्रायः कैलस (Callus) नाम का पदार्थ जमा रहता हे और कहीं २ इसकी मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि छिद्र भी बन्द हो जाते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आवृतबीजी पौधों में सीवनलिकाओं के साथ २ कुछ कम चौड़े कोष्ठों की भी क़तारें पाई जाती हैं जिन्हें सहकारी कोष्ठ (Companion cell) कहते हैं। इनमें जीवनमूल की मात्रा अधिक और न्यूक्लियस भी होता है। सीवनलिकाओं के भीतर प्रोटीन तथा अन्य नत्रजनीय पदार्थ अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, और सम्भव है, कि इन्हीं पदार्थों के वितरण के लिये इन नलिकाओं का आविर्भाव हुआ है।

(७) दुग्धवाहक तन्तु (**Laticiferous tissue**):— इस तन्तु की नलिकाओं के दो भेद होते हैं। दुग्धिका तथा मदार में लम्बे, शाखायुक्त, नलिकाकार कोष्ठ होते हैं जिनका कोष्ठावरण सेलुलोज़ का होता है। जीवनमूल किनारों पर होता है जिसके अन्दर बहुत से न्यूक्लियस होते हैं। ये वस्तुतः एककोष्ठी तन्तु (Coenocyte) होते हैं। अहिफेन, तथा बरगद आदि में ये नलिकायें रसवाहक नलिकाओं की तरह बनी होती हैं। इन नलिकाओं द्वारा प्रवाहित होनेवाला रस जल की तरह (केला), दुग्धवत् अथवा रंगीन (स्वर्णक्षीरी) होता है।

(८) गरडतन्तु (**Glandular tissue**)—यह एक एक कोष्ठों अथवा कोष्ठसमूहों का बना होता है। ये तन्तु प्रायः खाद्यानुपयोगी अथवा अनुपयोगी पदार्थों को बनाते हैं और उन्हें अपने अन्दर रखते हैं या खातों तथा अन्तर्कोष्ठीय स्थानों में भेज देते हैं। प्रायः इन पदार्थों को वे शरीर के बाहर भी भेज देते हैं। इन पदार्थों में गोंद, म्यूसिलेज, रेज़िन, टैनिन, उड़

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वाले तैल, खनिज स्फटिक और जल मुख्य हैं। बहुत से पौधों में स्वतन्त्र गराडकोष्ठ इधर उधर बिखरे पड़े रहते हैं। रेज़िन, टैनिन तथा खनिज स्फटिक प्रायः ऐसे ही कोष्ठों में पाये जाते हैं। गराडतन्तु इपीडर्मिस में प्रायः बहुत पाये जाते हैं और प्रायः रोम, वल्क तथा भिन्न २ तरह के बहिरुद्भेदों के रूप में पाये जाते हैं। गण्डतन्तु कभी तो ठोस कोष्ठसमुदाय से बना होता है और कभी इसके अन्दर खात अथवा नलिकायें होती हैं जिनकी उत्पत्ति लाइसीजेनस अथवा साइज़ोजेनस होती है।

तन्तु संस्थान (Tissue systems) :— उपर्युक्त तंतुओं में कुछ तंतु ऐसे होते हैं जो उच्चश्रेणी के पौधों में बहुत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं और बहुत दूरी में अथवा सम्पूर्ण शरीर में अटूटक्रम से फैले रहते हैं। उनके साथ प्रायः अन्य प्रकार के तंतु भी मिले रहते हैं। यद्यपि ये तंतु समुदाय कार्य की दृष्टि से अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं रखते, तो भी इनसे सम्पादित होनेवाला प्रधान कार्य एक ही होता है और उत्पत्ति की दृष्टि से वे अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखते हैं। आभ्यान्तरिक रचना में इनका वही स्थान है जो वाह्य रचना में भिन्न २ अवयवों का है। पुष्पवाले तथा टेरिडोफाइटा श्रेणी के पौधों में तीन मुख्य तंतु-संस्थान पाये जाते हैं जिन्हें वाह्य चर्म अथवा रक्षणतंतु संस्थान (Epidermal system), रसवाहक तंतु-संस्थान (Vascular system), तथा मूलतंतु संस्थान (Ground tissue System) कहते हैं। वाह्यचर्मतंतु संस्थान का प्रधान

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कार्य रक्षण, रसवाहकतंतु संस्थान का खाद्य पदार्थों का विवरण और मूलतंतु संस्थान का प्रधान कार्य खाद्य पदार्थों का निर्माण तथा विनाश (Metabolic) करना है।

किसी पुष्पवाले पौधे के वृद्धिशील अग्र की परीक्षा करने पर इन तीनों संस्थानों के उत्पादक भाग अलग २ देखे जा सक्ते हैं। वाह्य कोष्ठतह जिसे वाह्यचर्मजनक (Dermatogen) कहते हैं सबसे वाहरी होती है। इससे वाह्यचर्म बनता है। बीच के कोष्ठ समुदाय को प्लोरोम (Plerome) कहते हैं। पुराने होने पर यह एक ठोस बेलनाकार रचना में परिवर्तित हो जाता है जिसके अन्दर बहुत से छोटे २ सुसीमित कोष्ठ समुदाय बन जाते हैं जिन्हें रसवाहक कोष्ठसमूह (Vascular bundle) कहते हैं। दोनों के बीच में जो पोला बेलनाकार कोष्ट समुदाय होता है उसे पेरिब्लेम (Periblem) कहते हैं। इससे अंतःचर्म (Cortex) बनता है। बीच वाली ठोस बेलनाकार रचना के भीतर रसवाहक कोष्टसमूहों के अतिरिक्त मूल तन्तु के कुछ भाग भी पाये जाते हैं जो मध्य भाग से ही बने रहते हैं। इन्हें इन्ट्रास्टेलर तन्तु (Intra-Stelar tissue) कहते हैं।

तने की आभ्यन्तरिक रचना।

द्विदली तना

यद्यपि पुष्पवाले पौधों के तीनों अवयवों में तीनों तन्तु संस्थान पाये जाते हैं तथापि प्रत्येक में भिन्न २ तन्तु संस्थानों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के विकास, मात्रा तथा क्रम प्रायः लाक्षणिक होते हैं। द्विदली तने की प्रारम्भिक रचना, जिसे लाक्षणिक कह सकते हैं, सूर्यमुखी में देखी जा सकती है।

इसमें सबसे ऊपर इपीडर्मिस या वाह्यचर्म की एक कोष्टतह होती है और उसके भीतर कई कोष्टतहों का बना हुआ कोलेनकाइमा होता है। इसके बाद पैरेनकाइमेटस कोष्टों की कई तहें होती हैं जिनमें अंतिम तहको इन्डोडर्मिस कहते हैं। इसके कोष्टों में स्टार्चकण पाये जाते हैं। कोलेनकाइमा, पतली दीवालवाले पैरेनकाइमा के कोष्ट तथा इन्डोडर्मिस सब अन्तःचर्म (Cortex) के भाग होते हैं। इन्डोडर्मिस के भीतर रसवाहक कोष्टसमूहों (fibro-vascular bundles) का एक चक्र होता है। इस चक्र के बीच में पैरेनकाइमा तन्तु होता है जिसे पिथ (Pith) कहते हैं। रसवाहक कोष्टसमूहों के बीच २ में जो तन्तु होते हैं उन्हें मेडुलरी रे (Medullary Rays) कहते हैं।

Xylem. Tracheal Tissue

प्रत्येक रसवाहक कोष्टसमूह में रसारोहण तन्तु भीतर और रसावरोहण तन्तु बाहर की ओर होते हैं और उन दोनों के बीच में एक कोष्टतह का कैम्बियम होता है। रसारोहण तन्तु में चक्राकार, पेचदार, पाशमय तथा बिन्दुमय नलिकायें होती हैं जो प्रायः अर्धव्यास की दिशा में फैली हुई सीधी रेखाओं पर पाई जाती हैं। इनमें भी प्रारम्भ की बनी हुई चक्राकार तथा पेचदार नलिकायें भीतर की ओर होती हैं। रसवाहक नलिकाओं के बीच २ में काष्टसूत्र (Wood fibres) और काष्ट पैरेनकाइमा के सूत्र होते हैं। काष्ट पैरेनकाइमा साधारण

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Sieve-tube-tissue

पैरेनकाइमा का बना होता है। रसावरोहण तन्तु रसावरोहण नलिका, सहकारी कोष्ठ तथा रसावरोहण पैरेनकाइमा का बना होता है। रसावरोहण तन्तु के बाहर भी स्क्लेरेनकाइमा के सूत्र पाये जाते हैं, जिनसे बने हुये भाग को हार्डबास्ट (Hard bast) कहते हैं।

बाह्यचर्म के बाहरी कोष्टावरण क्यूटीन युक्त होते हैं। कहीं२ क्यूटीन इतना अधिक होता है कि इसका स्वतंत्र परदा बन जाता है जिसे क्यूटीनपट्ट (Cuticle) कहते हैं। क्यूटीनपट्ट का विकास अधिकतर प्रकाशप्रिय तथा शुष्क परिस्थितिओं में पाये जाने वाले पौधों में अधिक होता है। कहीं २ पृष्ठ पर (मदार में) मोम की तरह का पदार्थ भी जमा हुआ पाया जाता है जिसे ब्लूम (Bloom) कहते हैं। कोष्ठों के बीच में प्रायः अन्तर्कोष्ठीय स्थान नहीं होते, पर कहीं २ स्टोमाटा पाये जाते हैं। कोष्ठों में जीवन मूल और कोष्ठ रस कम या अधिक मात्रा में अवश्य पाये जाते हैं पर हरित वर्णवाहक केवल छाया प्रिय तथा जलीय पौधों के बाह्यचर्म में पाये जाते हैं। पृष्ठ पर अनेक प्रकार के बहिरुद्भेद भी पाये जाते हैं जिनमें अनेक प्रकार के रोम, मृदुकंटक अथवा दृढ़ कंटक होते हैं। साधारणतः बाह्यचर्म एकही कोष्ठतह का होता है पर कहीं २ (रबर में) इसकी अधिक तहें भी होती हैं। इतना स्मरण रखना चाहिये कि बाह्यचर्म संस्थान का विकास वायवीय तथा शुष्क परिस्थिति में पाये जाने वाले पौधों के तनों में अधिक होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इनमें क्यूटीन, ब्लूम तथा रोमाच्छादन के होने से जलत्याग कम होता है।

अन्तःचर्म प्रायः सूर्यमुखी की ही तरह होता है। हरे मुलायम तनों में कहीं २ हरितवर्ण वाहक भी होते हैं। भीतर के भाग प्रायः खाद्य पदार्थों का संचय करते हैं। चूंकि वायवीय तनों को अंधड़ आदि के कारण बार २ झुकना पड़ता है इसलिये दृढ़कारी तन्तु की आवश्यकता होती है। कोलेनकाइमा के अतिरिक्त अन्तःचर्म के अन्दर कहीं २ स्क्लेरेनकाइमा के टुकड़े अथवा चक्र पाये जाते हैं। इन्डोडर्मिस, जो अन्तः चर्म की सबसे भीतरी तह है, तनों में सर्वदा स्पष्ट नहीं होता। स्टार्च होने पर ही यह स्पष्ट मालूम होता है।

परिचक्र (Pericycle) एक या अधिक कोष्ठ तहों का होता है और इसके कोष्ठ पैरनेकाइमेटस, स्क्लेरेनकाइमेटस अथवा दोनों प्रकार के होते हैं। रसवाहक तन्तु के सामने के भाग प्रायः स्क्लेरेनकाइमेटस् कोष्ठों से बने होते हैं और हार्डबास्ट कहे जाते हैं। इन कोष्ठों का कहीं २ पूरा चक्र ही पाया जाता है। मेडुलरीरे के कोष्ठ पतले कोष्ठावरण वाले और अर्धव्यास की दिशा में अधिक लम्बे होते हैं। ये पोषक रस को भीतर से बाहर की ओर पहुँचाते हैं। ये खाद्य पदार्थों का संचय भी करते हैं। कहीं २ इसका भीतरी भाग स्क्लेरेनकाइमा के कोष्ठों का होता है। पिथ प्रायः पैरेनकाइमा के बड़े २ कोष्ठों का बना होता है

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जिनके बीच २ में कहीं २ अन्तर्कोशीय स्थान भी पाये जाते हैं। पिथ का मुख्य कार्य खाद्य पदार्थों का संचय करना है।

रसवाहक कोष्ठसमूहों के चक्र कहीं २ एक से अधिक भी होते हैं। कुकुरविटा तथा पाइपर जाति में इनकी संख्या दो और अहिफेन जाति में दो से भी अधिक होती है। तनों के रसवाहक कोष्ठसमुदाय सूर्यमुखी की तरह संयुक्त (Conjoint) वृद्धिशील (Open) तथा पार्श्वक्रमी (Collateral) होते हैं। कुष्मांड जाति में वे द्विपार्श्वक्रमी (Bi-collateral) होते हैं। यहां रसारोहण तन्तु के भीतर और बाहर दोनों ओर रसावरोहण तन्तु होते हैं।

यदि जड़ के रसवाहक कोष्ठसमूहों के मार्ग का अनुसरण किया जाय तो मालूम होगा कि वे जड़ से पत्तिओं तक अटूट क्रम में फैले रहते हैं, अतः इन्हें कामन (Comon bundles) कहते हैं। यदि पत्तो को ओर से नीचे की ओर इसके मार्ग का अनुसरण किया जाय तो पता लगेगा कि वह तनें में एक या अधिक पर्वों के बाद किसी दूसरे बंडिल से, जो नीचे की किसी पत्ती से आया है, मिल जाता है। मिलने के पहले कभी २ ये बंडिल दो भागों में बट जाते हैं। कभी २ पिथ में कुछ ऐसे बंडिल पाये जाते हैं जिनका पत्तिओं से कोई सम्बन्ध नहीं होता। ये ग्रन्थिओं पर कामन बंडिलों से मिले रहते हैं और कालाइन (Cauline) कहे जाते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गौड़ वृद्धि (secondary growth):—पौधे जब क़द में बहुत बढ़ जाते हैं तो उनके स्थूल शरीर के लिये अधिक दृढ़कारी तन्तुओं को आवश्यकता होती है और पोषकरस के वितरण के लिये भी अधिक रसवाहक तन्तु की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिये उनमें गौड वृद्धि होती है। यह वृद्धि कैम्बियम की सहायता से होती है और इससे पौधे मोटे होते हैं। द्विदली अल्पजीवी पौधों में इसकी आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ती, परन्तु क्षुपों और वृक्षों में यह वृद्धि प्रति वर्ष कुछ समय तक होती है। प्रारम्भ में बंडिलों के बीचवाले कैम्बियम के सामने पड़नेवाले कोष्ठ वृद्धिशील हो जाते हैं जिससे वृद्धिशील कोष्ठों का एक चक्र बन जाता है। इसके कोष्ठ खड़ेखड़ बार-बार दो-दो कोष्ठों में विभक्त होते जाते हैं जिनमें हर बार एक से गौड तन्तु बनता है और दूसरा वृद्धिशील रह जाता है। इस प्रकार बने हुये बाहर के कोष्ठों से गौड़ रसावरोहण तन्तु और भीतर के कोष्ठों से रसारोहण तन्तु तैयार होता रहता है। इस तरह प्रारम्भिक रसारोहण और रसावरोहण तन्तु क्रमशः एक दूसरे से दूर होते जाते हैं। बहुत अधिक गौडवृद्धि हो जाने पर प्रारम्भिक रसारोहण तन्तु तो पिथ के चारों ओर अब भी स्पष्ट मालूम पड़ता है पर प्रारम्भिक रसा-वरोहण तन्तु प्रायः दिखाई भी नहीं पड़ता। केवल हार्डवास्ट के टुकड़े बाहर की ओर स्पष्ट दिखाई देते हैं।

गौड़ रसारोहणतन्तु प्रायः रसारोहण कोष्ट, रसारोहण

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नलिका, रसारोहण पैरेनकाइमा तथा स्क्लेरेनकाइमेटस् सूत्रों का बना होता है। रसारोहण पैरेनकाइमा द्वारा पोषक रस का व्यापन (Diffusion) और स्टार्च आदि का संचय होता है। गौंड रसावरोहण तन्तु सीव नलिका, सहकारी कोष्ट तथा रसावरोहण पैरेनकाइमा का बना होता है। सीवनलिकाओं तथा सहकारी कोष्टों द्वारा प्रोटीड आदि का वितरण और रसावरोहण पैरेनकाइमा द्वारा कार्बोहाइड्रेट श्रेणी के पदार्थों का वितरण और संचय होता है।

गौड़ मेडुलरी रे चौड़ाई में प्रायः एक से कुछ अधिक कोष्टों का और ऊंचाई में प्रायः २ से १५ कोष्टों का होता है और अर्धव्यास की दिशा में फैला रहता है। रसारोहण, रसावरोहण तथा मेडुलरी रे के पैरेनकाइमेटस् कोष्ट जड़ और तने दोनों में परस्पर सम्बन्धित रहते हैं जिससे रसावरोहण तन्तु द्वारा लाया हुआ निर्मित खाद्य पदार्थ संचय के लिये रसारोहण तन्तु में पहुँच जाता है और रसारोहण नलिकाओं से आया हुआ जल रसावरोहण तथा अन्य तंतुओं में पहुँच जाता है।

वार्षिक चक्र (Annual rings) :—प्रति वर्ष जितना रसारोहणतन्तु बनता है वह प्रायः निश्चित और अलग २ चक्रों में दिखाई देता है। इन्हीं चक्रों को वार्षिक चक्र कहते हैं। प्रतिवर्ष की प्रारम्भ को बनी हुई नलिकायें संख्या में अधिक और बहुत चौड़ी होती हैं क्योंकि उस समय वृद्धि अधिक वेग से होती है और बाहरी तन्तुओं का दबाव अधिक नहीं रहता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अन्त की बनी हुई नलिकायें कम चौड़ी, संख्या में थोड़ी और मोटे तथा लिग्निनयुक्त कोष्ठावरण की होती हैं। इसीसे प्रति वर्ष के चक्र अलग २ मालूम होते हैं। इन चक्रों की संख्या से प्रायः वृक्षों की अवस्था का भी अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि हर साल प्रायः एक ही चक्र बनता है।

वृक्षों का काष्ठ भाग प्रायः दो भागों में विभक्त रहता है। मध्यभाग प्रायः रंग में काला और बाहरी भाग हलके रंग का होता है। पहले को काष्ठसार या कठोरकाष्ठ (Heart wood अथवा Duramen) और दूसरे का मृदुकाष्ठ (Sap-wood अथवा Alburnum) कहते हैं। दूसरे में कम से कम काष्ठपैरेनकाइमा के कोष्ठ जीवन-युक्त होते हैं और पोषक रस का वितरण करते हैं। काष्ठसार की सब नलिकायें तथा कोष्ठ निर्जीव होते हैं और उनके भीतर अथवा उनके कोष्ठावरणों में रेजिंन, गोंद, टैनिन तथा रंजक पदार्थ (Pigments) जमा हो जाते हैं। इन पदार्थों से कोष्ठ तथा नलिकायें भर जाती हैं और वितरण का कार्य इनसे नहीं हो पाता। कहीं २ तो जीवित कोष्ठों से वहिरुद्भेद निकल कर और इनमें प्रवेश कर इनके मार्ग को पूर्णतः बन्द कर देते हैं। इन वहिरुद्भेदों को टाइलोसेस (Tyloses) कहते हैं। टैनिन आदि के ही कारण काष्ठसार काला और अधिक कठोर हो जाता है। काष्ठसार टैनिन के कारण अधिक चिर-स्थायी होता है और जल्दी सड़ता नहीं।

अंतःचर्म में गौड़वृद्धि:— भीतर गौड़वृद्धि होने से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चर्मभाग पर बहुत तनाव पड़ता है जिससे बाह्यचर्म फट जाता है। इसका स्थान लेने के लिये कार्क तथा गौड़ अतःचर्म की उत्पत्ति होती है। कार्कोत्पादक वृद्धिशील तह (Phellogen) पहले प्रायः बाह्यचर्म के नीचे बनती है परन्तु प्रतिवर्ष प्रायः भीतर की ओर बढ़ती जाती है यहां तक कि, कभी २ गौड़ रसावरोहणतन्तु के भीतर तक पहुँच जाती है। चूंकि कार्क के बाहर के भागों को खाद्य पदार्थ नहीं मिलता इसलिये वे सब सूख कर छाल के रुप में पौधे से अलग हो जाते हैं। इस छाल में गौड़ रसावरोहणतन्तु से लेकर बाहर के सभी तन्तु हो सक्ते हैं। कार्कोत्पादक वृद्धिशील कोष्ठों से बाहर को ओर कार्क और भीतर की ओर गौड़ अन्तःचर्म बनता है। प्रायः देखा गया है कि वृद्धिशील तह का उत्पत्तिस्थान जितना ही भीतर की ओर होता है उतना ही अधिक और शीघ्र उसके द्वारा गौंड़ अन्तःचर्म बनता है। पहले कुछ वर्षों तक यह प्रायः बहुत कम मात्रा में अथवा बिलकुल नहीं बनता।

कार्कतन्तु के कोष्ठ ईंटों की तरह होते हैं और इस प्रकार क्रमबद्ध रहते हैं कि उनके बीच में अन्तर्कोष्ठीय स्थान नहीं होते। इनके कोष्ठावरण पतले पर सुबेरीनयुक्त होते हैं अतः यह बहुत अच्छे जलाभेद्य आच्छादन का काम देता है। इससे अन्दर के तन्तु बाह्याघात से, कीड़ों के आक्रमण से तथा तापक्रम सम्बन्धी परिवर्तनों के हानिकारक प्रभावों से बचे रहते हैं। कहीं २ एकही वृद्धिशील तह कई वर्षों तक काम करती है

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जिससे बहुत चौड़ा कार्कतन्तु बन जाता है। व्यापार में आने-वाला बोतलों का कार्क इसी तरह बना होता है। बोतलों में बन्द द्रवपदार्थों के वाष्पीभवन को रोकने के लिये ही उनमें कार्क लगाया जाता है।

रसारोहणतन्तु के बाहर के सम्पूर्ण भाग को प्रायः छाल ही कहते हैं क्योंकि उसके बाहर के कोष्ठों के कोष्ठावरण पतले और प्रायः आसानी से फट जाने वाले होते हैं इसलिये छाल को अलग करते समय प्रायः बाहर का पूरा हिस्सा निकल आता है और सम्पूर्ण को हम छाल कह बैठते हैं। परन्तु असली छाल वस्तुतः उन मृत तन्तुओं के समूह को कहते हैं जो कार्कोत्पादक तह के बाहर होते हैं। चूंकि तने हर साल मोटे होते जाते हैं इसलिये छाल भी सूख कर उनसे अलग होती रहती है। यद्यपि पहली कार्कोत्पादक तहें पूरे चक्र अथवा छोटे २ टुकड़ों के रूप में प्रगट होती हैं परन्तु पहली अवस्था में छाल प्रायः सर्वदा गोले टुकड़ों के रूप में अलग होती है और दूसरी अवस्था में वह अनिश्चित आकार के छोटे २ टुकड़ों में छूटती है।

गौंडनासिका छिद्र (Lenticels) :—कार्कतन्तु के बनने के पहले वायव्य विनिमय के लिये प्रायः बाह्यचर्म में नासिका छिद्र (Stomata) होते हैं और कार्क के बन जाने पर उनका कार्य गौंड नासिकाछिद्रों द्वारा होता है। ये रचनायें छिद्रवत् नहीं होती बल्कि कुछ २ उठे हुये और गोले या अंडाकार कोष्ठ समूहों से बनी होती हैं। इनके कोष्ठ छोटे होते हैं जिनके बीच २

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में अन्तर्कोष्ठीय स्थान भी पाये जाते हैं। भीतर के अन्तर्कोष्ठीय स्थानों से इनका सम्बन्ध रहता है जिससे भीतरी भागों को पूर्ववत् ताज़ी हवा मिला करती है।

एकदली तना

द्विदली तनों की तरह इनमें भी एक कोष्ठतह का वाह्यचर्म होता है। अन्तःचर्म मुख्यतः पतले आवरण वाले पैरेनकाइमेटस कोष्ठों का वना होता है। इसके भीतर और रसवाहक वंडलों के ठीक बाहर की ओर प्रायः स्क्लेरेनकाइमेटस कोष्ठों का बना हुआ दृढ़कारी भाग पाया जाता है जो परिचक्र के परिवर्तन से बना होता है। अन्तःचर्म प्रायः वायवीय तनों में पतला और भौमिक तनों में मोटा होता है। अन्तःचर्म के भीतर भी कभी २ कोलेनकाइमा और स्क्लेरेनकाइमा के तन्तु पाये जाते हैं। इन्डो-डर्मिस प्रायः स्पष्ट नहीं होता। रसवाहक वंडल अनियमित रूप से छिटके रहते हैं जिससे मूलतन्तु में पिथ और मेडुलरी रे के विभाग स्पष्ट नहीं होते। मूलतन्तु पैरेनकाइमेटस कोष्ठों का होता है।

रसवाहक वंडल संयुक्त तथा पार्श्वक्रमी होते हैं पर उनमें कैम्बियम नहीं होता। वे प्रायः अलग २ स्क्लेरेनकाइमेटस मूल-तन्तु से घिरे रहते हैं। उनमें रसारोहणतन्तु भीतर की ओर और रसावरोहणतन्तु बाहर की ओर होते हैं। रसारोहणतन्तु प्रायः V आकार का होता है। प्रारम्भिक नलिकायें V के शीर्ष पर होती हैं और कहीं २ उनके स्थान में अन्तर्कोष्ठीय स्थान या खात

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भी पाये जाते हैं, जैसे मक्का में। बिन्दुयुक्त बड़ी २ नलिकायें V के दोनों बाज़ुओं पर और छोटी २ नलिकायें उनके बीच में होती हैं। रसारोहण पैरेनकाइमा भी बीच २ में मौजूद रहता है। रसावरोहण तन्तु का प्रारम्भिक भाग बाहर की ओर होता है और उसमें रसावरोहण पैरेनकाइमा नहीं होता।

यद्यपि रसवाहक बंडल कामन होते हैं पर तनों में उनका मार्ग द्विदलीतनों की तरह नहीं होता। द्विदलीतनों में वे अन्तःचर्म को तिरछे होकर पार करते हैं और फिर बाह्यचर्म के समानान्तर और उससे बराबर दूरी पर आगे बढ़ते जाते हैं। एकदली तनों में वे पहले बीच की ओर बढ़ते हैं फिर तिरछे होकर बाहर की ओर लौट आते हैं जिससे अनुप्रस्थविच्छेद के चित्र में वे छिटके हुये रहते हैं पर द्विदली तनों में प्रायः एक चक्र में पाये जाते हैं। कुछ पौधों में ये बंडल मूलतन्तु के निश्चित भागों में ही पाये जाते हैं। जैसे गोधूमवर्ग के पौधों में पर्वों की लम्बवत् वृद्धि होने से बंडल भी प्रायः लम्बवत् हो जाते हैं और पर्व चूंकि इनमें पोले होते हैं इसलिये सब बंडल बाह्यचर्म के समीप ही पाये जाते हैं। ग्रंथिओं पर ये बंडल इस प्रकार परस्पर गुंथे रहते हैं कि वहां पोले पर्वों के बीच एक व्यवधान सा बन जाता है।

गौंडवृद्धि:—एकदली पौधे प्रायः छोटे और अल्पजीवी होते हैं इसलिये गौंड तन्तुओं की आवश्यकता उन्हें नहीं होती। प्रारम्भिक तन्तुओं के कोष्ट केवल क़द में बढ़कर कहीं २ तने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

को मोटा कर देते हैं। ताड़ जाति के पौधों में भी, जो बहुत बड़े बड़े होते हैं, गौड़वृद्धि नहीं होती। इनमें तनों का वृद्धिशील अग्र पहले ही से मोटा रहता है और दृढ़कारी तथा रसवाहक तन्तु पहले ही से पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहते हैं। इन तन्तुओं के कोष्ठ कद में बढ़ सकते हैं पर वे अपनी संख्या वृद्धि कभी नहीं करते। पलांडुवर्ग के कुछ बड़े २ पौधे (यक्का और ड्रसीना) द्विदली तनों की तरह गौड़वृद्धि करते हैं। परिचक्र में एक गौंड वृद्धिशील तह प्रगट होती है जिससे मुख्यतः भीतर की ओर रसवाहक बंडल बनने लगते हैं। इन बंडलों में रसावरोहण तन्तु बीच में और रसावरोहण तन्तु से घिरा हुआ रहता है। कार्कोत्पादक तह से इनमें कार्क तन्तु भी बन जाता है।

घावों की पूर्त्ति :—जब कोई भाग कट जाता है तो कटे हुये पृष्ठ के जीवित कोष्ठ विभक्त होकर पैरेन काइमेटस कोष्ठों का नया तन्तु बना कर घाव को भर लेते हैं। इसी नये तन्तु को कैलस (Callus) कहते हैं। इसके बाहरी कोष्ठों से रक्षार्थ कार्क भी बन जाता है। जब घाव गहरी होती है और रसारोहण के भीतर तक पहुँच जाती है तो वहां भी कैलस तथा कार्क तन्तु बन कर घाव भर देते हैं। इसके अतिरिक्त वे कैम्बियम के चक्र को भी पूरा कर देते हैं। पर कैम्बियम के इसभाग से बने हुये गौंड तन्तु भिन्न होते हैं और कैम्बियम के शेष भाग से बने हुये गौड़ तन्तुओं से भी नहीं मिलते। कटे हुये भागों पर कड़ी २ गांठे इसी तरह बनी होती हैं। कटे हुये

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तनों के पृष्ठों से कभी २ जो शाखायें निकल आती हैं वे इसी कैलस से निकलती हैं।

शाखाओं की उत्पत्तिः—नियमित पार्श्वीय शाखाओं की उत्पत्ति अग्रपर प्रारम्भिक वृद्धिशील तन्तुओं से होती है। इनकी उत्पत्ति वहिर्जात् होती हैं। पहले केवल डरमेटोजन और पेरिब्लेम का एक छोटा सा वहिरुद्भेद प्रगट होता है। कुछ समय के बाद पेरीब्लेम का मध्य भाग प्लेरोम में परिवर्तित होकर तने के प्लेरोम से मिलता है। इसके बाद पत्तिआं भी इस वहिरुद्भेद से निकल कर इसके अग्र को ढकने लगती हैं। सम्पूर्ण रचना कलिका का रूप धारण करलेती है जिससे अन्ततः शाखा बनती है।

जड़की आन्तरिक रचना

जड़ के भिन्न २ भांगों की रचना भिन्न २ होती है। जड़-कोषतन्तु, जो जड़ के अग्र पर होता है, कई कोष्टतहों का होता है और बाह्यचर्मोत्पादक कोष्टों के विभक्त होने से बना होता है। इसके पीछे के भाग में कोष्ट वेग से विभक्त होते रहते हैं। जैसे २ जड़कोष के कोष्ट छीजते जाते हैं तैसे २ इस भाग के कोष्ट उनका स्थान लेते जाते हैं। इसके पीछे के भाग में तीनों संस्थानों के उत्पादक तन्तु स्पष्ट हो जाते हैं। इस भाग के कोष्ट केवल लम्बाई में बढ़ते रहते हैं। चौथे भाग में भिन्न २ तन्तुओं का बनना प्रारम्भ हो जाता है। इसके बाह्य पृष्ट पर जड़रोम

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होते हैं। पांचवें अथवा परिपक्व भाग में जड़ के भिन्न २ तन्तु पूर्ण विकास की अवस्था में पाये जाते हैं।

प्रायः द्विदली जड़ों में जड़कोष की भीतरी अन्तिम तह पीछे आकर एक कोष्ठतह का बाह्यचर्म बना लेती है, पर एक-दली (मक्का) जड़ों में वाह्यतम कोष्ठतह जिससे जड़रोम निकलते हैं, अन्तःचर्म की सबसे बाहरी तह होती है। इसीलिये जड़रोमोत्पादक वाह्यचर्म को यहां इपोब्लेमा (Epiblema) कहते हैं।

अन्तःचर्म प्रायः पैरेनकाइमेटस कोष्ठों का होता है जिनके बीच २ में अन्तर्कोष्ठीय स्थान भी पाये जाते हैं। कभी २ वाह्य-चर्म के ठीक नीचे न्यूनाधिक मोटे कोष्ठावरण वाले कोष्ठों की कुछ तहें भी पाई जाती हैं जिसे इक्सोडर्मिस (Exodermis) कहते हैं। इन्डोडर्मिस प्रायः बहुत स्पष्ट होता है। जड़ रोम युक्त भाग में इनकी वे दीवालें अधिक मोटी और क्यूटीन युक्त होती हैं जो अर्धव्यास की दिशा में होती हैं। इन दीवालों के बीच में अन्तर्कोष्ठीय स्थान नहीं होते जिससे ये कोष्ठ जलव्यापन में कुछ बाधा नहीं उपस्थित करते, परन्तु गैसव्यापन में बाधक होते हैं। परिपक्व भाग में इन कोष्ठों को भीतरी दीवालें भी मोटी तथा क्यूटीन युक्त हो जाती हैं। परिचक्र एक कोष्ठतह का और जीवित तथा पैरेनकाइमेटस् कोष्ठों का बना होता है। साधारण रचना का होते हुये भी जड़ों में यह बड़ा महत्वपूर्ण कार्य करता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रसवाहक वंडलों की संख्या में प्रायः बहुत भिन्नता होती है। रसारोहण तथा रसावरोहण तन्तुओं के वंडल अलग २ होते हैं और एकान्तर क्रम में पाये जाते हैं। इन दोनों के प्रारम्भिक भाग बाहर की ओर होते हैं। समीपवर्त्ती वंडलों के बीच २ में पैरेनकाइमेटस मूलतन्तु होते हैं। रसारोहण वंडल प्रायः बीच में मिले रहते हैं जिससे प्रायः पिथ का अभाव होता है। पिथ के कोष्ठ पैरेनकाइमेटस और कहीं २ स्क्लेरेनकाइमेटस होते हैं चूंकि जड़ों पर अधिकतर केवल भूम्याकर्षण का तनाव पड़ता है इसलिये इनके बीच में हो पौष्टिक तन्तुओं की आवश्यकता होती है। इसीलिये रसवाहक वंडल यहां अधिक केंद्रीभूत होकर प्रायः बीच में मिल जाते हैं। पिथ अगर रहता है तो पौष्टिक-तन्तुओं से सम्पन्न होता है। तनों में चूंकि ज़ोर बाहर की ओर पड़ता है इसलिये उनमें पौष्टिकतन्तु बाहर ही की ओर होते हैं।

एकदली और नई द्विदली जड़ों की रचना प्रायः एक ही तरह की होती है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। दोनों को एक दूसरे से अलग करने के लिये तीन बातों पर ध्यान रखना चाहिये। (१) द्विदली जड़ों में रसवाहक वंडलों की संख्या प्रायः २ से ५ तक होती है परन्तु एकदली जड़ों में वे संख्या में बहुत अधिक होते हैं। (२) गौड़वृद्धि केवल द्विदली जड़ों में होती है। (३) एक दली जड़ों में विन्दुमय रसवाहक नलिकायें बहुत बड़ी और गोले विच्छेदवाली होती हैं परन्तु द्विदली जड़ों में वे छोटी होती है और उनका अनुप्रस्थ विच्छेद प्रायः बहुभुजाकार होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गौड़वृद्धिः—द्विदली बहुवार्षिक जड़ों में तनों की तरह गौड़वृद्धि होती हैं। चूंकि उनमें पहले से कैम्बियम नहीं होता, इसलिये रसावरोहण बंडल के भीतर के, रसारोहण और रसावरोहण बंडलों के बीच के पैरेन्काइमेटस कोष्ठ, तथा रसारोहण वंडलों के सामने के परिचक्र के कोष्ठ क्रमशः वृद्धिशील होकर वृद्धिशील कोष्ठों का एक टेढ़ा मेढ़ा चक्र बना लेते हैं। तने के कैम्बियम की तरह इस तह से भी बाहर की ओर रसावरोहण तन्तु और भीतर की ओर रसारोहण तन्तु बनते हैं। चूंकि रसारोहण तन्तु के भीतर वाले वृद्धिशील कोष्ठ अधिक वेग से विभक्त होते हैं इसलिये थोड़े ही समय में वृद्धिशील तह पूर्णतः गोली हो जाती है। प्रारम्भिक रसारोहण तन्तु के सामने पैरेनकाइमेटस कोष्ठों के चौड़े २ मेडुलरीरेज़ भी बनते हैं। प्रारम्भिक रसावरोहण वंडल बहुत बाहर की ओर आ जाने से कभी २ स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ते।

कुछ मांसल जड़ों में गौडवृद्धि दूसरी तरह से होती है। उनमें प्राथमिक वृद्धिशील तह कुछ समय के बाद अकर्मण्य हो जाती है, इसलिये बाहर के तन्तुओं से नई वृद्धिशील तहें बनती रहती हैं और उनसे गौंडतन्तुओं के नये २ चक्र बनते जाते हैं। प्रायः सभी मांसल जड़ों में गौडतन्तुओं का अधिकांश पैरेनकाइमेटस कोष्ठों का होता है जो खाद्य पदार्थों का संचय करते हैं। द्विदली जड़ों के मूलतन्तुओं में भी तनों की तरह गौड़ वृद्धि होती है। परिचक्र से कार्कोत्पादक तह बनकर कार्क तथा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गौंड अन्तःचर्म तैयार करती है। नई २ कार्कोत्पादक तहें भी प्रायः गौड़ अन्तःचर्म में बना करती हैं जिनका उत्पत्तिस्थान क्रमशः भीतर की ओर बढ़ता जाता है। डूसोना तथा यक्का जैसे बड़े एकदली पौधों की जड़ों में भी गौड़वृद्धि होती है। इनमें वृद्धिशील तह परिचक्र अथवा अन्तःचर्म से बनती है। इनमें कार्कोत्पादक तह अन्तःचर्म के बाहरी तहों में तैयार होती है।

मूल-शाखा की उत्पत्तिः— मूल-शाखायें साधारणतः परिचक्र से निकलती हैं अतः उन्हें अन्तर्जात कहते हैं। जनक-मूल के अग्र के कुछ पीछे, जहां गौड़वृद्धि का प्रारम्भ नहीं हुआ रहता, प्रारम्भिक रसारोहण बंडल के सामने वाले परिचक्र के कुछ कोष्ठ बाहर को ओर बढ़ने लगते हैं और विशेष रीति से विभक्त होकर एक कोष्ठसमूह बना लेते हैं जो धीरे २ तीनों संस्थानों के उत्पादक भागों में बट जाता है। इसके सिरे पर पहले इन्डोडर्मिस और अन्तःचर्म के कुछ कोष्ठ एक पाचक कोष (Digestive sac) बना लेते हैं। इसमें एक ऐसा रस बनता जिसमें मार्ग में पड़नेवाले अन्तःचर्म के कोष्ठ गलकर नष्ट हो जाते हैं। इस तरह वह कुछ समय के बाद मूल को फाड़ कर बाहर निकल आता है। जड़ शाखाओं की प्रायः उतनी ही कतारें जनकमूल पर होती हैं जितने उनमें रसारोहण बंडल होते हैं। कुछ एकदलो (धान्यवर्ग) तथा द्विदली (गर्जरादि वर्ग) पौधों में पार्श्वीय जड़ें रसावरोहण के सामने से ही निकलती

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है। अनियमित जड़ें तथा अनियमित कलिकायें भी (गुल:व) प्राय: अन्तर्जात होती है। अनियमित कलिकाओं से निकलने वाली तथा परजीवी जड़ें (Sucking roots) भी प्राय: वहिर्जात होती हैं।

जड-तन्तुओं का पुनः संगठनः—चूंकि पौधों के सम्पूर्ण अक्षमें उनके सब तन्तु अटूटक्रम से फैले रहते हैं इसलिये यह स्पष्ट है कि जड़ और तनों के तन्तुक्रम में जो भिन्नता देखने में आती है वह हाइपोकाटिल नामक , जड़ और तने के बीच वाले भाग में प्रगट होती होगी। दोनों के अन्तःचर्म, इन्डोडर्मिस तथा परिचक्र के क्रम में कोई अन्तर नहीं होता। वाह्यचर्म में जो अन्तर होता है उसकी चर्चा ऊपर कर दी गई है। जड़ से तने में जाते समय सबसे अधिक परिवर्तन रसवाहकतन्तुओं में होता है। इनका उस समय एक प्रकार का पुनः संगठन सा हो जाता है। उस समय जितने परिवर्तन होते हैं सबमें मूल-परिवर्तन यह है कि रसारोहण वंडल अपने अक्ष पर १८० अंश तक घूम जाता है जिससे उसका प्रारम्भिक भाग वाहर से भीतर की ओर आ जाता है। अन्य प्रकार के परिवर्तन भिन्न २ पौधों में भिन्न २ प्रकार के होते हैं। अधिकतर रसारोहण और रसा-वरोहण वंडल के टुकड़े पास वाले रसारोहण वंडल के टुकड़ों से वाहर की ओर मिल जाते हैं जिससे जड़ में जितने स्वतंत्र वंडल होते हैं तने में उतने ही संयुक्त वंडल हो जाते हैं। कुछ पौधों में केवल रसारोहण के और कुछ में केवल रसावरोहण

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के वंडल विभक्त होते हैं जिससे उनके तनों में वंडलों की संख्या आधी हो जाती है। चूंकि रसावरोहण वंडल रसारोहण वंडलों की तरह अपने अक्ष पर नहीं घूमते, अतः उनके प्रारम्भिक भाग दोनों में बाहर ही की ओर रह जाते हैं।

पत्ती की आन्तरिक रचना

पत्रनाल:—आन्तरिक रचना में पत्रनाल तने से बहुत सादृश्य रखता है। इसका बाह्यचर्म प्रायः तने के बाह्यचर्म के समान होता है। अतःचर्म प्रायः न्यूनाधिक लम्बे कोष्ठों का बना होता है जिनके बीच २ में अन्तर्कोष्ठीय स्थान होते हैं और बाहर के कोष्ठों में हरितवर्णवाहक भी होते हैं। इन्डोडर्मिस और परिचक्र मौजूद रहने पर भी प्रायः स्पष्ट नहीं मालूम होते। अन्तःचर्म के बाहरी भाग में पौष्टिक तन्तु तथा कार्क तन्तु और परिचक्र में भी कभी २ पौष्टिक तन्तु पाये जाते हैं। आवृतबीजी पौधों में एक या एक से अधिक रसवाहक वंडल तने से पत्रनाल में प्रवेश करते हैं और वहां वे प्रायः बहुत से छोटे २ वंडलों में विभक्त हो जाते हैं जो सब मिलकर प्रायः आर्धवृत्त बना लेते हैं। प्रत्येक वंडल में रसारोहण तन्तु नतोदर और रसावरोहण तन्तु उन्नतोदर पृष्ठ की ओर होते हैं।

फलक:—पत्रनाल के तन्तु पत्ती में जाकर प्रायः बदल जाते हैं। द्विपृष्ठी पत्तिओं में बाह्यचर्म प्रायः उसी तरह का होता है जैसा तनों में। ऊपर तथा नीचे दोनों पृष्ठों पर यह

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पाया जाता है। क्यूटीन, क्यूटीनपट्ट, ब्लूम तथा रोमाच्छादन यहां भी वाह्यचर्म पर हो सकते हैं। यहां भी वाह्यचर्म के कोष्ठों के बीच में अन्तर्कोष्ठीय स्थान नहीं होते। परन्तु चूंकि पौधों को वाह्यवातावरण से वायव्य विनिमय के लिये सम्बन्ध रखना आवश्यक होता है इसलिये वायवीय पत्तिओं और तनों के वाह्यचर्म में वहुत से छोटे २ छिद्र होते हैं जिनके द्वारा उनके भीतर के अन्तर्कोष्ठीय स्थान वाह्यवातावरण से सम्बन्धित रहते हैं। इन छिद्रों को नासिका छिद्र (Stomata) कहते हैं।

नासिका यन्त्र (Stomatal apparatus):— नासिका छिद्र के दोनों ओर दो विशेष प्रकार के कोष्ठ होते हैं जिन्हें रक्षक कोष्ठ (Guard cells) कहते हैं। ये कोष्ठ प्रायः अर्धचन्द्राकार होते हैं और इनके अन्दर जीवनमूल, तथा न्यूक्लियस के अतिरिक्त हरितवर्णधारक भी होते हैं। रक्षक कोष्ठों की वे दीवालें, जो छिद्र को घेरे रहती हैं, मोटी होती हैं। उनका केवल बीचवाला भाग पतला होता है। इन कोष्ठों की शेष तीनों तरफ की दीवालें भी पतली होती हैं। मोटी दीवालों के ऊपर और नीचे के मोटे भागों के कोर निकले रहते हैं जो कभी २ परस्पर मिल जाते हैं और छिद्र बन्द हो जाता है। जब रक्षक कोष्ठों में जल अधिक आ जाता है और उनकी पतली दीवालें खिंच उठती हैं तो छिद्र खुल जाते हैं। जल की कमी होने पर वे फिर बन्द हो जाते हैं। चूंकि जलत्याग इन्हीं छिद्रों द्वारा होता है इसलिये पौधे आवश्यकतानुसार जल-

Digitization by American Academy of Indic Studies: AAIS(USA)

Harsh ... Gupta. 5.7.1960

त्याग को कम, अधिक या बिल्कुल बन्द कर सकते हैं। ये छिद्र अधिकतर पत्तिओं के निचले पृष्ठ पर होते हैं। जल के ऊपर तैरती हुई कमल आदि की पत्तिओं में ये केवल ऊपरी पृष्ठ पर होते हैं। मांसल खड़ी पत्तिओं में ये प्रायः दोनों ओर होते हैं।

मूल तन्तु :— दोनों पृष्ठों के बाह्यचर्म के बीच में अधिक भाग पेरेनकाइमेटस मूलतन्तुओं का बना होता है। ऊपरी पृष्ठ के नीचे एक या अधिक ऐसी कोष्ठ तहें होती हैं जिनके कोष्ठ लम्बे और पृष्ठ से समकोण बनाते हैं। उनके कोष्ठों में हरितवर्णवाहक भी होते हैं और खाद्य पदार्थों का निर्माण मुख्यतः इसी तन्तु द्वारा होता है। इस तन्तु को पैलिसेड (Palisade) तन्तु कहते हैं। इस तन्तु में अन्तर्कोष्ठीय स्थान नहीं होते परन्तु इसके प्रत्येक कोष्ठ एक ऐसे अन्तर्कोष्ठीय स्थान से मिले रहते हैं जिसका सम्बन्ध भीतर के अन्तर्कोष्ठीय स्थानों से होता है। इसके नीचे का मूलतन्तु प्रायः ऐसे कोष्ठों का बना होता है जो अनियमित रूप से क्रमबद्ध रहते हैं और जिनके बीच २ में अन्तर्कोष्ठीय स्थान अधिक होते हैं। इन कोष्ठों के अन्दर भी हरितवर्णवाहक पाये जाते हैं। इस तन्तु को स्पंजी तन्तु (Spongy tissue) कहते हैं। बहुतसी पत्तिओं में पैलिसेड कोष्ठ से छोटे २ कोष्ठ नियमित रूप से सम्बद्ध रहते हैं जिन्हें कलेक्टिंग कोष्ठ कहते हैं। ये कोष्ठ पैलिसेड द्वारा बने हुये खाद्य पदार्थों का संचय करके उन्हें क्रमशः आगे बढ़ाते हैं। मूलतंतु के बीच में जगह २ पर रसवाहक बंडल पाये जाते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इन वंडलों में रसारोहणतन्तु ऊपर की ओर और रसाव-रोहणतन्तु नीचे की ओर होते हैं। बड़े २ वंडल इन्डोडर्मिस तथा परिचक्र से घिरे रहते हैं पर वे स्पष्ट तभी मालूम पड़ते हैं जब परिचक्र में पौष्टिकतन्तु और इन्डोडर्मिस में स्टार्चकण होते हैं। पौष्टिकतन्तु प्रायः रसावरोहणतन्तु से लगा हुआ उसके बाहर की ओर होता है। रसवाहकवंडल जैसे २ मुख्य पर्शुक (Midrib) से दूर होते जाते हैं उनकी रचनात्मक जटिलता कम होती जाती है। बड़े २ वंडलों में रसारोहण नलिकायें, कोष्ठ तथा पैरेनकाइमा, और रसावरोहण भाग में रसावरोहण नलिकायें, सहकारी कोष्ठ तथा पैरेनकाइमा सभी पाये जाते हैं परन्तु छोटे बन्डलों में इन रचनाओं का क्रमशः लोप हो जाता है। जहां ये नसें स्वतंत्र रुप से अपना अन्त करती है वहां वंडल एक या दो रसारोहण कोष्ठ का ही बना होता है। यहां रसावरोहण का कार्य प्रायः इन्डोडर्मिस के कोष्ठों द्वारा होता है।

किसी २ पौधे में (Garden Nasturtium) नासिका छिद्रों के अतिरिक्त बड़े २ छिद्र भी पाये जाते हैं जिनके रक्षक कोष्ठों में जीवनमूल नहीं होता और न तो उनके कोष्ठ ही विशेष प्रकार के कोष्ठावरणों से युक्त होते हैं। इसीलिये वे सर्वदा खुले रहते हैं। इन छिद्रों को जलछिद्र (Water stomata) कहते हैं क्योंकि इनके द्वारा जलत्याग वाष्परुप में नहीं वरन् द्रव रुप में होता है। ये समूहवद्ध होकर कहीं २ पत्राग्र तथा पत्रधार के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दातों पर होते हैं। इनका सम्बन्ध भीतर के जलगंड़ों (Water-glands) से होता है जो छोटे २ जीवित कोष्ठों के बने होते हैं और जिनके अन्तर्कोष्ठीय स्थान जल से भरे रहते हैं। इन जलगंडों का सम्बन्ध रसवाहककोष्ठों से होता है जो सूक्ष्म नसों के अग्रभाग पर होते हैं।

पत्तिओं की आन्तरिक रचना में परिस्थिति के अनुसार बड़ी विभिन्नता पाई जाती है। जिन पौधों की पत्तियां सीधे ऊपर को ओर उठी रहती हैं और जिनके दोनों पृष्ठों पर किरणें गिरती हैं ऐसी पत्तिओं को समपृष्ठी (Iso-bilateral) कहते हैं, जैसे यूकलिप्टस की पत्ती। इनमें या तो उपर्युक्त प्रकार का पैलिसेड तन्तु होता ही नहीं या दोनों तरफ एक ही तरह के कोष्ठ पाये जाते हैं जिनमें हरितवर्णवाहक मौजूद रहते हैं। कहीं २ ऐसी पत्तिओं में पैलिसेड तन्तु दोनों ओर होता है। इनमें रसवाहक बंडल भी दोनों ओर होते हैं जिनका रसावरोहण भाग बाहर की ओर और रसारोहण तन्तु भीतर होता है। तीसरी प्रकार की पत्तियां मांसल पौधों में पाई जाती हैं। वे प्रायः बेलनाकार होती हैं और भीतर के पैरेनकाइमेटस कोष्ठ प्रायः सब एक तरह के होते हैं। पैलिसेड कोष्ठों की तरह कुछ कोष्ठ लम्बे भी होते हैं और उनके बीच में अन्तर्कोष्ठीय स्थान भी होते हैं। हरितवर्णवाहक बाहरी तहों में अधिक होते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पत्ती की उत्पत्ति और विकासः—तने के वृद्धिशील अग्र पर पत्ती पहले एक छोटे पार्श्वीय वहिरुद्भेद के रूप में निकलती है जो तने के डर्मेटोजन तथा पेरिब्लेम से बना होता है। इसीलिये पत्ती को वहिर्जात कहते हैं। पहले सब कोष्ट वृद्धिशील होते हैं पर कुछ समय के बाद केवल मध्य तथा आधार भाग के कोष्ट वृद्धिशील रह जाते हैं। पत्ती की पूर्ण कोष्ट-संख्या इसी भाग से पूर्ण होती है। इस समय भी पत्ती क़द में वहुत छोटी और कलिकाबद्ध रहती है। कलिका के विकास के साथ पहले के बने हुये कोष्टों के क़द में बढ़ने से ही पत्ती बढ़ती है। यहां भी रसवाहक तन्तुओं के उत्पादक भाग पेरिब्लेम से बनते हैं जो रसवाहकतन्तुओं में परिवर्तित होकर तने के रसवाहकतन्तुओं से मिल जाते हैं। चूंकि पत्तिओं में वृद्धिशील भाग अग्रस्थित नहीं होता इसलिये इनमें रसवाहक-बंडलों का अन्त भी भिन्न रीति से होता है। अधिकतर छोटी छोटी नसें धार के समीप एक दूसरे से मिल जाती हैं परन्तु कहीं २ वे अपनी रचनात्मक जटिलता क्रमशः कम करती हुई स्वतंत्र रुप से पत्ती के साधारण तन्तु में विलीन हो जाती हैं।

पत्रापात (Leaf-fall) :—वहुत से पौधे प्रतिवर्ष स्वभावतः अपनी पत्तियां गिरा देते हैं। पत्तिओं के गिरने के पहले पत्राधार के पास के कुछ कोष्ट विभक्त होकर पतली दीवाल वाले कोष्टों का एक परदा तैयार कर देते हैं जिसे एब्सिसलेअर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(Absciss layer) कहते हैं। उसके बाहर के कोष्ठावरण गल कर नष्ट हो जाते हैं जिससे हवा के हलके झोंके में भी पत्तिआं गिर जाती हैं। यहां भी नवीन प्रत्यक्त पृष्ठ की रक्षा के लिये कार्कतन्तु बन जाता है। रसवाहक नलिकायें भी प्रायः गोंद आदि से बन्द कर दी जाती हैं जिससे कोष्ठ-रस बाहर नहीं निकलने पाता।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद ११

वर्गीकरण तथा आवृतबीजी प्राकृतिक वर्ग

प्राचीन वर्गीकरण और उनके सिद्धान्तः—वनस्पतिआं आदि काल से जान्तव एवं मानव जीवन की रक्षा की प्रधान साधन रहीं हैं अतः इस विशाल वनस्पति-साम्राज्य की असंख्य उपयोगी वनस्पतिओं की जानकारी प्राप्त करने के लिये उनका किसी न किसी प्रकार का वर्गीकरण अवश्य किया गया होगा, ऐसा सम्भव प्रतीत होता है। यह निश्चित है कि प्राचीनकाल में सम्पूर्ण उपयोगी तथा अनुपयोगी वनस्पतिओं का आजकी तरह विशुद्ध वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं किया गया था बल्कि केवल व्यवहारोपयोगी पौधों तक ही प्राचीन वनस्पतिशास्त्र सीमित था। इसीलिये प्राचीन ग्रन्थों में वनस्पतिओं के जो वर्गीकरण मिलते हैं उन सबका आधार व्यवहारिक उपयोगिता ही है। आयुर्वेद में वनौषधिओं के प्रायः शाकवर्ग, पुष्पवर्ग, फलवर्ग, कंदवर्ग अथवा मूलिनी और फलिनी औषधियों के वर्ग मिलते हैं। यहां उनके प्रयुक्तभाग को ही वर्गीकरण का आधार बनाया गया है। इसके अतिरिक्त कहीं २ वनस्पतियों की रहन-सहन (Hobit) जीवनक्रम तथा साधारण रचना को भी वर्गीकरण का आधार बनाया गया था। जैसे, चरक-संहिता में पौधों को उद्भिज कह कर ग्रन्थकार ने उन्हें वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि तथा वीरुद्ध वर्गों में विभक्त किया है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इस वर्गीकरण के अनुसार वनस्पति वर्ग में विना फूल के ही फल आते हैं, वानस्पत्य वर्ग में पुष्प के बाद फल आते हैं, औषधिवर्ग में फल के आने के बाद पौधे सूख जाते हैं, और वीरुध्वर्ग में लतायें होती हैं। इन वर्गीकरणों में कहीं २ रचना और उपयोगिता दोनों को दृष्टिपथ में रखा गया था जिससे शूकधान्य और शिम्बीधान्य जैसे वर्गों का निर्माण हुआ जो आधुनिक वर्गीकरण के शिम्बीवर्ग (Leguminosae) तथा गोधूम वर्ग (Gramineae) से बहुत सादृश्य रखते हैं।

विशुद्ध वैज्ञानिक वर्गीकरण पहले पहल ३५०. बी. सी. में थिओफ्रेटस (Theophratus) द्वारा किया गया जिसने आकृतिक समानता को ही अपने वर्गीकरण का एक मात्र आधार बनाया था। यही कारण है कि इस वर्गीकरण में ही शिम्बीवर्ग, गर्जरादि वर्ग, तुलसीवर्ग, तथा गेंदा वर्गादि आधुनिक प्राकृतिक वर्ग अलग किये जा सके थे। इसके बाद लगभग दो हजार वर्षों तक अनेक प्रयत्न हुये पर किसी नवीन संशोधित और महत्वपूर्ण वर्गीकरण का निर्माण नहीं हुआ। सन् १७३५ में लिनी (Linne) ने एक नया कृत्रिम वर्गीकरण निकाला जिसमें उसने विना पुष्प वाले सम्पूर्ण पौधों को गुह्येन्द्रिय श्रेणी (Cryptogams) में, और शेष पुष्पवाहक पौधों को दूसरी श्रेणी में रखा। पुष्पवाहक श्रेणी को उसने फिर पुष्पलिंगों की संख्या तथा उनके अन्य लक्षणों के आधार पर अनेक उपश्रेणियों में विभक्त किया। प्रत्येक उपश्रेणी के अन्दर उसने पुनः पुष्प-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

योनिओं की संख्या आदि के अनुसार भिन्न भिन्न जातियां अलग कर दी थी।

कृत्रिम तथा प्राकृतिक वर्गीकरण :—अब तक जिन वर्गीकरणों का उल्लेख किया गया है वे सब कृत्रिम (Artificial) कहे जाते हैं परन्तु इनके पश्चात् जिन वर्गीकरणोंका निर्माण किया गया, वे स्वाभाविक या प्राकृतिक (Natural) वर्गीकरण कहे जाते हैं। इन सब में औत्पत्तिक सम्बन्ध (Genetic relationship) को ही दृष्टिकोण में रखा गया था और इसीलिये भिन्न २ वनस्पतियों को श्रेणीबद्ध करने में उनकी सम्पूर्ण आकृतिक समानताओं पर ध्यान दिया गया था। सबसे पहले ए० पी० कैन्डोल ने सन् १८१३ में इस ढंग का वर्गीकरण प्रारम्भ किया था जिसमें उसने जननेन्द्रिओं के अतिरिक्त वानस्पतिक लक्षणों की सादृश्यता को भी स्थान दिया। पचास साठ वर्षों में यह इतना पूर्ण और विस्तृत बना दिया गया कि अब भी लोग उसे कभी २ काम में लाते हैं। इसके बाद "बेंथम और हूकर", "एंगलर और प्रेंटिल", तथा अन्य वैज्ञानिकों ने अलग २ वर्गीकरण निकाले, पर इन सबमें जो अन्तर देखने में आते हैं वे केवल विकास-विधि सम्बन्धी मतान्तरों के कारण हैं अन्यथा इन सबका आधार औत्पत्तिक एकता तथा आकृतिक समानता ही है।

औत्पत्तिक एकता का निर्णय करने के लिये यह आवश्यक है कि पौधों की आकृतिक, क्रियावैज्ञानिक, तथा रासायनिक

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आदि सभी समानताओं को देखा जाय परन्तु अब तक केवल आकृतिक सादृश्य को ही औत्पत्तिक एकता का निर्णायक मानकर वर्गीकरण किये गये हैं। चूंकि पौधों के जीवन की अन्य बातें विशेषतः उनके कर्त्तव्य कर्म (Physiogy) अधिकतर उनको आकृति पर ही निर्भर करते हैं अतः आधुनिक एवं प्रचलित वर्गीकरणों में भविष्य में अधिक परिवर्तन की सम्भावना नहीं मालूम होती। हां, उनकी सूक्ष्म बातों में अन्तर अवश्य आ सक्ता है।

नस्ल, उपजाति और जाति (Variety, Species and Genus):—यद्यपि आधुनिक वर्गीकरणों में उपजाति (Species) को ही उनका सूक्ष्मतम एकांक माना गया है तथापि ऐसा देखने में आता है कि बहुत सी उपजातिओं के अन्तरगत प्रायः दो या दो से अधिक ऐसे व्यक्तिसमूह पाये जाते हैं जो मूलबीज के संगठन में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। ऐसे समुदायों को नस्ल (Variety) कहते हैं। वे एक दूसरे से ऊपर से देखने में प्रायः केवल एक या दो वानस्पतिक लक्षणोंमें भिन्न होते हैं परन्तु उपजातिआं समीपवर्त्ती उपजातिओं से अनेक वानस्पतिक लक्षणों में विभिन्न होती हैं। यों तो वानस्पतिक विभिन्नतायें व्यक्तिओं तक में पाई जाती हैं पर वे ऐसी होती हैं जिनका विकास परिस्थिति पर निर्भर करता है। ऐसी बहुत सी नस्लें या उपजातियां देखने में आती हैं जो एक परिस्थिति में एक तरह की और दूसरी परिस्थिति में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दूसरी तरह की होती हैं। इनकी ऐसी अस्थायी और परिस्थितिजन्य विशेषताओं को वर्गीकरण में स्थान नहीं दिया गया है, अर्थात् इन लक्षणों के आधार पर उन्हें स्वतन्त्र एकाकों में नहीं बांटा गया है।

समान उपजातिओं का समावेश फिर एक जाति में किया गया है। जातिविभेदक विशेषतायें प्रायः पुष्पसम्बन्धी होती हैं। समान जातिओं को फिर वर्गों में, वर्गों को बड़ी २ श्रेणियों में रखते हुये कई सीढ़ियों के बाद अन्ततः हम उस अवस्था में पहुँचते हैं जब सम्पूर्ण वनस्पति-साम्राज्य चार बड़े २ खण्डों में विभक्त हो जाता है जिनका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। वर्गीकरण में जिन विशेषताओं का उपयोग किया गया है उनके विषय में यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जो विशेषतायें जितनी ही स्थायी होती हैं वे उतनी ही उच्चतर श्रेणिओं के बीच विभेदक लक्षणों का काम देती हैं। जैसे जातिओं के विभेदक लक्षण प्रायः पुष्पसम्बन्धी, वर्गों के पुष्प फल तथा पुष्पव्यूह सम्बन्धी, और नस्लों तथा उपजातिओं के लक्षण अधिक परिवर्तनशील और वानस्पतिक होते हैं। वानस्पतिक लक्षणों में कुछ ऐसे भी होते हैं जो अन्य प्रधान लक्षणों के साथ बड़ी २ श्रेणिओं को एक दूसरे से अलग करने में सहायक होते हैं, जैसे पत्रक्रम और नाड़ी क्रम।

आवृतबीजी पौधों का वर्गीकरण:— यद्यपि, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, विकास-विधि सम्बन्धी मतान्तरों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के कारण वर्गीकरण भिन्न २ रीति से किया गया है तथापि हमें अभी इस विषय को छोड़कर किसी एक पद्धति के अनुसार वर्गीकरण का अध्ययन प्रारम्भ करना चाहिये। यहां एंगलर और प्रैंटिल की पद्धति का अनुसरण किया गया है। इसके अनुसार द्विदली पौधों को पहले दो श्रेणिओं में विभक्त किया गया है। पहली श्रेणी को आर्कीक्लैमिडी (Archichlamydeae) और दूसरी को सिम्पेटली (Sympetalae) कहते हैं। फिर इनको तथा एकदली श्रेणी को भिन्न २ वर्गसमूहों में बांट कर विकास की मात्रा के अनुसार इनके वर्गों का एक क्रम से अध्ययन किया गया है। इस पुस्तक में उनके कुछ प्रधान वर्गों का ही उदाहरण स्वरूप अध्ययन किया जायगा।

---

(१) द्विदली

इस श्रेणी में दो बीजपत्र होते हैं। तने में रसवाहक बंडल कैम्बियमयुक्त और प्रायः एकचक्र में होते हैं। पत्ती जालनाड़ी-क्रम वाली होती हैं। पुष्प के प्रत्येक चक्र में अवयवों की संख्या दो, चार, पांच की या इनकी गुना (Multiples) होती है। तीन की संख्या में वे प्रायः बहुत कम पाये जाते हैं।

(अ) आर्कीक्लैमिडी :—द्विदली पौधों की इस श्रेणी में पेरियन्थ नहीं होता अथवा एक चक्र में होता है। जहां यह दो चक्रों में होता है वहां भीतरी चक्र के अवयव स्वतन्त्र होते

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हैं। कभी २ एक चक्र के लुप्त हो जाने से ही पेरियन्थ में अकेला चक्र पाया जाता है। इस श्रेणी में कभी २ अपवाद स्वरूप संयुक्त दलचक्र भी पाया जाता है। इसके अतीसवर्ग, अहिफेनवर्ग, सर्षपवर्ग, शिग्रीवर्ग, जम्बीरवर्ग, कार्पास-वर्ग, गर्जरादि वर्ग तथा एरण्डवर्ग का इस पुस्तक में उल्लेख किया गया है।

अतीसवर्ग (Ranunculaceae)

विभेदकलक्षण:—पेरियन्थ-पत्र स्वतंत्र, प्रायः पेटलायड; हाइपोगाइनस पुष्प; असंख्य पुष्पलिंग; एपोकार्पस योनिचक्र; एग्रीगेट फल।

विवरण:—मोरवेल जाति (Clematis) के पौधों को छोड़ कर शेष सब पौधे शाक श्रेणी के होते हैं। पत्तियां एकान्तर तथा मूलीय होती हैं और पत्राधार कोषमय और प्रायः पुंख-रहित होता है। पत्तिआं बहुविभक्त होने के कारण प्रायः साधारण होने पर भी संयुक्त मालूम होती हैं। मोरवेल जाति के पौधे आरोही क्षुप होते हैं। इनकी पत्तियां विपरीत होती हैं और इनके पत्रनाल आरोहण में सहायता देते हैं।

बहुपादी राइज़ोम प्रायः इस वर्ग में अधिक पाये जाते हैं। पुष्पव्यूह प्रायः परिमित और कहीं २ (अतीस तथा त्रायमाण जाति में सदण्डक) अपरिमित भी होता है। पुष्प

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रायः उभयलिंगी, नियमित (अतीस तथा त्रायमाण में अनियमित), चाक्रिक अथवा अर्धचाक्रिक होते हैं। केवल देवकांडर जाति (Ranunculus) में पुट तथा दलचक्र स्पष्ट होते हैं यद्यपि यहां भी पुटपत्र पेटलायड होते हैं। पुटपत्र प्रायः पांच होते हैं। दलपत्र पांच अथवा पांच से कम होते हैं। कहीं २ इनके स्थान में मधुकोष होते हैं और कहीं २ इनका पूर्ण लोप हो जाता है। कहीं २ मधुकोष पुटपत्र, पुंर्लिंग तथा पुष्प योनियों से भी सम्बद्ध रहते हैं। योनिचक्र कहीं २ एक ही पुष्पयोनि का होता है। गर्भाशय में बीज एक या एक से अधिक हो सक्ते हैं। एग्रीगेट फल के छोटे २ फल एकीन अथवा फालिकिल होते हैं। कहीं २ फल वेरी भी होता है।

इस देश में इस वर्ग के पौधे प्रायः हिमालय पर अधिक पाये जाते हैं। मैदानों में देवकांडर (R. scleratus) जाति के पौधे प्रायः नदियों के किनारे पाये जाते हैं। देवकांडर जाति का पुष्पसूत्र K 5 C 5 A ∞ $\underline{G\ \infty}$ है। इसमें प्रत्येक दलपत्र के आधार पर एक २ मधुकोष होता है। फल एकीन का समूह होता है। मोरवेल जाति (Clematis) में पुटपत्र ४ और पेटलायड, दलपत्रों का अभाव, फल एकीन का समूह, योनिसूत्र रोमश और स्थायी तथा पत्तियां विपरीत होती हैं। अतीस जाति (Aconitum) में पुष्प अनियमित, पुटपत्र पांच और पेटलायड, पोस्टीरियर पुटपत्र बड़ा और फणाकार, दलपत्रों के स्थान में दो मधुकोष, पुष्पयोनियां २ से ५ तक, और फल फालिकिल

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

का समूह होता है। त्रायमाण जाति (Delphinium) में पुष्प अनियमित, पुटपत्र ५ और पेटलायड, पोस्टीरियर पुटपत्र स्पर्ड, दलपत्र दो और स्पर्ड, पुष्पयोनियां एक से पांच तक और फल फलिकिल तथा सामूहिक होता है।

उपयोगी वनस्पतियांः—काला वचनाग (राइज़ोम), दुधिया वचनाग (राइज़ोम और पत्ती), अतीस (राइज़ोम), कृष्णजीरक (बीज), त्रायमाण (पंचांग), मूर्वा (पंचांग) ममीरो (जड़), कड़ू तथा जद्वार।

अहिफेन वर्ग (Papaveraceae)

विभेदक लक्षणः—शाक, प्रायः दुग्धयुक्त; पुटपत्र इम्ब्रिकेट तथा पूर्वपाती, संख्या में २ या ३; दलपत्र ४ अथवा ६; पुष्पलिंग प्रायः असंख्य और स्वतंत्र; योनिचक्र सिंकार्पस; गर्भाशय एककोष्ठी।

विवरणः—दुग्ध (Latex) सफेद (पोस्ता) अथवा पीला (स्वर्णक्षीरी) होता है। पत्तियां प्रायः खंडित, मूलीय तथा कालाइन, एकान्तर तथा पुंखरहित होती हैं। पुष्प प्रायः एकाकी अग्रस्थित होते हैं। वे नियमित, बड़े और दर्शनीय

नोट—वनस्पतिओं के आगे कोष्ठ के अन्दर उनके प्रयुक्त भागों के नाम दिये गये हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होते हैं। लिंगछत्र वेसीफिक्स्ड (आधारयुत) होते हैं। पुष्प-योनिओं की संख्या दो अथवा अधिक होती है और वे सब एक-कोष्ठी गर्भाशय बनाती हैं। योनिसूत्र का अभाव और योनिछत्र कैपिटेट (गोला) होता है।

प्लेसेन्टा गर्भाशय में अन्दर की ओर इतने अधिक बढ़े होते हैं कि गर्भाशय कई कोठरियों में बटा हुआ मालूम होता है, पर वस्तुतः वह एक ही कोष्ट का होता है। वीजक्रम पेराइटल होता है, और वीज संख्या में बहुत अधिक होते हैं। फल कैप्स्यूल होता है जिसका स्फोटन छिद्रों (पोस्ता) अथवा दातों (स्वर्णक्षीरी) द्वारा होता है। इन्डोस्पर्म तैलीय होता है।

पर्पट वर्ग (Fumariaceae) के लक्षण उपर्युक्त लक्षणों से इतने मिलते जुलते हैं कि इसके पौधे भी अहिफेन वर्ग के ही अन्तरगत् माने जाते हैं। इसमें दुग्ध के स्थान में कोष्ठरस पानी की तरह होता है। पुष्प अनियमित, पुटपत्र २, और दलपत्र ४ (दो चक्रों में) होते हैं। पुष्पलिंग ६ होते हैं और तीन ३ एकर वंडल में लिंगसूत्रों द्वारा मिले रहते हैं।

उपयोगी वनस्पतिश्रां :—पोस्ता (दुग्ध जिससे अफीम बनती है और वीज या खसखस), लालपोस्ता (दलपत्र), स्वर्णक्षीरी (दुग्ध, वीज, मूल अथवा पंचांग), पर्पट या शाहतरा (पंचांग) तथा भूतकेशी (मूल)।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

करतलाकार संयुक्त होती हैं और लिंगचक्र भी पाली-एडल्फस होता है। लिंगसूत्रों के मिलने से जो नलिका बनती है उसके पृष्ठ पर दो २ परागकोष वाले लिंगछत्र निकले रहते हैं और संयुक्त योनिसूत्र नलिकाकार रचना के बीच से होकर ऊपर निकला रहता है। इस नलिका से दलपत्र भी आधार पर मिले रहते हैं जिससे दलचक्र गैमोपेटलस मालूम होता है।

योनिचक्र एक से लेकर अनेक संयुक्त पुष्पयोनियों का बना होता है पर वे अधिकतर संख्या में पांच ही होती हैं। योनिछत्र स्वतंत्र और ऊपर की ओर निकले हुये रहते हैं। गर्भाशय बहुकोष्ठी और बीजक्रम विभक्ताक्षीय (Axile) होता है। गर्भाशय के अन्दर बीज प्रायः संख्या में बहुत अधिक होते हैं। फलस्फोटी (Capsular) अथवा साइज़ोकार्पिक होता है। पुष्प अधिकतर शुक्रपूर्व होते हैं।

उपयोगी वनस्पतियां :— कपास (पंचांग, मूल की छाल, बीज, पत्ती) उद्यानकार्पास (पत्ती व मूल), वनकपास (मूल व फल), बला (मूल और पत्ती), महाबला (मूल और पत्ती), नागबला (मूल और पत्ती), अतिबला (छाल पत्ती और बीज), भूमिबला (पत्ती) जपा (पुष्पकली और मूल की छाल), अम्बष्ठा (पत्ती, फूल) पटवा (पुटपत्र और पत्ती), लता कस्तूरी (पत्ती, बीज और मूल), सेमर (मोच-रस, पुष्प और मूलकन्द), कूटसेमर (गोंद, कन्द, पत्ती),

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पारिसपीपल (छाल और फल), गोरख इमली (फल, पत्ती और छाल), भिंडी तथा खुबाजी ।

जम्बीरवर्ग (Rutaceae)

विभेदकलक्षण:—पत्तिओं पर तैल-ग्रंथियां; पुष्पप्रायः उभय-लिंगी; गर्भाशय डिस्कयुक्त; पुटपत्र और दलपत्र दोनों संख्या में चार २ अथवा पांच २; पुंल्लिंग ८, १० अथवा अधिक; गर्भाशय सुपीरियर और बहुकोष्ठी; पुष्पयोनियां चार अथवा पांच, परस्पर मिली हुई ।

विवरण :—पौधे क्षुप अथवा वृक्ष श्रेणी के होते हैं। पत्तियां, पुंख रहित, एकान्तर अथवा विपरीत, साधारण अथवा संयुक्त होती है। तैल ग्रथियां अर्धपारदर्शक तथा तैलयुक्त होती हैं। नीबू आदि की पत्ती देखने में साधारण मालूम होती हैं परन्तु पत्रनाल पंखवत फैला रहता है और फलक से जुड़ा हुआ रहता है। इसलिये इन्हें संयुक्त पत्ती मानते हैं। पत्तिओं के आधार पर जो कांटे होते हैं उन्हें अक्षकोणीय शाखाओं की पहली पत्तिओं का रुपान्तर मानते हैं। पुष्पव्यूह प्रायः परिमित, पुष्प अधिकतर नियमित, पुटपत्र स्वतंत्र अथवा संयुक्त और दलपत्र स्वतंत्र, और आच्छादित अथवा संलग्न होते हैं। वीज-क्रम विभक्ताक्षीय और वीज प्रत्येक कोष्ठ में दो अथवा दो से अधिक होते हैं। फल ड्रूप, वेरी अथवा साइजोकार्पिक होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जम्बीर और बिल्व जाति में पुष्पलिंग संख्या में बहुत अधिक होते हैं।

उपयोगी वनस्पतिआं :– नारंगी (फूल, फल और उसका छिलक), सब प्रकार के नीबू, अमलवेत, बिल्व (सब भाग-अधिकतर फल, मूल और पत्ती), कपित्थ (पत्ती, गोंद और फल), मीठी नीम (पत्ती और मूल), कामिनी, हुर्मुल और सुदाब (Garden-Rue)

शिम्बीवर्ग (Leguminosae)

विभेदक लक्षण :— शाक, क्षुप तथा वृक्ष; पत्तिआं एकान्तर, प्रायः पत्राकार संयुक्त, कभी २ साधारण भी; दो स्वतन्त्र पुंखपत्र; पुष्प नियमित अथवा अनियमित; पुष्पयोनि एक, गर्भाशय एककोष्ठी और सुपीरियर; बीज प्रायः कई, दो कतारों में; बीजक्रम मार्जिनल; फल प्रायः लेग्यूम अथवा लोमेंटम; बीज एल्ब्यूमिनस, बीजपत्र मांसल अथवा पत्रवत्।

विवरण :— यह वर्ग सम्पूर्ण वर्गों में सबसे अधिक जगतविस्तृत और जाति संख्या की दृष्टि से दूसरे दर्जे का है। इस वर्ग के पौधे हर प्रकार की जलवायु तथा मिट्टी में पाये जाते हैं। कुछ पौधों में यह बिलक्षणता होती है कि वे वायुमंडल के स्वतन्त्र नाइट्रोजन का उपयोग कर लेते हैं। इसीलिये जिन खेतों में वे बोये जाते हैं उन्हें और भी उपजाऊ बना देते

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हैं। आकृतिक बाहुल्य के कारण यह तीन उपवर्गों में विभक्त किया गया है।

अपराजितादि उपवर्ग (Papilionatae) :— इसमें शाकवृक्ष, क्षुप, आरोही अथवा चक्रारोही सब तरह के पौधे पाये जाते हैं। पत्तिआं प्रायः इम्पैरिपिनेट होती हैं पर कहीं २ अग्रस्थित पत्रक के सूत्रवत् हो जाने से वे पैरिपिनेट मालूम होती हैं। पुष्प में दलचक्र पैपिलिओनेसस् होता है। पुष्पलिंग प्रायः दस होते हैं, जिनमें पोस्टीरियर पुष्पलिंग अलग और शेष ९ मिले होते हैं। कहीं २ दसों मिले रहते हैं। गर्भाशय संयुक्त पुष्पलिंगों के बीच में रहता है। योनिसूत्र कुछ टेढ़ा और योनिछत्र लिंगछत्रों के ऊपर निकला रहता है और सबसे पहले कीड़ों को स्पर्श करता है। पुष्पलिंगों के आधार पर भीतर की ओर मधु रहता है। पोस्टिरियर पुष्पलिंग के दोनों ओर एक २ छिद्र होता है जिसमें कीड़े अपनी चोंच डाल कर भीतर से मधु लेते हैं। दलचक्र के विशेष आकार के कारण कीटसेचन विशेष रीति से होता है।

आम्लिकादि उपवर्ग (Caesalpinioideae) :— पौधे वृक्ष तथा क्षुप श्रेणी के होते हैं। पत्तिआं पत्ताकार अथवा द्विपत्ताकार होती हैं। कचनार में वे साधारण होती हैं। तने का सूत्रवत् और पत्तिओं का टेढ़े २ कांटों में कहीं २ रुपान्तर हुआ रहता है। पुष्प न्यूनाधिक अनियमित होते हैं। दलपत्र यद्यपि

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आच्छादित होते हैं पर पोस्टीरियर दलपत्र की दोनों धारें पार्श्वीय दलपत्रों के नीचे होती हैं। पुष्पलिंग संख्या में दस और स्वतन्त्र होते हैं। कहीं २ ऐसे पुष्पलिंग भी पाये जाते हैं जिनका पूर्ण विकास नहीं हुआ रहता।

बब्बूलादि उपवर्ग (Mimosoideae) :— पौधे वृक्ष तथा क्षुप जाति के होते हैं और उनकी पत्तियां प्रायः द्विपक्षाकार होती हैं। बब्बूल जाति के बहुत से पौधों में कांटे पाये जाते हैं जो पुंखपत्रों के रूपान्तर होते हैं अथवा साधारण वहिरुद्भेद होते हैं। बहुत से उष्णप्रदेशीय पौधों में फाइलोड भी होते हैं। पुष्प नियमित और दलपत्र संलग्न होते हैं। पुष्पलिंग स्वतन्त्र और संख्या में दलपत्रों के बराबर, उनसे दूने अथवा और भी अधिक होते हैं।

उपयोगी वनस्पतियां (अपराजितादि उपवर्ग):— अपराजिता (वीज, मूल और फूल), पलाश (फूल, गोंद और वीज), मुलेठी (मूल और तना), गुंजा (मूल, पत्ती), अगस्त (छाल, पत्ती, मूल व पुष्प), जयन्ती (छाल, पत्ती और वीज), नील (पत्ती, मूल, नीला रंग), सन (पत्ती व वीज), शणपुष्पी (पत्ती), सरिवन (मूल), पिठवन (मूल), यवासा (पञ्चांग), बाकुची (वीज), शरपुंखा (पञ्चांग), पारिभद्र (छाल और पत्ती), मूंगफली (तैल), केवांच (फल के ऊपर के रोम, वीज और मूल), विदारीकन्द (कन्द), करंज (पंचांग

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और तैल), रक्त चन्दन (लकड़ी) मेथी (पंचांग और बीज), और विजयसार (गोंद)। इनके अतिरिक्त शीशम और मूंग, उड़द, कुल्थी, सेम, लोबिआ, चना, मटर, मसूर, अरहर तथा अन्य दालवाले सभी अन्न इसी वर्ग के हैं।

अम्लिकादि उपवर्ग:—कटकरंज (बीज, पत्ती और मूल), इमली (फल और पंचांग), कांचनार (छाल), अशोक (छाल), अमलतास (फल, मूल और पत्ती), चक्रमर्द तथा कासमर्द (बीज व पंचांग), सनाय (पत्ती और फल)

बब्बूलादि उपवर्ग:—बब्बूल (छाल और गोंद), इरिमेद (छाल और पत्ती), खदिर (छाल, काष्ठसार तथा निर्यास), सातला (पत्ती और फल), सिरिस (पंचांग), लज्जावन्ती (मूल)।

गर्जरादिवर्ग [Umbelliferae]

विवरण:—इस वर्ग में शाक अधिक पाये जाते हैं पर कोई २ क्षुप भी होते हैं। तना पोला, पर्व लम्बे और ग्रंथियां कुछ मोटी होती हैं। पत्तिआं एकान्तर, प्रायः संयुक्त, बहुविभक्त और पुंखरहित होती हैं। पत्राधार कोषमय होता है और तने को चारों ओर से घेरे रहता है। मण्डूकपर्णी में पत्ती साधारण और वृक्काकार होती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पुष्पव्यूह प्रायः संयुक्त सचूड़ और कभी २ साधारण सचूड़ भी होता है। पुटपत्र पांच, संयुक्त अथवा स्वतन्त्र और दलपत्र पांच स्वतन्त्र और प्रायः अनियमित होते हैं। सचूड़ के बाहरी पुष्पों के बाहरी दलपत्र प्रायः बड़े होकर दलचक्र को अनियमित बना देते हैं। लिंगचक्र पांच स्वतन्त्र पुष्पलिंगों का और योनिचक्र दो संयुक्त पुष्पयोनियों का बना होता है और इसके चारो ओर द्विविभक्त डिस्क होता है जिसमें मधु बनता है। दो योनिसूत्र और दो गोले २ योनिछत्र रहते हैं। गर्भाशय के प्रत्येक कोष्ट में ऊपर से लटके हुए एक२ बीज होते हैं। फल क्रीमोकार्प होता है। प्रत्येक मेरीकार्प में प्रायः पांच २ मेंड़ें होती हैं जिनके नीचे नाड़ियां और बीच २ में परिखायें होती हैं। परिखाओं के नीचे तैलवाहक नलिकायें होती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से फलों में अन्य मेंड़ें और परिखायें प्रायः पाई जाती है। बहुत से फलों की पहचान इन मेडों और परिखाओं की संख्या से ही होती है। बीज इण्डोस्पर्मिक होते हैं और इण्डोस्पर्म में चर्बी वाला तैल संचित रहता है।

उपयोगी वनस्पतिआं :—गाजर [मूल और बीज], मण्डूकपर्णी [पंचांग], हिंगु [निर्यास अथवा गोंद], सौंफ [बीज और मूल], धनियां [बीज], स्याहजीरा [बीज], अजवाइन [बीज], सोया [बीज], सफेद जीरा [बीज], अजमोद तथा बादियान [Anise seeds]

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

एरण्डवर्ग (Euphorbiaceae)

विभेदक लक्षण :—वृक्ष, क्षुप या शाक; पत्तिआं प्रायः एकान्तर और पुंखपत्रों के साथ; पुष्प नियमित, हाइपोगाइनस और एकलिंगी; पेरियन्थ १, २ अथवा २ से अधिक चक्रों में, कहीं २ लुप्त; पुष्पलिंग एक से असंख्य, स्वतन्त्र अथवा संयुक्त; योनिचक्र तीन संयुक्त पुष्पयोनिओं का; गर्भाशय त्रिकोष्टी, वीजक्रम विभक्ताक्षीय, प्रत्येक कोष्ट में वीज १ अथवा २; फल कैप्सुलर अथवा साइज़ोकार्पिक। वीज इन्डोस्पर्मिक।

विवरण :—यह भी बहुत बड़ा वर्ग है और अनेक प्रकार की रहन सहन वाले पौधे इसमें पाये जाते हैं। बहुत से पौधे मांसल होते हैं, जिनमें पत्तियां नहीं होती और फाइलोक्लेड पाया जाता है। बहुत से मांसल पौधों में साधारण पत्तिआं भी होती है और बहुतों में केवल वल्कपत्र होते हैं। कुछ पौधों का वाह्यचर्म मोटा और क्यूटीनपट्ट के साथ होता है। उनका तना मोटा तथा मांसल और कांष्टरस गाढ़ा होता है। इन पौधों की वल्कवत् पत्तिआं निकलते ही गिर जाती हैं और उनके स्थान पर केवल दो दो कांटे रह जाते हैं जो उनके पुंखपत्रों के रुपान्तर होते हैं। नागफनीवर्ग के पौधे भी ऐसे ही होते हैं पर इनमें जगह २ पर कांटों का गुच्छा पाया जाता है।

पत्तिआं कहीं २ विपरीत भी होती हैं। पुंखपत्र छोटे शीघ्र-पाती अथवा स्थायी होते हैं। दुग्धिका जाति में पुंखपत्रों के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Ricinus clans.

स्थान में कांटे होटे हैं। आंवला आदि कुछ पौधों को छोड़कर सब पौधों में दूध निकलता है। पुष्पव्यूह प्रायः परिमित होता है। दुग्धिका जाति में पुष्पव्यूह सायथियम होता है जिसमें पहले नारीपुष्प (रजोपूर्व) परिपक्व होता है। गर्भाधान के समय जब गर्भाशय बाहर आ जाता है और एक ओर को लटक जाता है तब पुष्प लिंग परिपक्व होते हैं और बड़े होकर क्रमशः बाहर निकलते हैं।

पुष्पलिंग एक अथवा अधिक होते हैं और कहीं कहीं (एरंड) अवयव विभाजन के कारण संख्या में बहुत अधिक हो जाते हैं। योनिछत्र तीन और द्विविभक्त होते हैं। फल प्रायः साइजोकार्पिक होता है जो सूखने पर तीन स्फोटी अथवा अनस्फोटी भागों में फट जाता है। बीज इन्डोस्पर्मिक और कहीं कहीं एरिल युक्त होते हैं।

उपयोगी वनस्पतियां :—एरंड (मूल, पत्ती, बीज का तेल) छोटी बड़ी दुग्धिका, सब प्रकार के सेहुंड़, आंवला, भूईं आंवला (पंचांग), लवली (फल), दन्ती (मूल) जयपाल (बीज), कुप्पी (पंचांग), कबीला [फल के ऊपर का लाल चूर्ण) ।

(ब) सिम्पटेली

विभेदक लक्षण:—इस श्रेण में पेरियन्थ दो चक्रों में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होता है। दलचक्र प्रायः संयुक्त होता है। पुष्पलिंग संख्या में दल पत्रों के बराबर, उनके दूने अथवा कम होकर दो या चार रह जाते हैं और वे प्रायः इपीपटेलस भी होते हैं। इस श्रेणि के मजिष्ठादि वर्ग, त्रिवृतवर्ग, कंटारीवर्ग कटुका वर्ग, तुलसी वर्ग और शतपत्री वर्गों का यहां उल्लेख किया गया है।

मंजिष्ठादिवर्ग (Rubiaceae)

विभेदक लक्षण :—वृक्ष, क्षुप अथवा शाक; पत्तिआं डेकुसेट और इन्टरपिटिओलर, पुंखपत्रों के साथ; पुष्प उभय-लिंगी, नियमित, इपीगाइनस; पुटपत्र, दलपत्र और पुष्पलिंग तीनों पांच पांच, पुष्पलिंग इपीपेटलस, गर्भाशय प्रायः द्विकोष्ठी, इन्फीरियर।

विवरण :—इस वर्ग में आरोही और दूसरे पौधों पर उगनेवाले पौधे [Epiplytes] भी पाये जाते हैं। अधिकतर इन्टरपिटिओलर पुंखपत्र ही पाये जाते हैं। स्वतन्त्र पुंख-पत्र बहुत कम देखने में आते हैं। कहीं कहीं अक्षकोणीय पुंखपत्र भी पाये जाते हैं। पुष्पव्यूह परिमित होता है। पुष्प योनिओं की संख्या कहीं कहीं अधिक होती है अतः कभी कभी दस कोष्ठ तक का गर्भाशय पाया जाता है। फल बेरी, ड्रूप तथा कैप्स्यूल होते हैं।

उपयोगी वनस्पतियां :—सिनकोना [छाल जिससे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कुनैन बनता है], काफी [पत्ती और बीज], इपीकाक [मूल], मजिष्ठा [मूल], मैनफल [फल], प्रसारिणी [पंचांग], कदंब [छाल और फल], हल्दू [छाल], नेवारी और श्रीवती ।

त्रिवृत् वर्ग (Convolvulaceae)

विभेदक लक्षण :—शाक अथवा क्षुप, प्रायः आरोही अथवा विसर्पी; पत्तिआं एकान्तर; पुष्प उभयलिंगी, नियमित, हाइपोगाइनस; पुटपत्र प्रायः ५; दलपत्र पांच और संयुक्त; पुष्पलिंग पांच और इपीपेटलस् ; गर्भाशय डिस्कयुक्त, द्विकोष्ठी, सुपीरियर; बीजक्रम त्रिभक्तावोय, प्रत्येक कोष्ठ में प्रायः दो बीज; फल बेरी, नट अथवा कैप्स्यूल ।

विवरण :—इस वर्ग के पौधे प्रायः कमजोर तने वाले होते हैं पर कुछ स्वावलम्बी शाक और क्षुप भी पाये जाते हैं। कुछ पौधे [अमरबेल] परजीवी भी होते हैं। पत्तिआं एकान्तर प्रायः सनाल पुंखरहित, साधारण अखण्डित अथवा बहुविभक्त होती हैं। पुष्पव्यूह परिमित होता है। पुटपत्र आच्छादित और प्रायः स्थायी होते हैं। दलचक्र संयुक्त, घंटिकाकार अथवा फनेल के आकार का होता है। पुष्पकलिका में दलपत्र प्लिकेट और आच्छादित होते हैं। लिंगछत्र अन्तःस्फोटी होते हैं। योनिछत्र द्वित्रिभक्त और गर्भाशय द्विकोष्ठी होता है पर कहीं २ मिथ्या पट के कारण गर्भाशय चार कोष्ठों का हो जाता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

द्विकोष्ठी गर्भाशय के प्रत्येक कोष्ठ में दो २ बीज और चार कोष्ठ वाले गर्भाशय के प्रत्येक कोष्ठ में एक २ बीज होते हैं।

उपयोगी वनस्पतियां :–त्रिवृत या निशोथ (मूल और तना), कालादाना [बीज], विदारी कंद [मूल], विधारा [पत्ती और मूल], सकरकंद [अनियमित कन्दवत् मूल], शंखपुष्पी [पंचांग], रुदन्ती [पंचांग], अमरवेल, नाड़ीशाक।

कंटकारी वर्ग (Solanaceae)

विभेदकलक्षण :—पुष्प हाइपोगाइनस, प्रायः नियमित; पुष्पलिंग पांच, इपीपेटलस और कभी २ सिंजिनीसस्; योनि-चक्र वाइकार्पेलरी सिंकार्पस; गर्भाशय की दीवाल कोणीय धरातल में।

विवरण :—पौधे अधिकतर क्षुप या शाक होते हैं। पत्तियां साधारण, न्यूनाधिक विभक्त और पुंख रहित होती हैं। पत्रक्रम एकान्तर होता है पर पुष्पव्यूह भाग में संयुक्तोत्पत्ति के कारण प्रायः विपरीत मालूम होता है। पुष्पव्यूह परिमित, पुष्प प्रायः नियमित और उभयलिंगी होते हैं। पहले के तीनों चक्रों में पांच २ भाग होते हैं। पुटचक्र संयुक्त और स्थायी होता है और कहीं २ [मकोय] एक्रीसेन्ट होता है। दलचक्र

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रायः रोटेट अथवा घंटिकाकार होता है। कंटकारी जाति में पुष्पलिंग सिंजिनीसस् होते हैं। लिंगछत्र छिद्रस्फोटी अथवा लम्बस्फोटी होते हैं। गर्भाशय कभी २ [धतूरा] मिथ्यापटों के कारण बहुकोष्ठी मालूम होता है। वास्तविक व्यवधान का कोणीय धरातल में होना इस वर्ग का मुख्य लक्षण है। बीजक्रम विभक्ताक्षीय, प्लेसेन्टा मोटा, योनिसूत्र एक और योनिछत्र एक अथवा दो होते हैं। बीज संख्या में बहुत अधिक होते हैं। फल कैप्स्यूल तथा वेरी होते हैं। बीज एन्डोस्पर्मिक होते हैं।

इस वर्ग के सभी पौधे प्रायः विषैले होते हैं क्योंकि इनमें एल्कोलायड अधिक पाये जाते हैं। इस वर्ग के पौधों में वाइकोलेटरल वंडल भी पाये जाते हैं।

उपयोगी वनस्पतिश्रां :—कटेरी [पंचांग या मूल], वृहती [मूल], मकोय [पंचांग], वेगन [शाकार्थ], आलू, असगंध [मूल व पत्ती], लालमिर्च [फल], टोमाटो, तीनों धतूरा [पत्ती और बीज], खुरासानी अजवाइन [बीज और पत्ती], वेलाडोना [पत्ती और मूल], तमाखू [पत्ती]।

कटुका वर्ग (Scrophulariaceae)

विभेदकलक्षण:—प्रायः शाक; पुष्प उभयलिंगी, प्रायः अनियमित, और हाइपोगाइनस; पुटचक (५); दलचक्र (५);

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रायः द्विओष्ठी; पुष्पलिंग चार [डाइडाइनमस], दो अथवा ५; योनिचक्र (२); गर्भाशय सुपीरियर द्विकोष्ठी; वीजक्रम विभ-क्तात्तीय और वीज संख्या में वहुत अधिक; फल कैप्स्यूल अथवा वेरी।

विवरण :—इस वर्ग के पौधे सब जगह पाये जाते हैं पर पहाड़ों पर अधिक मिलते हैं। पौधे शाक और कोई क्षुप भी होते हैं, कोई २ परजीवी भी होते हैं। पत्तियां एकान्तर, विपरीत, अथवा वर्टीसिलेट और पुंख रहित होती हैं। पुष्प-व्यूह अपरिमित [सदण्डिक अथवा विदण्डिक] अथवा परि-मित होता है। कहीं २ दलचक्र द्विओष्ठी और परसोनेट होता है। पुष्पलिंग दो अथवा पांच वहुत कम पौधों में होते हैं। जब पुष्पलिंग पांच होते हैं तो उनमें पोस्टीरियर पुष्पलिंग प्रायः छत्रहीन (Staminode) होता है। जहां दो ही पुष्पलिंग होते हैं वहां भी ऐसे छत्रहीन पुष्पलिंग पाये जा सकते हैं। गर्भाशय की दीवाल मध्य धरातल में होती है। इस वर्ग के पुष्प प्रायः वहुत वड़े और आकर्षक होते हैं और रंग में प्रायः लाल तथा पीले होते हैं।

उपयोगी वनस्पतियां :—वंगाली ब्राह्मी अथवा जल-नीम (पंचांग), कटुका या कुटकी (मूल), हृत्पत्री या डिजि-टैलिस (पत्ती), नैपाल निंब (सम्पूर्ण वनस्पति) तथा वन तमाखू (सब भाग)।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तुलसी वर्ग (Labiatae)

विभेदक लक्षणः—पुष्प हाइपोगाइनस्, अनियमित; पुष्पलिंग चार [डाइडाइनमस] और इपीपेटलस; तना चौकोन; पत्तियां डेकुसेट; पुष्पव्यूह वर्टीसिलास्टर; फल कार्सेरुलस।

विवरणः—इस वर्ग में शाक अधिक होते हैं। कोई २ उपक्षुप भी होते हैं। पत्तियां पुंखरहित, साधारण और प्रायः डेकुसेट होती हैं पर कहीं कहीं वर्टीसिलेट भी होती है। पौधे प्रायः गन्धयुक्त होते हैं। यह गन्ध उन गंड रोमों से आती है जो सम्पूर्ण वायवीय भागको ढके रहते हैं। इन रोमों में उड़ने· वाले तैल बनते हैं जो भिन्न भिन्न पौधों में भिन्न भिन्न गन्ध के कारण होते हैं। पुष्पव्यूह वर्टीसिलास्टर होता है, कहीं कहीं पुष्प एकाकी और अक्षकोणीय भी होते हैं।

पुटचक्र संयुक्त, द्विओष्ठी, नलिकाकार अथवा फनेल के आकार का होता है। पुट पत्र पांच और स्थायी होते हैं। दल चक्र (५), प्रायः अनियमित, द्विओष्ठी और रिंजेन्ट होता है। पुदीना में दलचक्र नियमित होता है। पांचवें पुष्पलिंग के लोप हो जानेसे लिंगचक्र चार डाइडाइनमस पुष्पलिंगों का बना होता है। कहीं २ दो ही पुष्पलिंग पाये जाते हैं। योनिचक्र दो संयुक्त पुष्प योनियों का होता है पर गर्भाशय मिथ्या-पट के कारण चार कोष्ठों का होता है। ऊपर से देखने में गर्भाशय चार खण्डों में बंटा हुआ मालूम होता है और योनिसूत्र बहुत से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पौधों में गाइनोबेसिक होता है। गर्भाशय के प्रत्येक कोष्ठ में एक एक बीज होते हैं। फल कार्सेरुलस होता है। पुष्प प्रायः शुक्रपूर्व होते हैं।

उपयोगी वनस्पतियां :— सब प्रकार की तुलसी, बर्बरी [बीज और पंचांग], पुदीना [अर्क, पंचाङ्ग], पेपर-मिण्ट का पौधा [पंचाङ्ग से निकाला हुआ तेल या पेपरमिण्ट], द्रोणपुष्पी [पंचांग], पथरचूर, जूफा, मरुवक [पंचांग और राख], वन अजवाइन [पंचांग और तैल] जिसकी अन्य उपजातियों से थाइमोल निकाला जाता है, रोजमरी [पत्ती], फणिज्झक, पानड़ी, लेवेंडुला [जिससे लवेंडर बनता है]।

शतपत्री वर्ग (Compositae)

विभेदकलक्षण:—प्रायः शाक, कोई२ क्षुप अथवा वृक्ष भी; पत्तियां एकान्तर अथवा विपरीत, प्रायः पुंखरहित; पुष्पव्यूह कैपिचुलम, जिसके सब पुष्प नियमित अथवा सब अनियमित अथवा दोनों प्रकार के; पुष्प इपीगाइनस; पुटचक्र का अभाव अथवा पैपस के रूप में; दलचक्र (५), नलिकाकार अथवा लिग्यूलेट; पुष्पलिंग पांच, सिंजिनीसस् और इपीपेटलस; योनिचक्र (२); गर्भाशय एक कोष्ठी, इन्फीरियर; योनिछत्र दो; बीज एक, आधारीय; फल सिप्सेला।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विवरणः—द्विदली वर्गों में सबसे बड़ा और विकासक्रम में सबसे ऊंचा स्थान पानेवाला यही वर्ग है। भिन्न २ परिस्थितिओं में भिन्न२ प्रकार के पौधे इस वर्ग में आते हैं। अधिकतर इसके पौधे औसत दर्जे की जलवायु में होते हैं। शाक श्रेणी के पौधे अधिक होते हैं पर कुछ उष्णप्रदेशीय पौधे छोटे २ क्षुप तथा वृक्ष भी होते हैं। इनमें टैपरुह होती है जो कहीं २ (ढुधल) कन्दवत् हो जाती है। पत्तियां प्रायः मूलीय और एकान्तर होती हैं, पर कहीं२ विपरीत भी होती हैं। इस वर्ग का लाक्षणिक पुष्पव्यूह कैपिचुलम होता है। दन्वालुकर के अतिरिक्त अलग २ पुष्पों के साथ भी प्रायः सफेद, छोटे २ वल्कवत् वृन्तपत्र होते हैं जिन्हें पेलिया (Paleae) कहते हैं। कैपिचुलम साधारण अथवा संयुक्त (उत्कंटक) होता है।

कैपिचुलम के नियमित पुष्पों को नलिकाकार और अनियमित पुष्पों को लिग्यूलेट पुष्प कहते हैं। बहुत से पौधों में कैपिचुलम के सब पुष्प उभयलिंगी होते हैं पर बहुतों में केवल मध्य के पुष्प उभयलिंगी और किनारे के नारीपुष्प अथवा नपुंसक पुष्प होते हैं। प्रायः सब अनियमित पुष्प नारीपुष्प होते हैं, परन्तु जहां कैपिचुलम के सभी पुष्प अनियमित होते हैं, वहां ऐसा नहीं होता। पुटचक्र के स्थान पर प्रायः छोटे २ रोम या मुलायम कांटे पाये जाते हैं जो गर्भाधान के बाद फल प्रसार में सहायता पहुँचाते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सेचन :—पहले योनिसूत्र बहुत छोटा रहता है और लिंगछत्रों के मिलने से जो नलिकाकार रचना बनी होती है उसके आधार तक पहुंचा रहता है। चूंकि लिंगछत्र अन्तःस्फोटी होते हैं अतः परागकण उसी नलिकाकार कोष में गिरते हैं। स्फोटन के बाद योनिसूत्र बढ़कर नलिकाकार कोष के बाहर आ जाता है। इस समय तक दोनों योनिछत्र इस प्रकार एक दूसरे से सटे रहते हैं कि परागकणों से ढके रहने पर भी उनके ग्राही भागों से परागकणों को भेंट नहीं होती। बाहर आ जाने पर दोनों योनिछत्र खुल जाते हैं और कीड़ों द्वारा परसेचन आसानी से हो जाता है। प्रायः देखा गया है कि अन्त में योनिछत्र टेढ़े होकर नीचे की ओर लटक जाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि यदि किसी कारण से परसेचन न हो सके तो आत्मसेचन ही द्वारा सन्तानोत्पत्ति हो जाय।

उपयोगी वनस्पतिआं :—शतपत्री या गुलदाउदी, भृङ्गराज (पञ्चांग), वनगोभी (पञ्चांग), रास्ना (मूल), कुष्ठ (मूल), दमनक (सान्टोनीन का पौधा), सहदेवी (पञ्चांग), अयापान (पत्ती), मुंडी (पञ्चांग या पुष्पव्यूह), कुसुम, अकलकरा (मूल), कासनी (बीज, मूल, फूल), अरण्यजीरक या बाकुची (बीज), ककरोंदा, तथा दुधल (Dandelion)।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(२) एकदली

लक्षण :—इनके बीजों में बीजपत्र अकेला होता है। तने में रसवाहक बंडल बिना किसी क्रम के चारों ओर छिटके रहते हैं। पत्तिआं प्रायः समानान्तर नाड़ीक्रमवाली होती हैं और पुष्प के प्रत्येक चक्र में अवयवों की संख्या तीन या तीन के गुने की होती है।

पलांडुवर्ग (Liliaceae)

विभेदक लक्षण :—पेरियन्थपत्र प्रायः पेटलायड; पुष्प हाइपोगाइनस; पुष्पलिंग ६; गर्भाशय त्रिकोष्ठी।

विवरण :—इस वर्ग में शाक अधिक होते हैं। कोई कोई पौधे (ड्रसीना और एक्का) वृक्ष अथवा क्षुप भी होते हैं। शाकों की उत्पत्ति प्रायः वानस्पतिक रीति से होती है जिसके लिये उनमें राइज़ोम, वल्व तथा वज्रकन्द नाम के भौमिक तने पाये जाते हैं। कलिहारी और चोबचीनी जाति के पौधे आरोही और शतावर जाति के पौधे फाइलोक्लेड युक्त होते हैं। पत्तिआं कालाइन अथवा मूलीय होती हैं।

पुष्पव्यूह परिमित अथवा अपरिमित होता है। कहीं २ पुष्प एकाकी और अग्रस्थित भी होते हैं। पुष्प नियमित, उभयलिंगी

फ्लोरल डेकाग्रैम — पलांडु और अंथुरि ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और हाइपोगाइनस होते हैं। और उनके प्रत्येक चक्र में तीन २ भाग होते हैं। पेरियंथपत्र ६ और दो चक्रों में होते हैं। वे इपीफाइलस और प्रायः संयुक्त होते हैं पर कहीं २ स्वतंत्र भी होते हैं। लिंगछत्र अन्तःस्फोटी और योनिचक्र में तीन संयुक्त पुष्पयोनियां होती हैं। त्रिकोष्ठी गर्भाशय के प्रत्येक कोष्ठ में वीज दो या दो से अधिक होते हैं। वीजक्रम विभक्तात्तीय और फल कैप्स्यूल तथा वेरी होता है। कलिहारी का पत्राग्र सूत्रवत् होता है। चोवचीनी जाति में पुंखपत्र नाललग्न और ऊपर सूत्रवत् होते हैं। इनकी पत्तियों में भी जालनाड़ीक्रम पाया जाता है। शतावर में प्रयुक्त भाग अनियमित कन्दवत् जड़ों का गुच्छा होता है। इसमें छोटी २ वल्कवत् पत्तिओं का अग्र तीक्ष्ण होता है और उनके अक्षकोण में पतले २ क्लैडोड के गुच्छे पाये जाते हैं।

उपयोगी वनस्पतियां :—पलांडु (वल्ब), लहसन (वल्ब), घीकुआंर (पत्ती का ताजा व सुखाया रस जिसे Aloe कहते हैं), जंगली प्याज या अर्जीनिया (वल्ब), रजनीगंधा, कलिहारी (मूल), चोपचीनी (मूल), सालसा-रीला (मूल), शतावरी (मूल), सफेद मुसली (मूल)।

गोधूमवर्ग (Gramineae)

विभेदकलक्षण:—तना प्रायः वेलनाकार और पोला;

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पत्तियां प्रायः एकान्तर और दो कतारों में; पत्राधार कोषमय और कोष के ऊपर पृष्ठज; पुष्पव्यूह संयुक्त विदण्डक अथवा मिश्रित; पुष्प नग्न और हाइपोगाइनस; पेरियंथ का अभाव अथवा दो पत्रों का; पुष्पलिंग प्रायः तीन; पुष्पयोनि एक; बीज एक, आधारीय; फल कैरिओप्सिस।

विवरणः—इस वर्ग की गणना सबसे बड़े और जगत-विस्तृत वर्गों में की जाती है। इसके बहुत से पौधे खेतों में बोये जाते हैं। बांस तथा ईख को छोड़कर सब पौधे शाक श्रेणी के होते हैं।

घासों में कुछ वार्षिक और कुछ बहुवार्षिक होती हैं। बहुतों में राइज़ोम होते हैं और बहुतों के तने विसर्पी होते हैं जो प्रायः ग्रंथिओं पर मूलयुक्त होते हैं। तनों में ग्रंथिआं बहुत स्पष्ट और फूली हुई रहती है। मक्का और ईख को छोड़ कर प्रायः सबमें पर्व पोले होते हैं। पत्राधार का कोष दूसरी ओर खुला रहता है और उसकी दोनों धारें प्रायः एक दूसरे के ऊपर होती हैं। पृष्ठज रोमश अथवा झिल्ली के समान होता है।

पुष्पव्यूह संयुक्त या मिश्रित होता है जिसमें विदण्डिकायें (Spikelets) सदण्डिक अथवा विदण्डिक क्रम में पाई जाती हैं। प्रत्येक विदण्डिका में प्रायः कई पुष्प होते हैं। इसके आधार पर पहले दो ऐसे वृन्तपत्र होते हैं जिनके अक्षकोण में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पुष्प नहीं होते। इन्हें ग्लूम कहते हैं। इन वृन्तपत्रों की संख्या कहीं २ एक या तीन चार तक की भी होती हैं। इनके बाद ऐसे वृन्तपत्र होते हैं जिनके अक्षकोणों में पुष्प होते हैं। इनको इन्फीरियर पेलिया (Inferior Palea) कहते हैं। इस वर्ग की फलिओं में जो शूक पाये जाते हैं वे इन्हीं के नोकीले अग्रभाग होते हैं। इन्फीरिअर पेलिआ के विपरीत प्रत्येक पुष्प के साथ एक वृन्तपत्र होता है जिसे सुपीरिअर पेलिया (Superior palea) कहते हैं। ग्लूम और इन्फीरियर पेलिया प्रायः नौकाकार और स्पष्ट मध्यपर्शुक से युक्त होते हैं और सुपीरियर पेलिया बहुत पतले कागज़ के समान होता है। इसके बाद दो वल्क-पत्रवत् रचानायें होती है जिन्हें लाडीक्यूल (Lodicule) कहते हैं जो पुष्प के खिलने में सहायता देते हैं। इन्हें कुछ लोग पेरियन्थपत्रों का रुपान्तर मानते हैं और कुछ लोग द्वितीय वृन्तपत्रक का प्रतिनिधि स्वरुप मानते हैं। पुष्पलिंग संख्या में प्रायः तीन होते हैं पर कहीं २ (धान) वे छ भी होते हैं। इनके लिंगसूत्र बहुत लम्बे और लिंगछत्र वर्सेटाइल होते हैं। योनिचक्र एक पुष्पयोनि का होता है जिसका योनि-छत्र शाखायित और रोमश होता है। पुष्पलिंगों और पुष्प-योनिओं की रचना वायुसेचन के अनुकूल होती है। पुष्प मक्का को छोड़ कर प्रायः सब में द्विलिंगी होते हैं। इस वर्ग के फल को कैरिओप्सिस कहते हैं।

यह वनस्पतिओं का सबसे उपयोगी वर्ग है। पशुओं और

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मनुष्यों के प्रधान खाद्य पदार्थ इसी वर्ग से प्राप्त होते हैं। जौ, गेहूं, धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, ईख, रागी, कोदों, कंगुनी आदि धान्य इसी वर्ग के हैं। इनके अतिरिक्त इस वर्ग में औषधोपयोगी पौधे भी हैं जैसे दूर्वा (मूल, पत्ती, पंचांग और स्वरस) वांस, (अङ्कुर, वीज, पत्ती तथा वंशलोचन), शर, कुश, (मूल), कास (मूल और बीज), उशीर (मूल), हरी चाय (पत्ती या तेल), लामज्जक (पंचांग), तथा रोहिष (पत्ती व तेल) आदि।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद ३

क्रियाविज्ञान

जीवित पौधे में प्रतिक्षण भिन्न २ प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन तीन प्रकार के हैं। इनमें कुछ द्रव्यान्तर करानेवाले, कुछ रुपान्तर तथा रचनान्तर कराने वाले और कुछ स्थानान्तर करानेवाले होते हैं। पौधे के अन्दर जल, वायु तथा खनिज पदार्थ बाहर से आकार और अनेक प्रकार के रासायनिक परिवर्तनों में भाग लेकर भिन्न २ प्रकार के नये पदार्थों में बदलते रहते हैं जो अन्ततः किसी न किसी रूप में फिर पौधे से अलग हो जाते हैं। इस तरह के सब परिवर्तन पहली श्रेणी में रखे जाते हैं। इन द्रव्यान्तर सम्बन्धी (Metabolic) परिवर्तनों के कारण पौधे के अन्दर द्रव्यवृद्धि होती है जिसके फल स्वरूप उसमें अनेक प्रकार के रुपान्तर तथा रचनान्तर करनेवाले परिवर्तन देखने में आते हैं। तीसरे प्रकार के परिवर्तन पौधों की गति से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें पौधे तथा उनके अवयव अपनी स्थिति में परिवर्तन कर सकते हैं आगे के पृष्ठों में हम इन्हीं तीनों प्रकार के परिवर्तनों पर विचार करेंगे।

द्रव्यान्तर तथा द्रव्यों का स्थानान्तर

पौधों का रासायनिक संगठनः— पौधों को पूर्णत,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सुखाकर और उनके शुष्क भाग को तौलने से मालूम होता है कि उनमें प्रायः ५० प्रतिशत से लेकर ९८ प्रतिशत तक जल का अंश रहता है। शुष्क बीजों में भी कुछ न कुछ जल का अंश अवश्य रहता है। फिर यदि शुष्क भाग को जलाया जाय और उससे निकले हुये गैसों और बची हुई राख की रासायनिक परीक्षा की जाय तो गैसों में हाइड्रोजन (H_2), आक्सीजन (O), नाइट्रोजन (N), और कार्बन (C) की तथा राख में प्रायः फास्फोरस (P), गन्धक (S), पोटैशियम (K), सोडियम (Na), कैल्शियम (Ca), मैगनीशियम (Mg), लोहा (Fe), सिलिकन (Si), और क्लोरीन (Cl) की उपस्थिति मिलेगी। इन तेरह तत्त्वों में केवल १० तत्त्व पौधों के लिये नितान्त आवश्यक होते हैं, शेष तीन तत्त्व अर्थात् Na., Si, और Cl यद्यपि अधिकतर पौधों में पाये जाते हैं पर उनका रहना आवश्यक नहीं है।

उपर्युक्त तत्त्व पौधों के अन्दर यौगिकों के रूप में प्रवेश करते हैं। C तत्त्व CO_2 गैस के रूप में प्राप्त होता है जिसे पत्तिआं वायुमण्डल से अथवा जल से (जलीय पौधों में) लेती हैं। O और H_2 अधिकतर जल के रूप में प्राप्त किये जाते हैं जिसका पौधे पृथ्वी से शोषण करते हैं। श्वसन करने के लिये O_2 प्रायः वायुमण्डल से ही लिया जाता है। इनके अतिरिक्त शेष सब तत्त्व प्रायः खनिज लवणों के रूप में पौधों को प्राप्त होते हैं जिनका घोलरूप में जड़ों द्वारा शोषण होता रहता है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि भिन्न २ पौधे भिन्न २

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आवश्यक तत्वों को प्रायः उनके निश्चित यौगिकों के रूप में तथा निश्चित मात्रा में ही लेते हैं। अधिकतर क्लोरीन क्लोराइड के रूप में, गंधक सल्फेट के रूप में, फास्फोरस फास्फेट के रूप में, नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में, सिलिकन सिलिकेट के रूप में और भिन्न २ धातुयें इन यौगिकों के अवयव होने पर पौधों द्वारा ग्रहण की जाती हैं।

वाटर कल्चर के प्रयोग (Water-culture experiments):— यदि किसी पौधे के लिये किसी तत्त्व की आवश्यकता प्रमाणित करनी हो अथवा यह देखना हो कि वह किस रूप में और कितनी मात्रा में उस पौधे के लिये उपयोगी होता है तो निम्नलिखित प्रयोग किया जा सक्ता है। एक ही उपजाति के भिन्न २ पौधों को शीशे के जारों में अलग २ लगा देते हैं। शीशे के जारों में भिन्न २ तत्त्वों के घोल भरे रहते हैं और उनका मुंह कार्क द्वारा बन्द किया रहता है। कार्क में एक छेद करके पौधे की जड़ को जार के अन्दर घोल में डुबा देते हैं। ऐसा करने से यह देखने में आता है कि जिस जार में सब आवश्यक तत्त्वों के यौगिक नहीं होते उनकी वृद्धि ठीक तरह से नहीं होती, जैसे लोहा के न रहने पर पत्तिओं में हरितवर्ण-वाहकों की उत्पत्ति नहीं होती और Ca के न रहने से पौधे के अन्दर विषैले पदार्थ अधिक बनते हैं जिससे उसकी वृद्धि समुचित रूप से नहीं हो पाती। इसी तरह इस प्रकार के प्रयोगों से यह निश्चित किया जा सक्ता है कि अमुक पौधे के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लिये अमुक तत्त्व अमुक यौगिक के रुप में और अमुक मात्रा में लाभदायक होगा।

इतना निश्चिय हो जाने पर कि पौधों के खाद्य पदार्थ बाहर से गैस, जल तथा खनिज लवणों के रुप में भीतर आते हैं, हमें यह देखना है कि इन पदार्थों का प्रवेश पौधों के अन्दर कैसे होता है।

पौधे के लिये जल की आवश्यकता:—चूंकि जीवित पौधे के लिये जल बहुत ही आवश्यक है अतः जलसम्बन्धी अन्य बातों पर विचार करने के पहले इसकी आवश्यकता पर विचार करना आवश्यक है। क्रियाशील जीवनमूल सर्वदा अर्धतरल अवस्था में पाया जाता है जिसमें ६० प्रतिशत से अधिक जलांश का रहना प्रायः आवश्यक होता है। जलांश कम होने से जीवनमूल कठोर हो जाता है और उसकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है जैसे बीजों में। जल का अंश बहुत कम होनेपर जीवनमूल मर भी जाता है। खाद्य पदार्थों के निर्माण में जल एक आवश्यक अंग है। अनिर्मित खाद्य पदार्थों का प्रवेश और निर्मित तथा अनिर्मित द्रव्यों का पौधों के भिन्न भागों में वितरण तभी होता है जब वे पदार्थ जल में मिलकर घोल अवस्था में आ जाते हैं। पौधों में वृद्धि और संतानोत्पत्ति-सम्बन्धी क्रियायें प्रायः अनेक प्रकार की ऐसी भौतिक तथा रासायनिक क्रियायों पर निर्भर करती हैं जो जल की ही उपस्थिति में हो सकती हैं। चूंकि जल का बहुत अंश वाष्प तथा द्रव रुप में बाहर निकला करता है इसलिये उस अंश की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पूर्त्ति के लिये जल की ही आवश्यकता होती है। इन सबके अतिरिक्त वानस्पतिक कोष्टों तथा तन्तुओं में जल के कारण बहुत दृढ़ता आ जाती हैं। इन सब आवश्यकताओं की पूर्ति जड़ के द्वारा शोषित जल से ही होती हैं।

मिट्टी का जल (Soil water) :—मिट्टी के कणों के बीच २ में जल प्रायः तीन अवस्थाओं में मौजूद रहता है। मिट्टी का प्रत्येक कण कुछ ऐसे जल से घिरा रहता है जिसमें मिट्टी के कुछ खनिज पदार्थ कोलायड अवस्था में मौजूद रहते हैं। इस जल का शोषण जड़ों द्वारा नहीं होता। इसके बाहर जल का जो अंश रहता है उसमें खनिज लवण घोल अवस्था में पाये जाते हैं। इसीको कैपिलरीजल (Capillary water) कहते हैं और इसी का जड़ों द्वारा शोषण होता है। तीसरे प्रकार का जल शुद्ध होता है और प्रायः नमज़मीन तथा दल-दलों में अधिक मात्रा में पाया जाता है। यह स्वतंत्र जल कणों के बीच के स्थान को जिसमें वायु का रहना आवश्यक है, भरे रहता है जिससे दलदलों में होने वाले पौधों को आक्सी-जन बाहर से लेने के लिये विशेष प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ती है।

पृथ्वी का कैपीलरी जल जड़रोमों में आस्मोसिस (Osmosis) द्वारा प्रवेश करता है। आस्मोसिस की क्रिया निम्न रीति से दिखाई जा सक्ती है। यदि सेलुलोज़ की एक नली में नमक का घोल रख दिया जाय और उस नली को पानी से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भरे हुये वर्तन में रख दें तो कुछ देर के बाद परीक्षा करने पर मालूम होगा कि नली से नमक का कुछ अंश बाहर जल में आ गया है और जल का कुछ अंश बाहर से नली में आ गया है। यह क्रिया तब तक जारी रहती है जब तक नली के बाहर और भीतर नमक का घोल एक तरह का नहीं हो जाता। यदि इस प्रयोग में नली की दीवाल एक ऐसे पदार्थ से बनी होती जो जल के लिये भेद्य और नमक के लिये अभेद्य होता तो केवल जल नली में जाता, नमक बाहर न आता। वानस्पतिक अथवा जड़रोमों के कोष्टों में जिनके द्वारा शोषण होता है, कोष्टावरण और जीवनमूल दोनों मिल कर इसी प्रकार की अर्धभेद्य दीवाल का काम करते हैं। ज़मीन से वे जल तथा उसमें घुले हुये खनिज पदार्थों को तो ले लेते हैं पर अन्दर से शर्करा आदि के घोलों को बाहर नहीं आने देते। भीतर का शर्करादि का घोल जितना ही अधिक गाढ़ा होता है उतना ही अधिक जल भीतर आता है और जितना ही अधिक जल भीतर आता है उतना ही अधिक कोष्टावरण फैलता है और जल को बाहर निकालने का प्रयत्न करता है। भीतर के घोलों का जो दवाव कोष्टावरण पर पड़ता है उसे आस्मोटिक दवाव कहते हैं और कोष्टावरण का जो दवाव भीतर के घोलों पर पड़ता है उसे टर्गर का दवाव (Turgor pressure) कहते हैं। जब जल पर्याप्त मात्रा में भीतर आ जाता है अर्थात जब आस्मोटिक दवाव और टर्गर दवाव बराबर हो जाता है

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तो जल का भीतर आना बन्द हो जाता है। ऐसी अवस्था में P (आस्मोटिक दबाव) –T (टर्गर का दबाव) = S (जलाकर्षण का दबाव Suction pressure) होता है। किसी भी अवस्था में P–T=S होता है। अर्थात् जलाकर्षण सर्वदा आस्मोटिक और टगर दबावों पर निर्भर करता है।

ऊपर बतलाया गया है कि जीवनमूलयुक्त कोष्ठावरण की अर्धभेद्य दीवाल घुले हुये पदार्थों के लिये अभेद्य होती है। अगर ऐसी बात होती तो खनिज लवणों के घोल अन्दर न जा सकते थे। परन्तु जीवनमूल वस्तुतः किसी भी पदार्थ के लिये सर्वथा अभेद्य नहीं होता। कुछ पदाथ के लिये (एल्कोहाल, ईथर आदि) वह जल की तरह भेद्य और कुछ पदार्थों के लिये कष्टभेद्य होता है। इसके अतिरिक्त किसी पदार्थ के लिये जीवनमूल की भेद्यता उसके उपयोगिता पर निर्भर करती है। यदि किसी के पदार्थ उपयोगी होने के कारण शोषण होते ही अन्य भागों में हटा दिया जाता है तो उसका शोषण जारी रहता है और अगर वह काम का नहीं होता तो उसका शोषण नहीं होता। यही कारण है कि एक ही स्थान पर उगने वाले भिन्न २ पौधे भिन्न २ पदार्थों को भिन्न २ मात्रा में ग्रहण करते हैं। जैसे, गेहूँ तथा इसके अन्य सजातीय पौधे नाइट्रोजन पोटाश तथा चूना कम और सिलिका अधिका लेते हैं पर आलू आदि के पौधे इसका उलटा करते हैं।

किसी पदार्थ को अधिक मात्रा में ग्रहण करने लिये पौधे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रायः उसे शोषण के बाद ऐसे रूप में बदल देते हैं कि जिसमें उनका व्यापन (Diffusion) नहीं होने पाता। समुद्र में होने-वाली कुछ वनस्पतिओं में (Sea-Weeds) देखा गया है कि वे अपने अन्दर आयोडीन को बहुत अधिक मात्रामें संचित कर लेती हैं यद्यपि समुद्र में आयोडीन की मात्रा बहुत कम होती है। इसी तरह यद्यपि जल में नमक की मात्रा अधिक होती है पर वे पोटैशियम का संचय कहीं अधिक मात्रा में करती हैं।

पृथ्वी में रासायनिक क्रियायें :—चूंकि घोल अवस्था में ही खनिज लवणों का शोषण होता है अतः जो खनिज लवण अथवा अन्य उपयोगी पदार्थ अघुलनशील होते हैं उन्हें पौधे पहले घुलनशील बनाते हैं। जिन पदार्थों की सहायता से उनका ऐसा रासायनिक परिवर्तन किया जाता है उन्हें पौधे प्रायः स्वयं बनाकर बाहर भेजते हैं। ऐसे पदार्थों में कार्बोनिक अम्ल तथा अन्य आर्गेनिक अम्ल मुख्य हैं। कार्बोनिक अम्ल चूना तथा सिलिकेट को घुलनशील बनाता है। मिट्टी के अन्दर जो आर्गेनिक पदार्थ होते हैं वे भी प्रायः आक्सीजन से मिल कर Co_2 तथा आर्गेनिक अम्लों में परिवर्तित होते रहते हैं। उच्च श्रेणी के नाइट्रोजन यौगिक (प्रोटीड आदि) भी कीटाणुओं द्वारा अमोनिया में परिवर्त्तित होकर प्रायः Co_2 से मिल जाते हैं और अमोनियम कार्बोनेट बन जाता है। अमोनियम कार्बो-नेट तथा अन्य अमोनिया के लवण अन्ततः नाइट्रेट में बदल कर जड़ों द्वारा शोषित होते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चूंकि घुलनशील लवण प्रायः जल के साथ घुलकर नीचे चले जाते हैं अतः उपर्युक्त रासायनिक क्रियायों की आवश्यकता का अनुमान हम स्वयं कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में हमें इतना और स्मरण रखना होगा कि इसीलिये कुछ विशेष प्रकार की उपजाऊ मिट्टी में यह शक्ति होती है कि वह पोटैशियम तथा अमोनियम के लवणों को तथा फास्फेटों को वहने नहीं देती।

X जड़रोम से रसवाहक नलिकाओं में जल का स्थानान्तर :— शोषितघोल उसी ओर क्रमशः बढ़ता है जिधर शोषण दवाव (Suction pressure) अधिक होता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रयोग स्मरण रखने योग्य है। एक ताज़ी वीट की जड़ को जिसके सिरे पर तीन स्थानों से वाह्यचर्म काट कर अलग कर दिया गया है, एक पात्र में इस तरह रख देते हैं कि जड़ का दूसरा सिरा पात्र में पानी के अन्दर डूबा रहता है। उपर्युक्त तीनों कटे हुये स्थानों में से एक स्थान पर पानी का एक वूंद और दूसरे पर शर्कराघोल (3%) का एक वूंद रख देते हैं। तीसरे स्थान पर वेसेलीन लगा कर पानी का वूंद रखते हैं। कुछ समय के बाद पहले स्थान पर रखा हुआ वूंद ग़ायब हो जाता है क्योंकि जड़ के आन्तरिक कोष्ठ जिनमें शर्कराघोल (१४%) होता है उसे सोख लेते हैं। वेसेलीन के कारण दूसरे स्थान पर पानी का वूंद ज्यों का त्यों बना रहता है। तीसरे स्थान पर शर्कराघोल का वूंद बड़ा हो जाता है क्योंकि वह भीतर के कोष्ठों से जल खींचता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यद्यपि भीतरी कोष्ठों में घोल बाहरी घोल से गाढ़ा होता है तब भी जल बाहर निकलता है। इसका कारण यह है कि शर्कराघोल में बूंद और पात्र के पानी के बीच जड़ का सम्पूर्ण तन्तु एक आस्मोटिक परदे का काम करता है। चूंकि इस तन्तु के कोष्ठ पूर्णतः टर्जिड (Turgid) हो गये रहते हैं अतः वे अधिक जल का शोषण नहीं कर सकते। यदि अधिक जल उनमें किसी ओर से आता है तो दूसरी ओर से वह अवश्य निकल जायगा। शोषण शक्ति को ध्यान में रखकर यही बात दूसरी तरह से भी समझाई जा सक्ती है। शर्कराघोल का बूंद समीप के कोष्ठों से जल ले लेता है तो उन कोष्ठों की शोषणशक्ति बढ़ जाती और वे अपने समीप के दूसरे कोष्ठों से जल खींचते हैं। इस तरह जड़ के कोष्ठों में एक प्रकार की जलधारा स्थापित हो जाती है। रसवाहक नलिकायें समीपवर्त्ती कोष्ठों से जल इसी तरह खींचती हैं और जड़ रोमों से नलिकाओं तक एक जलधारा बहती रहती है।

यह सिद्ध करने के लिये कि कोष्ठरस जाइलम की नलिकाओं में से होकर ऊपर चढ़ता है, निम्नलिखित प्रयोग किया जा सक्ता है। यदि किसी शाखा के जाइलम के बाहर के सब तन्तुओं को किसी एक स्थान पर काट कर निकाल दे, तो कटे हुये भाग के ऊपर की पत्तियां मुरझाती नहीं। इससे यह मालूम होता है कि कोष्ठरस फ्लोयम के भीतर के तन्तुओं से ही ऊपर चढ़ता है। फिर, यदि किसी शिशुवनस्पति की जड़ को इओसीन घोल में डुबा कर रख दें तो कुछ समय के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बाद तने के भिन्न२ भागों में तन्तुओं की परीक्षा करने पर मालूम होगा कि नीचे ज़ाइलम नलिकाओं की सम्पूर्ण दीवालें और ऊपर प्रायः उनके केवल भीतरी भाग लाल हो गये हैं। इससे यह मालूम होता है कि घोल नलिकाओं से ही ऊपर चढ़ा है न कि नलिकाओं की दीवालों में से।

रूट प्रेशर (Root Pressure):—जिस शक्ति से पानी या घोल नलिकाओं में आता है और ऊपर चढ़ता है उसे रूट प्रेशर कहते हैं। कुछ पौधों में प्रायः बसन्त ऋतु में इसका बहुत स्पष्ट प्रभाव देखने में आता है। यदि इस समय किसी वाइन का तना ज़मीन से एक हाथ की ऊंचाई पर काट दिया जाय तो उसके कटे हुये पृष्ठ से बहुत अधिक रसस्राव होने लगता है। ऐसा रसस्राव पौधों में प्रायः उस समय अधिक होता है जब पौधा वेग से बढ़ता रहता है और पृथ्वी में जलांश अधिक होता है क्योंकि ऐसी अवस्था में शोषण बहुत तेज़ी से होता है। रूट प्रेशर शोषण के अतिरिक्त जल त्याग की मात्रा पर भी निर्भर करता है। कभी २ शोषण अधिक होने पर भी जल त्याग इतना अधिक होता है कि शोषित जल निकले हुये जल की पूर्ति नहीं कर पाता। ऐसी अवस्था में ऋण रूट प्रेशर होता है क्योंकि यदि ऐसी अवस्था में कटे हुये तने पर जल छोड़ा जाता है तो तना उसे भी सोख लेता है। यदि रूटप्रेशर नापना हो तो निम्नलिखित प्रयोग करना चाहिये। एक S के आकार की शीशे की नली का रबर की नली से कटे हुये तने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

से जोड़ देते हैं। शीशे की नली में पानी और उसके बाद पारा भरा रहता है। जल का अंश तने और पारा के बीच में होता है। कुछ समय के बाद रूट प्रेशर के कारण जल पारा को ऊपर उठा देता है। जितना ही अधिक प्रेशर होता है उतना ही अधिक पारा ऊपर उठता है।

जलत्याग (**Water-Loss**):—पौधों से जलत्याग कई तरह से होता है। कटे हुए भाग से कोष्ठरसयुक्त जल का निकलना रसस्राव (Bleeding) कहा जाता है जैसे ताड़ तथा खजूर आदि से ताड़ी निकलती है। रसस्राव रूट प्रेशर के कारण होता है जिसकी चर्चा ऊपर की गई है। विशेष प्रकार के कोष्ठों तथा तन्तुओं से जिन्हें ग्लैंड (ग्रन्थि) कहते हैं शर्करा, तैल, इन्ज़ाइम आदि पदार्थ प्रायः निकलते हैं। इन पदार्थों के साथ प्रायः जल का अंश भी रहता है। मधुकोषों से मधु इसी तरह निकलता है। जलत्याग की इस विधि को सिक्रीशन (Secretion) कहते हैं। द्रव रूप में जलत्याग प्रायः तीसरी विधि से भी होता है जिसे गटेशन (Guttation) कहते हैं। ऐसा जलत्याग प्रायः पत्तिओं के जलछिद्रों से होता है और प्रायः बांस, मक्का तथा सूरन जाति के पौधों में अधिक देखा जाता है। उष्ण प्रदेशीय जंगली वृक्षों में जहां आर्द्रता बहुत अधिक होती है ऐसा जलत्याग अधिक देखने में आता है।

वाष्परूप में जलत्याग:—जलत्याग अधिकतर वाष्प रूप में ही होता है। जिस प्रकार किसी जलाशय से अथवा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ऐसे पदार्थों से, जो जल से भीगे होने के कारण फूले रहते हैं, जल वाष्प बनकर निकला करता है, उसी तरह जलयुक्त कोष्टावरणों से, जो अन्तर्कोष्टीय स्थानों के किनारे अथवा वाह्यचर्म के बाहरी कोष्टावरण होते हैं, जल भाप बनकर उड़ता रहता है। यह क्रिया तबतक होती रहती है जबतक वायुमण्डल में जलग्राहकशक्ति मौजूद रहती है। इस क्रिया से आवश्यकता से अधिक आया हुआ जल तो निकलता ही है कभी २ वायुमण्डल के अधिक शुष्क और गर्म होने पर जल के आवश्यक अंश में भी कमी आ जाती है। अतः इससे हानि तथा लाभ दोनों होते हैं। पौधों से जल का भाप के रूप में निकलना निम्न रीति से दिखलाया जा सकता है। यदि गमले में लगाये हुये एक छोटे पौधे को एक शीशे के वेलजार में बन्द करके रख दें तो कुछ समय के बाद वेलजार के भीतरी पृष्ट पर पानी की बूंदे देखने में आयेंगी। ये बूंदें उसी वाष्प से बनती हैं जो पौधे से निकल कर और वेलजार की ठण्ढी दीवाल से स्पर्श करके द्रव रूप में आ जाती है। इस प्रकार का जलत्याग अधिकतर नासिका छिद्रों द्वारा होता है और कुछ वाह्यचर्म के कोष्टों से भी होता है।

वाह्यचर्म के कोष्टों द्वारा जब जलत्याग होता है तो उनके बाहरी कोष्टावरणों का जल भाप बनकर निकलता है। इस कमी को पूरा करने के लिये जल जीवनमूल से कोष्टावरण में और कोष्टरस से जीवनमूल में आता है। जब कोष्टरस गाढ़ा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हो जाता है तो वह समीपवाले कोष्ठों से जल खींचता है। इस तरह बहुत भीतर के तन्तुओं से जल बाहर निकल जाता है। सुवेरीन और क्यूटीनयुक्त कोष्ठावरणों से जलत्याग बहुत कम होना है इसीलिये शुष्क परिस्थिति में होनेवाले पौधों में क्यूटीनपट्ट का अधिक विकास हुआ रहता है।

अन्तर्कोष्ठीय स्थानों के चारों ओर जो कोष्ठ होते हैं उनसे भी ऊपर की ही तरह जलत्याग होता है। यहां विशेष लाभ केवल इतना ही है कि पौधे इस जलत्याग को आवश्यकतानुसार प्रायः कम, अधिक या बिल्कुल बन्द भी कर सकते हैं, क्योंकि इस तरह का जलत्याग नासिका छिद्रों के खुलने और बन्द होने पर निर्भर करता है।

जलत्याग दिखाने के प्रयोग :—एक हरी टहनी को रबर नली के द्वारा शीशे की एक लम्बी पतली नली से जोड़ देते हैं। शीशे की नली का दूसरा सिरा समकोण पर मुड़ा हुआ रहता है। एक बीकर में जो रंगीन घोल से भरा रहता है नली का मुड़ा हुआ भाग डूबा रहता है। शाखा को पानी के ही अन्दर काटते और रबर की नली से जोड़ते हैं जिससे उसके कटे हुये पृष्ठ से वायु भीतर न जा सके। प्रयोग की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि शाखा लम्ब धरातल में और शीशे की नली का लम्बा भाग अनुप्रस्थ धरातल में रहे। कुछ समय के बाद यह देखने आवेगा कि रंगीन घोल धीरे २ लम्बी नली में बढ़ रहा है। यदि नली में माप के चिन्ह लगे हों तो जलत्याग के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वेग को माप सकते हैं। जलत्याग-मापक-यन्त्र (Potometers) प्रायः इसी तरह के होते हैं।

जलत्याग दूसरी रीति से भी दिखलाया जा सकता है। एक बोतल को पानी से भरकर काग से बन्द कर देते हैं। काग में छेद करके किसी छोटे पौधे की जड़ को उसमें डाल देते हैं। बोतल के आधार भाग पर बग़ल में भी एक छोटा छेद होता है जो काग से बन्द रहता है। यहां भी काग में छेद करके बोतल का सम्बन्ध एक शीशे की नली से करा देते हैं जो बोतल के समानान्तर होती है और पानी से भरी रहती है। इस नली पर माप के चिन्ह बने रहते हैं। जब पत्तिओं से जलत्याग होता है और जल की पूर्त्ति के लिये जड़ों द्वारा शोषण होने लगता है तो नली में पानी नीचे उतरने लगता है। इस तरह शोषित जल की मात्रा का पता तो चल ही जाता है पर यदि इस यन्त्र को प्रयोग के पहले और अन्त में तौल लें तो बाहर निकले हुये जल का भी पता चल जाता है।

इन प्रयोगों के अतिरिक्त वाष्प द्वारा जलत्याग का होना बहुत साधारण तरह से भी दिखाया जा सकता है। जैसे, यदि किसी गमले में लगे हुये पौधे को तराज़ू में रख छोड़ें तो गमलेवाला पलड़ा बराबर उठता हुआ मालूम होगा। यहां गमले की मिट्टी को इस प्रकार ढक कर रखना होगा जिससे उससे जलत्याग न होने पावे। फिर, कोबाल्टक्लोराइड के घोल में भिगा कर सुखाया हुआ नीला काग़ज़ जलत्याग करती हुई

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पत्तिओं पर रखने से क्रमशः गुलाबी हो जाता है। यह वर्ण-परिवर्तन भी जलत्याग के ही जल से होता है।

जलत्याग पर वाह्य तथा आन्तरिक अवस्थाओं का प्रभाव :—वायुमण्डल की शुष्कता, तापक्रम तथा वायु-वेग की मात्रा के अनुसार जलत्याग साधारण वाष्पीभवन (Evaporation) की तरह घटता या बढ़ता रहता है। यद्यपि प्रकाश में जलत्याग अधिक और अन्धकार में कम होता है पर यह स्मरण रहे कि नासिका छिद्रों की गति पर प्रकाश का एक विशेष प्रकार का प्रभाव पड़ता है जिससे प्रकाश और जलत्याग का सम्बन्ध विशेष रूप से जटिल हो जाता है। नासिका छिद्रों की गति का प्रभाव भी बहुत जटिल होता है। जब ये छिद्र बिल्कुल खुले रहते हैं तो जलत्याग वाष्पी भवन की सामान्य अवस्थाओं पर ही निर्भर करता है। परन्तु जब वे क़रीब २ बन्द होने को आते हैं तभी उनका जलत्याग पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। पहली अवस्था में जलत्याग की मात्रा जलत्याग करनेवाले कोष्ठों के अन्दर संचित जल की मात्रा पर निर्भर करती है।

नासिका छिद्रों की गति :—रक्षक कोष्टों में प्रायः क्लोरोफिल होता है जिससे प्रकाश में स्टार्च और शर्करा बनता रहता है। स्टार्च का शर्करा में और शर्करा का स्टार्च में परिवर्तन भी होता रहता है जिससे रक्षक कोष्ठों का टर्गर बदलता रहता है। स्टार्च-शर्करा का अनुपात प्रकाश और कोष्ठों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के pH (Hydrogen-ion-concentration) पर निर्भर करता है और pH भी CO_2 की मात्रा पर अवलम्बित रहता है। प्रकाश और नासिका छिद्रों की चौड़ाई पर CO_2 की मात्रा निर्भर करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि सामान्य अवस्थाओं में, जब कोष्ठों में जल की कमी नहीं रहती, नासिका यन्त्र आत्मनियामक (Self-regulatory) होता है।

जलत्याग से लाभ:—इस क्रिया से पौधों का तापक्रम बढ़ने नहीं पाता क्योंकि सूर्यप्रकाश की गर्मी का अधिकांश इसी क्रिया में खर्च होता है। मांसल पौधों में जहां जलत्याग बहुत कम होता है इस तरह का कुछ विशेष लाभ नहीं होता और इसीलिये उनका तापक्रम प्रायः बहुत अधिक होता है। इस क्रिया से दूसरा लाभ यह है कि आवश्यकता से अधिक आया हुआ जल बाहर निकल जाता है और जड़ से पत्ती तक एक ऐसी जलधारा (Transpiration Current) स्थापित हो जाती है जिसकी सहायता से आवश्यक खनिज पदार्थ जड़ से पत्ती तक पहुंचाये जाते हैं। चूंकि कभी २ इस क्रिया से जल का आवश्यक अंश भी निकल जाता है और पौधा सूख कर मर जाता है इसलिये इस क्रिया को प्रायः एक इष्टापत्ति (Necessory evil) कहा करते हैं।

कोष्ठ-रसारोह (Ascent of sap):— अब हमें उस शक्ति पर विचार करना है जिसके द्वारा कोष्ठरस या शोषित घोल जड़ से पत्तिओं तक पहुंचने में समर्थ होता है। इस

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विषय में कई सिद्धान्त हैं। पहले कुछ लोगों की यह धारणा थी कि ज़ाइलम नलिकाओं की सूक्ष्मता (Capillarity) के कारण ही उनमें रस ऊपर को चढ़ता है। इसमें सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इस प्रकार की शक्ति इतना अधिक जल बहुत अधिक ऊंचाई तक नहीं चढ़ा सकती। फिर कुछ लोगों ने रूटप्रेशर को रसारोह का कारण बतलाया। परन्तु, चूंकि यह भी सर्वदा सब पौधों में पर्याप्त मात्रा में नहीं होता और कहीं २ किसी २ समय इसका सर्वथा अभाव हो जाया करता है, अतः इस सिद्धान्त का भी धीरे २ तिरस्कार हो गया। प्राचीन वैज्ञानिकों ने तो इस प्रश्न को अचिन्त्य और दैवी कारणों पर ही छोड़ दिया था। प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र बोस भी अभी करीब २ इसी तरह के सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं। इनके अनुसार ज़ाइलम पैरेनकाइमा के कोष्ट पम्प की तरह नलिकाओं में जल भेजते रहते हैं। इनका कहना है कि ये कोष्ट जब खूब फूल जाते हैं तो उनके जीवनमूल में अचानक ऐसा परिवर्तन हो जाता है जिससे उनका जल नलिकाओं में आ जाता है और वे सिकुड़ जाते हैं।

इस समय सबसे अधिक संसक्ति का सिद्धान्त (Cohesion theory) मान्य समझा जाता है। इसके अनुसार रसारोह में दो शक्तियां काम करती हैं। जलत्याग के कारण पत्ती के कोष्टों में जब जल की मात्रा कम होती है तो उनके कोष्टरस का आस्मोटिक दवाव बहुत बढ़ जाता है और वे नलिकाओं से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जल खींचते हैं। इसके अतिरिक्त जल के अणुओं में संसक्ति के कारण परस्पराकर्षण की शक्ति इतनी अधिक होती है कि जल-त्यागजन्य आकर्षण से नलिकाओं का सम्पूर्ण जल उसी तरह ऊपर को खिंच उठता है जैसे एक सिरा पकड़ कर खींचने से सारी रस्सी खिंच जाती है। यहां पर आपत्ति यह होती है कि नलिकाओं के बीच २ में प्रायः वायु के बुलबुले रहते हैं जिससे उनके अन्दर स्वतंत्र जलखंड बन जाते हैं। इस अड़-चन को इस तरह सुलझाया जाता है कि उपर्युक्त संसक्ति-जन्य शक्ति के कारण बुलबुलों के रहने पर भी जलखंडों का सम्बन्ध दीवाल के किनारों पर वैसे ही बना रहता है जिससे सम्पूर्ण जल का कर्षण होता है। इन बुलबुलों का तथा नलि-काओं की आड़ी दीवालों का प्रभाव अधिकतर जलधारा के वेग पर ही पड़ता है।

वायुशोषण (Absorption of gases):–पौधे Co_2 और आक्सीजन प्रायः वायुमण्डल से गैस रूप में लेते हैं। केवल जलीय पौधों में इनका घोल रूप में शोषण होता है स्थल पर होने वाले पौधों में भी इन गैसों का वास्तविक शोषण घोल अवस्था में ही होता है। कोष्ठावरण और जीवन-मूल में जो जल का अंश रहता है उसमें इन गैसों का पहले घोल बनता है और तब कोष्ठों द्वारा इनका शोषण होता है। आक्सीजन का शोषण वाह्यचर्म से भी हो जाता है क्योंकि वायुमंडल में इसकी मात्रा बहुत अधिक होती है, पर Co_2 को

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भीतर लेने के लिये नासिका छिद्रों की आवश्यकता पड़ती है। इन गैसों का वितरण भी समीपवर्त्ती कोष्ठों में प्रायः घोल अवस्था में ही होता है। अन्तर्कोष्ठीय स्थानों में, जो सम्पूर्ण पौधे में अटूट क्रम से फैले रहते हैं और परस्पर सम्बन्धित रहते हैं, इनका वितरण गैसीय अवस्था में होता है और इनकी गति की दिशा तापक्रम और दबाव पर निर्भर करती है। नम ज़मीन तथा जल में होने वाले पौधों में अन्तर्कोष्ठीय स्थान बहुत अधिक होते हैं जिससे उनके लिये एक स्वतंत्र वायुमंडल की व्यवस्था की हुई रहती है।

द्रव्यान्तर सम्बन्धी परिवर्तन (Metabolism)

(१) उत्थानात्मक द्रव्यान्तर (Anabolism) :- पौधे बाहर से जो खाद्य पदार्थ ग्रहण करते हैं उनमें Co_2, H_2o, और खनिज लवण मुख्य हैं। यदि किसी पौधे के अन्दर के रासायनिक पदार्थों की परीक्षा की जाय तो उसमें शर्करा, स्टार्च, चर्बी तथा प्रोटीन आदि मुख्य २ पदार्थों की उपस्थिति पाई जाती है। इससे मालूम होता है कि पौधे इन पदार्थों को उपर्युक्त साधारण पदार्थों से स्वयं बनाते हैं। इन पदार्थों के निर्माण में उन्हें बहुतसी रासायनिक क्रियायें करनी पड़ती हैं। इन क्रियाओं में कुछ क्रियायें उत्थानात्मक होती हैं और साधारण पदार्थों को उच्चश्रेणी के पदार्थों में बदलती रहती है और

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कुछ पतनात्मक (Katabolic) होती हैं जिनमें उच्चश्रेणी के पदार्थ साधारण श्रेणी के पदार्थों में परिवर्त्तित होते रहते हैं। उत्थानात्मक क्रियाओं में एक को कार्बन एसिमिलेशन (Corbon-assimilation) और दूसरी को नाइट्रोजन-एसिमिलेशन कहते हैं।

(अ) कार्बन एसिमिलेशन अथवा फोटोसिन्थेसिस (Photosynthesis)

पत्तिआं वायुमण्डल से नासिका छिद्रों द्वारा Co_2 अपने अन्तर्कोष्ठीय स्थानों में खींचती हैं। Co_2 घोल अवस्था में क्रमशः उन कोष्ठों में पहुंचता है जिनमें हरितवर्णवाहक होते हैं। यहीं कार्बन-एसिमिलेशन की प्रारम्भिक रासायनिक क्रियायें होती हैं जिनमें Co_2 और जल की सहायता से शर्करा तथा स्टार्च की उत्पत्ति होती है। अधिक वैज्ञानिकों की यह धारणा है कि जल और Co_2 मिलकर पहले फार्मेल्डीहाइड (Formaldehyde) बनाते हैं जिसके ६ अणु मिलकर फिर शर्करा का एक अणु बनाते हैं। चूंकि अभी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि यहां वस्तुतः किस-किस तरह की रासायनिक क्रियायें होती हैं और सबसे पहले कौन सा पदार्थ बनता है अतः कार्बन एसिमिलेशन की प्रारम्भिक रासायनिक क्रियाओं के लिये एक ही रासायनिक सूत्र पर्याप्त होगा जिसके अनुसार Co_2 और जल के छः २ अणु मिलकर शर्करा का एक

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अणु बनाते हैं अर्थात $6 CO_2 + 6 H_2O = C_6 H_{12} O_6 + 6O_2$. । इस सूत्र से यह भी मालूम होता है कि इन रासायनिक क्रियाओं में जितना CO_2 खर्च होता है उतना ही O_2 बाहर निकलता है।

इलोडिया (Elodea) नामक पौधे को एक फनेल में रख कर और फनेल को उलट कर पानी से भरे हुए शीशे के एक बड़े वर्तन में रख दिया जाय और फिर फनेल के ऊपर जल से भरी हुई एक परीक्षा नली को उलट कर रख दिया जाय तो सम्पूर्ण अपैरेटस को प्रकाश में रखने के थोड़ी देर बाद परीक्षानली में गैस के बुलबुले जमा होने लगते हैं। जब नली गैस से भर जाय तो उसे निकाल कर गैस की परीक्षा करने पर मालूम होगा कि नली में आक्सीजन की ही गैस है। इस प्रयोग में यदि बड़े वर्तन का जल पहले से उबाला हुआ रहता है तो गैस के बुलबुले नहीं निकलते। इसका कारण यह है कि उबाले हुये पानी में CO_2 नहीं होता जिससे पौधा कार्बन एसिमिलेशन नहीं कर पाता और इसी से आक्सीजन भी नहीं निकलता।

कार्बन-एसिमिलेशन का परीक्षाः— इस क्रिया से पत्तिओं में जो शर्करा बनती है उसका निर्माण के साथ ही पौधे के भिन्न २ भागों में स्थानान्तर होता रहता है। पर यह क्रिया प्रायः इतने वेग से होती है कि शर्करा का कुछ अंश स्टार्च में बदल जाता है और पत्तिओं में जमा होता रहता है। रात्रि के समय यह स्टार्च फिर शर्करा में परिवर्तित होकर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अन्य भागों में चला जाता है। यही कारण है कि पौधे के जिस भाग में यह क्रिया होती रहती है वहां प्रायः स्टार्च अवश्य मौजूद रहता है जिसकी उपस्थिति आयोडीन घोल से जानी जा सकती है। यदि एक छोटे पौधे को दो दिन तक अंधेरे में रख छोड़ें और फिर उसकी पत्तिओं को तोड़ कर उबलते हुये अल्कोहल में छोड़ दें तो कुछ समय में पत्तिओं का हरा पदार्थ अल्कोहल में उतर आता है और वे आयोडीन घोल में पीली हो जाती हैं। जिन पत्तिओं में स्टार्च रहता है उन पर आयोडीन घोल छोड़ने से पत्तिओं का रंग नीला अथवा काला हो जाता है।

यदि किसी पौधे को दो तीन दिन तक अंधेरे में रखने के बाद उसकी पत्तिओं में उपर्युक्त विधि से परीक्षा करने पर स्टार्च की उपस्थिति न मिले तो उस पौधे पर अन्य प्रयोग भी किये जा सक्ते हैं। यदि उस पौधे की कुछ पत्तियां तोड़ली जांय और ऐसे बोतलों में रख दी जांय जिनमें, एक प्रकाश में हो पर Co_2 से वंचित हो और दूसरा अंधकार में हो पर Co_2 से बंचित न हो तो, इन दोनों अवस्थाओं में कुछ समय के बाद पत्तिओं की परीक्षा करने पर उनमें स्टार्च की उपस्थिति न पाई जायगी। यदि यही प्रयोग क्रोटन जैसे चित्रित (Variegated) पत्तिओं वाले पौधे के उपर किया जाय तो मालूम होगा कि Co_2 और प्रकाश दोनों के उपस्थित रहने पर भी पत्तिओं के केवल हरे भागों में ही स्टार्च बनता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अतः इन प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि उपर्युक्त तीनों अवस्थायें कार्बन एसिमिलेशन के लिये आवश्यक हैं।

कार्बन-एसिमिलेशन के आवश्यक उपकरण और उनका प्रभावः—इस क्रिया के लिये CO_2, जल, प्रकाश, क्लोरोफिल और कुछ तापक्रम आवश्यक उपकरण हैं। चूंकि जल प्रायः सर्वदा पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहता है और क्लोरोफिल सम्भवतः प्रवर्तक रूप में ही इस क्रिया में सहायक होता है इसलिये शेष तीन ही उपकरण ऐसे रह जाते हैं जिनकी मात्राओं पर यह क्रिया निर्भर करती है। इन्हीं तीनों को हम सीमास्थापक उपकरण (Limiting factors) कहते हैं। स्वाभाविक अवस्थाओं में CO_2 सीमास्थापक की तरह काम करता है। सामान्य अवस्थाओं में पत्तियां .२५% CO_2 को काम में ला सक्ती हैं परन्तु वायुमंडल में यह .०३% पाया जाता है। अतः CO_2 की मात्रा के अनुसार यह क्रिया तब तक बढ़ती जाती है जब तक CO_2 .२५% नहीं हो जाता। इसके बाद यह क्रिया तभी अधिक होगी जब प्रकाश या तापक्रम बढ़ाया जायगा। प्रकाश भी CO_2 की तरह अपनी मात्रा के अनुसार इस क्रिया को बढ़ाता है यदि अन्य दोनों उपकरण पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहते हैं। स्वाभाविक अवस्थाओं में जब CO_2 केवल .०३% होता है, प्रकाश पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहता है पर कभी २ प्रकृति में भी प्रकाश सीमास्थापक हो जाता है। बहुत घने जंगलों में छाया में होनेवाली छोटी छोटी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वनस्पतिओं को सूर्य-प्रकाश का बहुत कम अंश मिलता है और ·०३% CO_2 के लिये भी पर्याप्त नहीं होता। ऐसी जगहों में बहुत से पौधे इसीलिये बसन्त के समय में ही अपनी वृद्धि करते हैं जब वहां के बड़े २ वृक्ष अपनी पत्तिआं गिरा कर नग्न हो जाते हैं। इस समय वे द्रव्य निर्माण और संचय करके साल भर के लिये निश्चिन्त हो जाते हैं। तापक्रम भी स्वाभाविक अवस्थाओं में प्रायः पर्याप्त मात्रा में रहता है। बहुत ही शीत प्रदेशों में (शीत कटिबन्धों में या ऊंचे पहाड़ों पर) अथवा शीतोष्ण कटिबन्धों के शीतकाल में तापक्रम सीमास्थापक होता है।

सीमास्थापन के अतिरिक्त उपर्युक्त उपकरणों की अत्यधिक मात्राओं का इस क्रिया पर बिल्कुल उलटा प्रभाव पड़ता है जैसे २५% CO_2 का जीवनमूल पर विषैला प्रभाव पड़ता है। अधिक प्रकाश से क्लोरोफिल नष्ट हो जाता है और तापक्रम भी ३५° के ऊपर बहुत शीघ्र इस क्रिया को बन्द कर देता है। २५° से कम तापक्रम का इस क्रिया पर वैसाही प्रभाव पड़ता है जैसा कि रासायनिक क्रियाओं पर, अर्थात् तापक्रम की प्रत्येक १०° की वृद्धि से इस क्रिया की मात्रा दूनी हो जाती है। २५° के ऊपर निर्मित द्रव्यों का जीवनमूल द्वारा ठीक २ स्थानान्तर नहीं होने पाता इसलिये यह क्रिया कम मात्रा में होने लगती है।

प्रकाशः- अभीतक केवल पत्तिओं पर गिरनेवाले सूर्य-प्रकाश की तीव्रता (Intensity) का ही सम्बन्ध बतलाया

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गया है। श्वेत प्रकाश सात भिन्न २ वेभलेंथ और रंगों के प्रकाशों के समन्वय से बना होता है। पत्ती हरी इसलिये मालूम होती है कि वह अन्य रंगों के प्रकाशों की अपेक्षा हरे रंग के प्रकाश का शोषण अधिक करती है। जिन रंजित प्रकाशों का शोषण होता है उन सबका प्रभाव कार्बन एसिमिलेशन पर बराबर मात्रा में पड़ता है, परन्तु कहा यह जाता है कि रक्त प्रकाश से औरों की अपेक्षा कार्बन-एसिमिलेशन अधिक होता है। इसका कारण यह है कि औरों की अपेक्षा रक्त प्रकाश का शोषण अधिक होता है।

सूर्य-प्रकाश की शक्ति का ८०% पत्तिओं द्वारा शोषित होता है। इसमें भी केवल १०% शक्ति का शोषण क्लोरोप्लास्ट द्वारा होता है। इसके शेष अंश का शोषण कोष्ठ के अन्य भागों द्वारा होता है। चूंकि कार्बन-एसिमिलेशन उन क्रियाओं में से है जिनके होने में शक्ति खर्च होती है इसलिये यह स्पष्ट है कि वह शक्ति यही उपर्युक्त शोषित शक्ति है जिसके कारण यह क्रिया साधारण तापक्रम पर होती हुई देखी जाती है।

क्लोरोफिल :—जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है क्लोरोफ़िल चार पदार्थों का बना होता है। कुछ लोगों के अनुसार चारों पदार्थ इस क्रिया में अलग २ भाग लेते हैं, और कुछ लोगों का कहना है कि केवल शुद्ध क्लोरोफिल इसमें भाग लेता है। पर इतना निश्चित है कि क्लोरोफिल इस क्रिया में स्वयं भाग लेता है यद्यपि वह अन्तिम द्रव्यों के निर्माण में अवयव

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

स्वरूप नहीं पाया जाता। जो लोग कहते हैं कि शुद्ध क्लोरोफिल ही इस क्रिया में भाग लेता है वे यह भी कहते हैं कि इसके साथ साथ क्लोरोफाइलेज़ (Chlorophyllase) नामक प्रवर्तक भी साथ साथ काम करता है। चूंकि निर्मित द्रव्यों में क्लोरोफिल का अंश नहीं होता, अतः इसकी मात्रा का इस क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सारांश रूप में हम अधिक से अधिक अभी यही कह सकते हैं कि प्रकाश की शक्ति को काम में लाने के लिये क्लोरोप्लास्ट सम्भवतः एक यन्त्र की तरह सहायक होता है।

क्लोरोफिलनिर्माण के लिये आक्सीजन और कुछ तापक्रम के अतिरिक्त प्रकाश और लोहा का होना आवश्यक सिद्ध हुआ है। अन्धकार में बढ़ते हुये पौधे प्रायः पीले होते हैं जैसे रोलर के नीचे की दबी हुई घास। ऐसे पौधों को इटिओलेटेड (Etiolated) कहते हैं। इनमें प्रायः पर्वों की वृद्धि बहुत अधिक होती है, सम्भवतः इसीलिये कि वे पौधे शीघ्र बढ़कर प्रकाश में पहुंच जांय। यदि खाद्य पदार्थों में लोहा का यौगिक नहीं होता तो भी पौधा पीला हो जाता है, अतः प्रकाश की तरह लोहा भी क्लोरोफिलनिर्माण के लिये आवश्यक प्रतीत होता है।

कार्बन-एसिमिलेशन की असाधारण विधियां:—कार्बन-एसिमिलेशन की जिस साधारण विधि का वर्णन अभी तक किया गया है उसमें क्लोरोफिल और प्रकाश आवश्यक उपकरण हैं। अतः, जो पौधे इन दोनों आवश्यक उपकरणों से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वंचित रहते हैं उनमें कार्बन की प्राप्ति दूसरी विधियों से होती है। कुछ कीटाणु ऐसे होते हैं जो इनार्गेनिक पदार्थों (अमोनिया, नाइट्राइट, H_2S, मीथेन, हाइड्रोजन तथा लौह आक्साइड आदि) के आक्सीकरण से शक्ति प्राप्त करके CO_2 को आर्गेनिक खाद्य पदार्थों में बदलते हैं। इस तरह के कार्बन एसिमिलेशन को कीमोसिन्थेसिस (Chemosynthesis) कह सकते हैं।

अन्य बहुत से ऐसे पौधे होते हैं जो जन्तुओं की तरह निर्मित कार्बन यौगिकों पर ही निर्भर करते हैं। इनमें कुछ परजीवी (Parasite) होते हैं जो अन्य जीवित पदार्थों से अपना खाद्य पदार्थ ग्रहण करते हैं और कुछ मृतजीवी (Saprophyte) होते हैं जो उसे मृत पदार्थों से प्राप्त करते हैं। इसीलिये जन्तुओं तथा वनस्पतिओं के बहुत से रोग परजीवी कीटाणुओं तथा फंजाईके ही कारण होते हैं। उच्च श्रेणीके परजीवी पौधों में आकाशवेल को सब लोग जानते हैं। भिन्न २ प्रकार के वांदा भी जो वृक्षों पर लगे हुये पाये जाते हैं परजीवी होते हैं। पर वे अंशतः परजीवी होते हैं क्योंकि उनके हरे भागों में साधारण कार्बन-एसिमिलेशन भी होता रहता है। जिन वृक्षों पर वे लगे रहते हैं उनके कोष्ठरस का वे शोषण करते हैं अतः दोनों के रसवाहक तन्तु परस्पर सम्बन्धित रहते हैं।

मृताश्रयी पौधों के उदाहरण भी उच्चश्रेणी के पौधों में पाये जाते हैं। ये पौधे प्रायः ऐसी ज़मीन में उगते हैं जिसमें

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आर्गेनिक पदार्थों का आधिक्य होता है। इन सब पौधों में आर्गेनिक पदार्थों का शोषण फंगस श्रेणी की वनस्पतिओं की सहायता से होता है जो इन पौधों की जड़ों से सम्बन्धित रहती हैं। दोनों पौधे अन्योन्याश्रित जीवन व्यतीत करते हैं। फंगस आर्गेनिक पदार्थों का शोषण करके बड़े पौधे को देता है और बड़ा पौधा इसके बदले उसको आश्रय देता है। इस प्रकार के जीवन को माइकोराइज़ा (Mycorhiza) कहते हैं। इनके अतिरिक्त फंगस श्रेणी की वनस्पतियां अधिकतर मृताश्रयी होती हैं। छत्रक तथा रोटी या चर्म पर जमनेवाली दहिया इनके उदाहरण हैं।

नाइट्रोजन-एसिमिलेशन

पौधे साधारणतः ज़मीन से नाइट्रेट और अमोनियम लवण घोल रूप में लेते हैं। नाइट्रेट पौधे के अन्दर नाइट्राइट और फिर अमोनियम लवण के रूप में बदल जाते हैं। ये अथवा घोल रूप में आये हुये अमोनियम लवण शर्करा आदि से मिल कर एमिनो एसिड अथवा इसके लवणों के रूप में आ जाते हैं। ये ही पदार्थ अन्ततः प्रवर्तकों की सहायता से प्रोटीन बनाते हैं। उपर्युक्त परिवर्तन कहां होते हैं और इनके लिये कौन २ आवश्यक उपकरण हैं यह निश्चित रूप से अभी नहीं कहा जा सका। साधारणतः ऐसा माना जाता है कि मुख्यतः पत्तिओं में ही ये क्रियायें होती हैं। नाइट्रेट को नाइट्राइट में बदलने के लिये लोहा की उपस्थिति अनिवार्य मानी गई है। पोटैशियम

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और कैल्शियम का भी प्रोटीन निर्माण से अनिवार्य सम्बन्ध बतलाया गया है। प्रोटीन निर्माण के लिये पहले कार्बन एसिमिलेशन द्वारा शर्करा आदि का बनना आवश्यक है इसलिये कार्बन एसिमिलेशन के आवश्यक उपकरण इसके लिये भी आवश्यक समझे जाते हैं।

वे आसाधारण विधियां जिनसे भिन्न २ प्रकार के कीटाणु वायुमंडल के नाइट्रोजन को समुचित रूप में बदल कर पौधों को देते हैं, अब अच्छी तरह मालूम कर ली गई हैं। यह कार्य प्रायः तीन प्रकार के कीटाणुओं द्वारा होता है। शिम्बी वर्ग के बहुत से पौधों में जड़ों की ग्रंथिओं (Tubercles) में राइजोबियम रेडिसिकोला (Rhizobium radicicola) नामक कीटाणु होता है। एज़ोटोबैक्टर नामक कीटाणु चूनेदार मिट्टी में होता है और क्लास्ट्रीडियम (Clostridium) नामक कीटाणु भी मिट्टी में ही होता है। ये कीटाणु अन्य पौधों से शर्करा आदि लेते हैं और वायुमंडल के नाइट्रोजन को सम्भवतः एमिनो-यौगिकों के रूप में बदलकर उन पौधों को देते हैं।

वानस्पतिक तथा जान्तव खादों में नाइट्रोजन प्रोटीन तथा अन्य ऐसे यौगिकों के रूप में होता है जिनका जड़ों द्वारा शोषण नहीं हो सकता। यहां भी कीटाणुओं की सहायता से ही ये पदार्थ नाइट्रेट के रूप में आकर पौधों के लिये उपयोगी होते हैं। बैसिलस माइकाइडीज़ (Bacillus mycoides) नामक कीटाणु प्रोटीन तथा एमिनो-यौगिकों को तोड़कर अमोनिया

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पैदा करते हैं जो CO_2 से मिलकर अमोनियम कार्बोनेट आदि के रूप में आ जाता है। नाइट्रोसोमोनाज़ (Nitrosomonas) फिर इन्हें नाइट्राइट में और नाइट्रोबैक्टर (Nitro-bactor) अन्ततः नाइट्राइट को नाइट्रेट में बदल देते हैं जिनका पौधे शोषण करते हैं। नमज़मीन में जब कभी २ O_2 नहीं मिलता तो कुछ कीटाणु नाइट्रेट को नाइट्रोजन के रूप में ला देते हैं और नाइट्रोजन का चक्र इस तरह पुरा हो जाता है।

कुछ पौधें में नाइट्रोजन-एसिमिलेशन जन्तुओं की तरह होता है। ये पौधे प्रायः नम ज़मीन में होते हैं जहां नाइट्रेट का शोषण नहीं होने पाता। इसलिये ये छोटे छोटे कीड़ों को पकड़ कर उनके प्रोटीन को अपने काम में लाते हैं और इसीलिये ये मांसाहारी कहे जाते हैं। कीड़ों को पकड़ने के लिये उनमें बड़ी विचित्र व्यवस्थायें होती हैं। ड्रोसेरा या सन्-ड्यू नामक कीटभोजी पौधें की पत्तिओं में बहुत से सनाल ग्लैण्ड होते हैं जिनसे एक लसदार पदार्थ निकला करता है। जब कोई कीड़ा इनके सम्पर्क में आकर फंस जाता है तो आसपास के ग्लैण्ड मुड़कर उसे पूर्णतः ढक लेते हैं। फिर उनमें से एक ऐसा पाचक रस निकलता है जिससे कीड़े के प्रोटीन का पाचन हो जाता है। पाचन हो जाने पर ग्लैण्ड फिर दूसरे कीड़े को पकड़ने के लिये सीधे हो जाते हैं। इसी तरह नेपेन्थीज़ नामक पौधो में पत्तिओं का पात्रवत् रुपान्तर हुआ रहता है। पात्रवत् रचना के लिये एक ढक्कन भी होता है। इस ढक्कन के पास एक

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ऐसा मीठा पदार्थ तैयार होता है जिसे लेने के लिये कीड़े आया करते हैं। पात्रवत् रचना की भीतरी दीवाल चिकनी होती है और वह अंशतः पानी से भरी भी रहती है। कीड़े पास आते ही फिसल कर भीतर गिर जाते हैं और पानी में डूब कर मर जाते हैं। भीतर बहुत से पाचक-रसोत्पादक रोम भी होते हैं जिनसे निकला हुआ रस प्रोटीन का पाचन करता है।

निर्मित पदार्थों का स्थानान्तर और संचय
(Translocation and Storage)

निर्मित पदार्थों से मुख्यतः जीवनमूल और नये कोष्ठों की वृद्धि होती है। परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि पौधों में प्रायः द्रव्यनिर्माण और वृद्धि के भाग दूर २ होते हैं और प्रायः द्रव्यनिर्माणकाल तथा वृद्धिकाल भी भिन्न २ होते हैं। इसलिये निर्मित द्रव्यों के स्थानान्तर तथा संचय की आवश्यकता होती है। द्रव्यनिर्माण अधिकतर पत्तिओं में होता है और वहां से निर्मित पदार्थ घोल रूप में वृद्धिशील भागों में तथा संचय तन्तुओं में भेजे जाते हैं। निर्मित तथा संचित पदार्थों का स्थानान्तर रसावरोहण तन्तु द्वारा होता है। कार्बोहाइड्रेट श्रेणी के निर्मित पदार्थों का स्थानान्तर प्रायः घुलनशील शर्कराओं के रूप में और प्रोटीन आदि का स्थानान्तर प्रायः एमिनो-एसिडों के रूप में होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

संचित पदार्थ प्रायः तीन तरहके होते हैं अर्थात् कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा वसा (fats)। पहली श्रेणी के पदार्थों में स्टार्च प्रधान है जो बीजों तथा संचय-अंगों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त शर्करा (ईख), इन्यूलीन (Dandelion), सेलुलोज़ आदि पदार्थ भी कभी २ संचितावस्था में पाये जाते हैं। प्रोटीन यद्यपि घोल, कोलायड तथा ठोस तीनों अवस्थाओं में पाये जाते हैं पर संचय उनका प्रायः ठोस अवस्था में ही होता है। वसा के द्रवरूप को ही तैल कहते हैं। बहुत से बीजों में तैल हो संचितावस्था में पाया जात है। अघुलनशील संचित पदार्थों को घोल की अवस्था में लाने के लिये जीवनमूलीय प्रवर्तकों की सहायता ली जाती है। स्टार्च, इन्यूलीन, सेलुलोज़, इक्षु शर्करा, तैल तथा प्रोटीनों को घुलनशील बनानेवाले प्रवर्तक क्रमशः डायस्टेज़ और माल्टेज़, इन्यूलेज़ साइटेज़, इन्वर्टेज़, लाइपेज़ तथा प्रोटिओलिटिक प्रवर्तक (पेप्सीन तथा ट्रिप्सीन आदि) हैं।

पतनात्मक द्रव्यान्तर (Kotabolism)

उत्थानात्मक द्रव्यांन्तर सम्बन्धी परिवर्तनों में निम्नकोटि के पदार्थ उच्चकोटि के पदार्थों में बदले जाते हैं इसलिये इन परिवर्तनों में शक्ति खर्च होती है। यह शक्ति अधिकतर सूर्य-प्रकाश से मिलती है। पतनात्मक द्रव्यान्तर सम्बन्धी परिवर्तनों में उच्चश्रेणी के पदार्थों का पुनः निम्नश्रेणी के पदार्थों में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विश्लेषण हो जाता है अतः इन परिवर्तनों में शक्ति मुक्त होती है और उसे पौधे अपने काम में लाते हैं। अतः कहा जा सक्ता है कि उच्चश्रेणी के पदार्थों के निर्माण में जो शक्ति खर्च होती है वह वस्तुतः उन पदार्थों में संचित कर दी जाती है और जब उन पदार्थों का फिर विश्लेषण होता है तो वही संचित शक्ति इस रूप में मुक्त होती है कि पौधे उसे अपने काम में ला सक्ते हैं।

उपर्युक्त उच्चश्रेणी के पदार्थों में कार्वोहाइड्रेट श्रेणी के पदार्थ मुख्य हैं जिनके विश्लेषण से शक्ति प्राप्त की जाती है। इनका विश्लेषण आक्सीजन की सहायता से किया जाता है जिसे जीवित पदार्थ बाहर से लेते हैं। इस तरह के विश्लेषण या आक्सीकरण से कार्वनयौगिक अन्ततः Co_2 और जल के रुप में आ जाते हैं जिनमें Co_2 गैस रुप में प्रायः बाहर निकल जाती है। पौधे तथा जन्तु अधिकतर इसी तरह अपने कार्वन यौगिकों का विश्लेषण करके शक्ति प्राप्त करते हैं। साधारणतः आक्सीजन लेने और Co_2 को छोड़ने की क्रिया को श्वसन क्रिया (Respiration) कहते हैं जो जन्तुओं तथा वनस्पतिओं में एक ही अभिप्राय से और एक ही तरह से होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि जन्तुओं में प्रायः इस क्रिया के लिये अलग २ अंग होते हैं और पौधों में यह बात नहीं होती।

श्वसन क्रिया में रासायनिक परिवर्तन "$C_6 H_{12} O_6 + 6O_2 = 6Co_2 + 6H_2O$" सूत्र के अनुसार होता है। इस सूत्र से यह

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मालूम होता है कि इस क्रिया में जितना ही आक्सीजन खर्च होता है उतना ही CO_2 मुक्त होता है। यह दिखलाने के लिये कि पौधे भी जन्तुओं की तरह CO_2 छोड़ते हैं निम्नलिखित प्रयोग किया जा सक्ता है :—

पांच बोतलों को रबर और शीशे की नलिओं द्वारा परस्पर जोड़ देते हैं। ये पांचों बोतल रबर के कागों से बन्द रहते हैं। इन कागों में दो २ छिद्र होते हैं जिनमें शीशे की नलियां डाली रहती हैं। पांचवां बोतल एक एस्पायरेटर (Aspirator) से सम्बन्धित रहता है जिसे चालू कर देने पर सम्पूर्ण अपैरेटस में वायु का प्रवाह जारी हो जाता है। वायु पहले बोतल में पहुंचने के पूर्व एक सोडालाइम की नली से आती है जिससे उसमें मिले हुये CO_2 का अधिकांश सोडालाइम की नली में सोख लिया जाता है। बचा हुआ CO_2 पहले बोतल में सोख लिया जाता है क्योंकि उसमें बार्टाजल (बेरिअम हाइड्रोक्साइड का घोल) होता है। दूसरे बोतल में बार्टाजल होता है पर उसमें पहले बोतल की तरह अवक्षेप नहीं आता, जिससे यह निश्चय हो जाता है कि तीसरे बोतल में जाने वाली वायु में CO_2 नहीं है। तीसरे बोतल में भिगोये हुये या अंकुरित बीज रखे रहते हैं। चौथे और पांचवें बोतलों में भी बार्टाजल होता है। प्रयोग प्रारम्भ करने के कुछ समय बाद चौथे बोतल में अवक्षेप आने लगता है जिससे यह सिद्ध होता है कि चौथे बोतल में प्रवेश करने वाली वायु में CO_2 मिला हुआ है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पांचवे बोतल में फिर अवक्षेप नहीं आता और यह निश्चय हो जाता है कि तीसरे बोतल से निकले हुये सम्पूर्ण CO_2 का शोषण चौथे बोतल में हुआ है। इस अवक्षेप को लेकर निकले हुये CO_2 की मात्रा का पता चलाया जा सक्ता है। इस प्रयोग में तीसरे बोतल में बीजों की जगह एक वृद्धिशील नवीन शाखा भी रखी जा सक्ती है पर तब तीसरे बोतल को काले कपड़े से ढक देना होगा, जिससे निकला हुआ CO_2 प्रकाश के न होने से पत्तिओं द्वारा कार्वन-एसिमिलेशन के लिये न खर्च किया जा सके। पौधे में CO_2 दिन में इसीलिये नहीं निकलता कि उस समय कार्वन-एसिमिलेशन भी होता रहता है।

यद्यपि ऊपर के सूत्र के अनुसार श्वसन में आक्सीजन और CO_2 का आयतन बराबर होना चाहिये परन्तु CO_2 की मात्रा वस्तुतः आक्सीजन से प्रायः कम हुआ करती है। $\frac{CO_2}{O_2}$ को रेस्पिरेटरी कोशेंट (Respiratory Quotient) कहते हैं। तैलयुक्त बीजों के श्वसन में O_2 अधिक लगता है क्योंकि उनके तैलीय पदार्थ पहले कुछ आक्सीजन लेकर कार्बोहाइड्रेट रूप में आते हैं फिर उनका उपर्युक्त सूत्र के अनुसार श्वसन होता है। इसी तरह नागफनी वर्ग के तथा अन्य मांसल पौधों में श्वसन क्रिया अधूरी रह जाती है जिससे उनमें CO_2 न बन कर आक्ज़ेलिक अम्ल बनता है। इन पौधों में वायु-विनिमय कठिनता से होता है, अतः कार्वन-एसिमिलेशन के लिये इन्हें CO_2 पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता। कार्वन-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

एसिमिलेशन के लिये CO_2 का अधिक अंश इसी अम्ल से आता है जो प्रकाश में CO_2 में बदल जाता है। इन कारणों से इन पौधों में $\frac{CO_2}{O_2}$ प्रायः ·५ के लगभग होता है। रेस्पिरेटरी कोशंट निम्नरीति से मापा जा सक्ता है :—

एक फ्लास्क तीन छेद वाले रबर के एक काग से बन्द कर दिया जाता है। एक शीशे को नली का एक सिरा गरम करके और फूंक करके गोल अथवा पात्रवत बना लिया जाता है और उसमें तेज़ कास्टिक पोटाश का घोल भर दिया जाता है। इस नली में एक शीशे का पतला छड़ (Rod) डाल देते हैं। शीशे की नली (अ) को रबर काग के एक छिद्र में डाल कर उसका दूसरा सिरा रबर की नली और क्लिप से बन्द कर देते हैं। शीशे की एक दूसरी नली (ब) को काग के दूसरे छिद्र में डाल कर फ्लास्क के अन्दर लटका देते हैं। इसका भी उपरी सिरा रबर नली और क्लिप से बन्द रहता है। इसका दूसरा सिरा हुक की तरह टेढ़ा रहता है जिससे भिगोये हुये बीज एक झझरीदार थैली में बन्द करके लटकाये हुये रहते हैं। तीसरे छिद्र में भी एक खुली हुई और मुड़ी हुई शीशे की नली डाली रहती है जिसका सम्बन्ध बाहर की ओर एक दूसरी नली से होता है जिसमें माप के चिन्ह होते हैं और जो फ्लास्क के समानान्तर होती है। इस नली का सम्बन्ध एक लम्बी रबर की नली द्वारा पारा से भरे हुये एक पात्र से होता है। यह पात्र, रबर की नली, और शीशे की नली जिसमें

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

माप के चिन्ह होते हैं सब मिल कर एक U आकार की रचना बनाते हैं।

प्रयोग प्रारम्भ करते समय 'अ' नली का मुंह खोल देते हैं और पारा नली तथा पात्र में बराबर सतह में आ जाता है। फिर, 'अ' नली का मुंह बन्द कर देते हैं। दो तीन घण्टों के बाद जब नली में पारा चढ़ आता है तो पात्र और नली में पारा की सतहों को फिर बराबर कर लेते हैं और जितना पारा पहले से ऊपर चढ़ा रहता है उसे टांक लेते हैं। इसके बाद 'अ' नली के वल्ब को पतले छड़ से तोड़ देते हैं जिससे सम्पूर्ण कास्टिक पोटाश बाहर आकर Co_2 को सोख लेता है। इस समय 'अ' और 'ब' नलियों के भी मुंह खुले रहते हैं। इस बार पारा बहुत ऊपर चढ़ आता है। इस बार जितना पारा चढ़ता है उतना ही Co_2 वस्तुतः श्वसन में निकलता है, पर आक्सीजन उतना खर्च होता है जितना पारा प्रारम्भ से ऊपर चढ़ा रहता है। इस तरह दोनों के आयतन मालूम हो जाने पर दोनों का अनुपात निकाला जा सकता है।

अनीरोबिक (Anaerobic) श्वसन :– प्रायः सभी पौधे न्यूनाधिक मात्रा में आक्सीजन की अनुपस्थिति में भी श्वसन कर लेते हैं, अर्थात् Co_2 निकालते रहते हैं। इस तरह के श्वसन को अनीरोबिक, और आक्सीजन की उपस्थिति में उसकी सहायता से होनेवाले श्वसन को इरोबिक श्वसन कहते हैं। अनीरोबिक श्वसन को इन्ट्रामालीक्यूलर श्वसन भी कहते

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हैं। यदि एक परीक्षा नली में पारा भरकर और उसे उलट कर पारा से भरे हुये एक दूसरे पात्र में रख दें और परीक्षानली में थोड़े से भिगोये हुये बीज छोड़ दें तो अनौक्सीविक श्वसन अच्छी तरह दिखाया जा सकता है। बीज, जो नली में छोड़ने पर उसके सिरे पर चले जाते हैं, आक्सीजन के न रहने पर भी श्वसन करते हुये पाये गये हैं क्योंकि थोड़ेही समय में नली का ऊपरी हिस्सा गैस से भरने लगता है। परीक्षा करने पर नली में Co_2 गैस मिलती है।

शर्करा का अनौक्सीविक श्वसन प्रायः "$C_6 H_{12} O_6 = 2C_2 H_6 o + 2Co_2$" सूत्र के अनुसार होता है। इस विधि से भी शक्ति प्राप्त होती है पर इसमें पहली विधि की अपेक्षा बहुत अधिक शर्करा खर्च करनी पड़ती है। इन दोनों विधिओं में रासायनिक दृष्टि से अब कोई विशेष महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं माना जाता। इस समय अधिक लोग यही मानते हैं कि शर्करा से Co_2 बनने में कई रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिनमें प्रारम्भ के सभी परिवर्तन दोनों विधिओं में समान होते हैं। भिन्नता केवल अन्तिम परिवर्तन में होती है। इस परिवर्तन के पूर्व का बना हुआ पदार्थ इस तरह का होता है कि उसका आक्सीकरण बहुत आसानी से हो जाता है यदि आक्सीजन मौजूद रहता है। आक्सीजन के न रहने पर वही पदार्थ एल्कोहल में बदल जाता है।

चूंकि साधारण तापक्रम पर शर्करा का वायुमिश्रित

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आक्सीजन द्वारा आक्सीकरण नहीं देखने में आता अतः यह निश्चित है कि वानस्पतिक कोष्ठ में आक्सीजन को इस क्रिया के लिये उत्तेजित करने का कोई न कोई विधान अवश्य होगा। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि किसी पदार्थ का आक्सीकरण केवल उसके और आक्सीजन के संयोग से ही नहीं होता। यदि किसी तरह उस पदार्थ के हाइड्रोजन को अलग कर देते हैं तब भी रासायनिक दृष्टि से उसका आक्सीकरण हो जाता है। यहां आवश्यकता केवल इसी बात की है कि कोई न कोई हाइड्रोजन-ग्राहक (Acceptor) अवश्य होना चाहिये। हाइड्रोजन और आक्सीजन को संयोग के लिये उत्तेजित करनेवाले तथा इन्हें ग्रहण करनेवाले पदार्थों के सम्बन्ध में भिन्न २ वैज्ञानिकों द्वारा भिन्न २ पदार्थों की कल्पना की गई है। पर इतना प्रायः सभी मानते हैं कि इन दोनों तत्वों का ग्रहण और उत्तेजन भिन्न २ जीवनमूलीय प्रवर्तकों द्वारा होता है। इन प्रवर्त्तकों में आक्सिडेज़, पराक्सिडेज़, आक्सिजिनेज़ तथा ज़ाइमेज़ मुख्य हैं। हाइड्रोजन-ग्राहकों में क्रोमोजेन आदि प्रधान माने जाते हैं।

श्वसन के उपकरण:—ताप का इस क्रिया पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा कार्वन-एसिमिलेशन की क्रिया पर। परन्तु इस क्रिया में प्रवर्तकों की प्रधानता है अतः कुछ अन्तर देखने में आता है। आक्सीजन इस क्रिया के लिये सब दशाओं में और सब पौधों के लिये आवश्यक नहीं है,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जैसा कि ऊपर के विवरण से स्पष्ट ही है। आक्सीजन की मात्रा बढ़ाने से कुछ ही सीमा तक श्वसन बढ़ता है पर आगे नहीं बढ़ता। श्वसनार्थ होनेवाले प्रयुक्तपदार्थों की मात्रा पर भी श्वसन निर्भर करता है। ये पदार्थ जब अल्प मात्रा में रहते हैं तब तो इनकी मात्रा के ही अनुसार श्वसन कम या अधिक होता है पर इनकी मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाने पर श्वसन नहीं बढ़ता क्योंकि तब आक्सीकरण-प्रवर्तक सीमास्थापक हो जाते हैं।

फर्मेंटेशन (Fermentation) :— चूंकि अनीरोविक श्वसन में थोड़ी शक्ति के लिये बहुत अधिक पदार्थ नष्ट करना पड़ता है अतः उच्चश्रेणी के पौधों में इस विधि से श्वसन नहीं होता और आक्सोजन की उपस्थिति में उन्हें इस विधि की आवश्यकता भी नहीं होती। समय पड़ने पर वे कुछ ही समय तक इस विधि से काम चला सकते हैं क्योंकि इसमें प्रायः ऐसे विषैले पदार्थों की उत्पत्ति होती है जिनका उन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत बहुत से क्षुद्र पौधों में अनीरोविक विधि से ही श्वसन होता है। इनमें कुछ तो ऐसे हैं जो केवल आक्सीजन के न रहने पर इस विधि से अपना काम चला ले जाते हैं और कुछ सर्वदा इसी तरह का श्वसन करते हैं। ये सब पौधे आक्सीजन की अनुपस्थिति में आर्गेनिक पदार्थों के विश्लेषण से शक्ति प्राप्त करते हैं और उनकी इस क्रिया को फर्मेंटेशन कह सकते हैं। यह शब्द पहले

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आर्गेनिक पदार्थों के सड़ने के अर्थ में प्रयुक्त होता था जैसे, मीठे फलों का सड़ना, दूध का बिगड़ना, खिरका का बनना तथा पत्ती आदि का सड़ना। ईस्ट (Yeast) नाम की क्षुद्र वनस्पतिओं को, जिनके कारण ताड़ी में फर्मेंटेशन होता है, यदि शर्करा घोल में छोड़ दिया जाय तो घोल से CO_2 गैस निकलने लगती है और कुछ समय के बाद शर्करा घोल अल्कोहल में बदल जाता है। ताड़ी में फर्मेंटेशन के कारण इसी तरह अल्कोहल बनता है जिससे वह मादक होती है। यहां शर्करा का फर्मेंटेशन ज़ाइमेज़ नामक प्रवर्त्तक की सहायता से होता है जो उपर्युक्त क्षुद्र वनस्पतिओं से निकलता है।

श्वसन क्रिया में ताप की उत्पत्ति:—श्वसन क्रिया में अधिकतर उच्चश्रेणी के पदार्थों का आक्सीकरण होता है अतः इसमें ताप का उत्पन्न होना आश्चर्यजनक नहीं है। चूंकि यह ताप उत्पन्न होते ही प्रायः जलत्याग आदि क्रियाओं में खर्च हो जाता है अतः यह हमें स्पष्ट रूप से मालूम नहीं होता। परन्तु, जहां श्वसन क्रिया बड़े वेग से होती है और बहुत अधिक मात्रा में ताप की उत्पत्ति होती है, वहां श्वसन करने वाले भागों का तापक्रम बहुत ऊंचा हो जाता है। जैसे, सूरण-जाति के पौधों में जब मांसल विदण्डिक पुष्पव्यूहों का विकास होने लगता है अथवा जब बहुत से बीज एक साथ बीजोद्भेद करते रहते हैं तो तापक्रम बहुत अधिक बढ़ जाता है। श्वसन क्रिया में ताप की उत्पत्ति निम्नरीति से दिखाई जा सकी है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इस प्रयोग के लिये तीन ऐसे वैकुअमफ्लास्क (Vacuum flask) लेते हैं जो पेंदी के मध्य में खुले हुये और नलिकाकार होते हैं। मटर के कुछ बीजों को भिगोकर उसके तीन भाग कर लेते हैं। एक भाग कोरोसिव सब्लिमेट के हलके घोल में धोकर पहले फ्लास्क में रख देते हैं। दूसरे भाग को कुछ समय तक पानी में उबाल कर फिर दूसरे फ्लास्क में रखते हैं। तीसरे भाग को उबलते हुये पानी में रखने के बाद कोरोसिव सब्लिमेट में धोते हैं और फिर उसे तीसरे फ्लास्क में रखते हैं। फ्लास्कों के मुंह रूई से बन्द करके तीनों के अन्दर एक २ तापमापक यन्त्र डाल देते हैं। ये फ्लास्क नीचे की ओर खुले रहते हैं, अतः श्वसन में निकला हुआ Co_2 बाहर निकल जाता है। अगर ऐसी व्यवस्था न होती तो Co_2 अधिक मात्रा में हो जाने पर श्वसन क्रिया को बन्द कर देता। इस प्रयोग में यह देखने में आता है कि दो तीन दिनों तक पहले फ्लास्क का तापक्रम औरों से लगभग दो अंश ऊपर रहता है। इसके बाद दूसरे फ्लास्क का तापक्रम बहुत अधिक बढ़ जाता है पर तीसरे फ्लास्क के तापक्रम में अन्त तक कोई अन्तर नहीं आता। दूसरे और तीसरे फ्लास्कों के बीज जीवित नहीं होते, अतः इनमें बीजों के श्वसन से ताप के उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती। अतः यह स्पष्ट है कि दूसरे फ्लास्क में ताप उन कीटाणुओं के श्वसन से प्राप्त होता है जो दो तीन दिनों में उस फ्लास्क में आकर अपनी वृद्धि कर लेते हैं। इस प्रयोग से दूसरी बात यह मालूम होती

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है कि पहले फ्लास्क में ताप की उत्पत्ति बीजों के श्वसन से ही होती है। तीसरे फ्लास्क में न तो बीज ही जीवित होते और न वहां कीटाणुओं की ही वृद्धि हो सकती, अतः इसके तापक्रम में कोई अन्तर नहीं आता।

श्वसन की असाधारण विधियां:— श्वसन की सामान्य विधिओं में शर्करा श्रेणी के पदार्थों का आक्सीजन की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में विश्लेषण होता है और उनके अन्दर की संचित शक्ति मुक्त होकर पौधे को प्राप्त होती है। इसके विपरीत बहुत सी कीटाणु श्रेणी की वनस्पतिआं शर्करा आदि के बदले बहुत ही सामान्य इनार्गेनिक पदार्थों के आक्सीकरण से अपने लिये शक्ति प्राप्त करती हैं। भिन्न २ जाति के कीटाणुओं में भिन्न २ पदार्थों का आक्सीकरण होता है। कुछ तो स्वतन्त्र आक्सीजन की सहायता से हाइड्रोजन, मीथेन, अमोनिया, नाइट्रसाम्ल, सल्फर तथा हाइड्रोजन सल्फाइड का आक्सीकरण करती हैं और कुछ नाइट्रस् आक्साइड से हाइड्रोजन का तथा सल्फर या सल्फर थायोसल्फेट से नाइट्रेट का आक्सीकरण करती है।

इनके अतिरिक्त लौहकीटाणु, कार्बनकीटाणु तथा सल्फर-कीटाणु आक्सीजन की सहायता से क्रमशः फेरस् कार्बोनेट को फेरिक आक्साइड में, कार्बन को CO_2 में और प्रोटीन को हाइड्रोजन सल्फाइड में तथा हाइड्रोजन सल्फाइड को फिर सल्फर में बदल कर शक्ति प्राप्त करते हैं। चूंकि उपर्युक्त सभी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कीटाणु क्लोरोफिल से वंचित होने के कारण शर्करा आदि के निर्माण में सूर्य-प्रकाश का उपयोग नहीं कर सकते, अतः वे कार्बन-एसिमिलेशन के लिये उपर्युक्त प्रकार से प्राप्त की हुई शक्ति पर ही निर्भर करते हैं।

कार्बन-एसिमिलेशन तथा श्वसन क्रिया में तुलना:- पौधों की इन दोनों प्रधान क्रियाओं को स्थूल रूप से समझने के लिये उनके निम्नलिखित मुख्य लक्षणों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

श्वसन क्रिया	कार्बन-एसिमिलेशन
(१) यह एक विश्लेषणात्मक और शरीरशोषक क्रिया है।	(१) यह एक संश्लेषणात्मक और शरीरपोषक क्रिया है।
(२) यह पौधे के सर्वाङ्ग में होती है।	(२) यह केवल हरे भागों में होती है।
(३) इसमें प्रायः O_2 खर्च होता है और Co_2 की प्राप्ति होती है।	(३) यहां Co_2 खर्च होता है और O_2 प्राप्त होता है।
(४) यह प्रकाश और क्लोरोफिल पर निर्भर नहीं करती।	(४) इसके लिये प्रकाश और क्लोरोफिल आवश्यक होते हैं।
(५) शोषक होने से यह शरीर के भार को घटाती है।	(५) पोषक होने से यह शरीर के भार को बढ़ाती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(ब) वृद्धि तथा गति (Growth & movement)

बीजोद्भेद के पश्चात् पौधा क्रमशः कद में बढ़ता जाता है और नये कोष्ठों, तन्तुओं तथा अवयवों की उत्पत्ति होती रहती है। यह वृद्धि वस्तुतः उन भिन्न २ द्रव्यान्तर सम्बन्धी क्रियाओं का परिणाम मात्र है जिनका पिछले पृष्ठों में अध्ययन किया गया है। उत्थानात्मक द्रव्यान्तरों में क्रमशः जीवनमूल की उत्पत्ति होती है और इसमें तथा अन्य निर्मित पदार्थों में सूर्य-प्रकाश से मिली हुई शक्ति का संचय होता है। पतनात्मक द्रव्यान्तरों में इसके विरुद्ध जीवनमूल आदि विच्छिन्न होकर उन पदार्थों को उत्पन्न करते हैं जिनकी या तो नवीन तन्तुओं के बनने में आवश्यकता पड़ती है या जो आवश्यक रासायनिक क्रियाओं में भाग लेते हैं। पतनात्मक क्रियाओं में उपर्युक्त संचित शक्ति भी मुक्त हो जाती है जिसकी सहायता से पौधा अपने जीवन की सम्पूर्ण क्रियाओं का सम्पादन करता है। चूंकि सामान्यतः उत्थानात्मक क्रियाओं का पतनात्मक क्रियाओं पर आधिक्य ही पाया जाता है अतः यह आधिक्य वृद्धि अर्थात् नवीन भागों की उत्पत्ति में हमें दिखाई देता है। यद्यपि कभी २, जैसे अन्धकार में, कुछ पौधे केवल संचित पदार्थों के पतनात्मक द्रव्यान्तरों से ही वृद्धि कर लेते हैं तथापि हमें यह न मान लेना चाहिये कि बिना उत्थानात्मक द्रव्यान्तरों के आधिक्य से अधिक वृद्धि सम्भव हो सकती है।

पौधे की स्थायी वृद्धि के लिये उसके सूक्ष्मतम एकांकों की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वृद्धि का होना आवश्यक है। कोष्ठवृद्धि का अभिप्राय कोष्ठों की संख्यावृद्धि तथा आयतनवृद्धि दोनों से है। संख्यावृद्धि उन प्रारम्भिक अथवा गौंड वृद्धिशील तन्तुओं द्वारा होती है जिनकी चर्चा अन्तराकृतिक विभाग में की जा चुकी है। ये वृद्धिशील तन्तु जड़ और तनों में अग्रस्थित होते हैं और विनाल पत्तिओं के आधार पर तथा सनाल पत्तिओं में नाल के अग्र पर होते हैं। इनके अतिरिक्त प्रारम्भिक अथवा गौंड कैम्बियम के वृद्धिशील तन्तु भी होते हैं जो परिपक्व तन्तुओं के बीच में पहले ही से मौजूद रहते हैं अथवा समय २ पर उत्पन्न होते रहते हैं।

वृद्धिशील तन्तुओं में जब वृद्धि प्रारम्भ होती है तो उनके कोष्ठ प्रति बार पहले आयतन में बढ़ते हैं और फिर दो दो कोष्ठों में विभक्त होते रहते है। नवीन कोष्ठों में से एक जनक कोष्ठ की तरह वृद्धिशील रह जाता है और दूसरा स्थायी तन्तुओं के बनाने में लग जाता है। इसके अन्दर जिन खाद्य पदार्थों के घोल बाहर से आते हैं उनमें कुछ ऐसे जलाकर्षक पदार्थ भी होते हैं जो बाहर से जल भी कोष्ठ के अन्दर खींचते हैं। जलाकर्षक पदार्थों का कुछ अंश प्रायः कोष्ठ के जीवनमूल से भी बना हुआ होता है। जल तथा खाद्य पदार्थों के आने से कोष्ठ आयतन में बढ़ता है और उसका सेलुलोज़ वाला कोष्ठावरण फैल जाता है। फिर, कोष्ठ के अन्दर बने हुये सेलुलोज़ के नये कण फैली हुई दीवाल के पुराने कणों के बीच २ में जमा होने लगते हैं। इस तरह कोष्ठ की स्थायी आयतन वृद्धि हो जाती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यहां हमें इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि, यद्यपि नवीन कोष्ठों की उत्पत्ति जड़ और तनों के ठीक अग्र पर होती है तथापि उनकी स्थायी आयतन वृद्धि अग्र के पीछे होती है। यदि किसी वृद्धिशील जड़ या तने के अग्र भाग पर स्याही से आड़ी रेखायें खींच कर उसे कई बराबर और सूक्ष्म भागों में बांट कर छोड़ दें तो एक दो दिनों के बाद यह देखने में आवेगा कि वास्तविक अग्र के पीछे का भाग सबसे बड़ा और पीछे के शेष भाग क्रमशः छोटे हो गये हैं। कलिका के विकास के समय संक्षिप्त पर्वों तथा पत्तिओं की वृद्धि देखकर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उनकी उस समय की वृद्धि उन उपस्थित कोष्ठों की आयतन वृद्धि का ही फल है जो वृद्धिशील अग्र से बहुत दूर होते हैं।

वृद्धि के आवश्यक उपकरण :— घुलनशील खाद्य पदार्थों की तथा आक्सीजन की आमदनी, उपयुक्त तापक्रम और वृद्धिशील कोष्ठ को रसपूर्ण अथवा फूला हुआ (Turgid) रखने की सारी व्यवस्थायें कोष्ठ-वृद्धि के लिये आवश्यक होती हैं। खाद्य पदार्थों में नत्रजनीय पदार्थों की अपेक्षा कार्वो-हाइड्रेट श्रेणी के पदार्थों की अधिक आवश्यकता पड़ती है। द्रव्यान्तर सम्बन्धी क्रियाओं के लिये जो तापक्रम उपयुक्त होता है वही वृद्धि के लिये भी उपयुक्त होना चाहिये और वही होता भी है। उष्णप्रदेशीय वृक्षों के बहुत बड़े होने का एक प्रधान कारण यह भी है कि उनको वृद्धि के लिये पर्याप्त ताप

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मिलता है। आक्सीजन श्वसन क्रिया के लिये आवश्यक होने के कारण वृद्धि के लिये भी आवश्यक होता है और श्वसन की तरह इस क्रिया का भी नियमन करता है। खेतों को जोतने का अभिप्राय यही होता है कि मिट्टी आक्सीजन की पर्याप्त मात्रा से सम्पन्न हो जाय। उपर्युक्त कारणों से आक्सीजन के अभाव में वृद्धि का कुछ समय के बाद बन्द हो जाना स्वाभाविक है।

वृद्धिशील कोष्ठों को फूला हुआ रखने के लिये जल आवश्यक है। इस जल को भीतर लेने के लिये कोष्ठ के अन्दर जलाकर्षक (Osmotic) पदार्थों का होना भी आवश्यक है। फिर, इस जल को कोष्ठ के अन्दर रोक रखने के लिये जीवनमूल को अर्धभेद्यता आवश्यक है जिसके कारण कोष्ठावरण की संकोच प्रवृत्ति के होते हुये भी जलाकर्षक पदार्थ तथा जल की मात्रा कम नहीं होने पाती। यही कारण है कि जल की आमदनी तथा जलाकर्षण की शक्ति कम होने पर या जीवनमूल की भेद्यता बढ़ाने पर वृद्धि का वेग कम हो जाता है।

जिन पदार्थों का वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है उनमें वृद्धि के उपर्युक्त आवश्यक उपकरणों के अतिरिक्त प्रकाश भी एक उपकरण है जो वृद्धि विरोधी होता है। अन्धकार में रखने पर पौधों में कुछ समय तक बहुत अधिक वृद्धि होती है। इससे मालूम होता है कि प्रकाश का प्रभाव वृद्धि के अनुकूल नहीं होता। हिमालय आदि के शिखरों पर होनेवाले पौधों को दिन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में तीव्र प्रकाश और रात्रि में बहुत नीचा तापक्रम का सामना करना पड़ता है। इन दोनों अवस्थाओं के संयुक्त प्रभाव से वहां के बहुत से पौधे प्रायः छोटे और छत्तेदार (Cushion & Rosette forms) होते हैं।

कोष्ठों की रसपूर्णता का प्रभाव :—बहुत से पौधों के मांसल अथवा रसदार पत्रनालों या पुष्पदण्डों में जो दृढ़ता (Rigidity) देखने में आती है वह इन्हीं रसपूर्ण कोष्ठों के कारण होती है जो प्रायः मध्य भाग में होते हैं। मध्य तन्तु के ये कोष्ठ पर्याप्त जल की उपस्थिति में बाहरी तन्तु के कोष्ठों की अपेक्षा अधिक बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि जब दुग्धफेनी (Dandelion) के पुष्पदण्ड को लम्बाई में दो भागों में काटकर रख देते हैं तो दोनों खण्ड इस प्रकार टेढ़े हो जाते कि मध्य तन्तु उनके उन्नतोदर पृष्ठ पर पड़ता है। बहुत सी रसदार जड़ें भी इसी प्रकार काट कर पानी में रख दी जाती हैं तो वे इस प्रकार टेढ़ी हो जाती है कि उनका मध्य तन्तु नतोदर पृष्ठ पर पड़ता है, क्योंकि इनमें अधिक बढ़नेवाले कोष्ठ बाहर की ओर होते हैं। इस प्रकार का तनाव (Tension) केवल लम्बाई में ही नहीं, बल्कि चौड़ाई में भी पड़ता है। अन्ततः हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि वृद्धिशील तन्तु के अन्दर भिन्न २ भागों में भिन्न २ मात्राओं में तनाव होने से ही अन्तर-कोष्ठीय स्थानों की उत्पत्ति होती है।

वृद्धिवेग :— पौधों में तनों का वृद्धिवेग प्रायः एक ऐसे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यन्त्र से मापा जाता है जिसे आकूज़ानोमीटर (Auxanometer) कहते हैं। गमले में लगे हुये किसी छोटे पौधे के वृद्धिशील अग्र को एक फीते से बांध देते हैं। फीते के दूसरे सिरे में कोई वज़नी चीज़ बांध कर और उसे एक गतिशील चक्के पर डाल कर लटका देते हैं। तना जितना ही बढ़ता है फीते का दूसरा सिरा उतनाही नीचे उतरता है। यदि उपर्युक्त छोटा चक्का (Pulley) किसी बड़े चक्के से सम्बन्धित कर दिया जाय तो थोड़ी वृद्धि भी आसानी से मापी जा सकती है। किसी अवयव या कोष्ठ के सम्पूर्ण वृद्धिकाल के वेग को मापने से मालूम होता है कि पहले वृद्धि का वेग क्रमशः बढ़ता है फिर कुछ सीमातक पहुंचने के बाद वह क्रमशः कम होते हुये शून्य हो जाता है। वृद्धि पूर्णतः उस समय बन्द होती है जब वृद्धिशील भाग की पूर्ण स्थायी आयतन वृद्धि हो चुकती है। उपर्युक्त सम्पूर्ण वृद्धिकाल को ग्रैण्डवृद्धिकाल (Grand period of growth) कहते हैं।

पौधों के दैनिक वृद्धिवेग में भी प्रायः एक निश्चित नियम देखने में आता है। चूंकि रात में प्रकाश का विरोधी प्रभाव नहीं रहता और तापक्रम प्रायः सीमास्थापक नहीं होता, इसलिये प्रातःकाल तक वेग क्रमशः बढ़ता जाता है। दिन निकलने पर प्रकाश के कारण वेग कम होने लगता है और सूर्यास्त तक न्यूनांक तक पहुंच जाता है। यहां इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि, जब कभी रात में तापक्रम बहुत नीचा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हो जाता है तो वह वृद्धिवेग को कम कर देता है और दिन में वही बहुत अधिक हो जाने पर प्रकाश के विरोधी प्रभाव को दबा भी देता है। इन विशेष अवस्थाओं में पौधों की उपर्युक्त दैनिक नियमित वेग में बड़ा अन्तर आ जाता है।

पौधों में गति (Movements in plants)

पौधों में गति दो प्रकार की होती है। एक प्रकार की गति जीवनमूल सम्बन्धी भीतरी कारणों पर निर्भर करती है और स्वेच्छागति (Spontaneous movement) कही जाती है। दूसरी प्रकार की गति वाह्य उत्तेजनाओं के कारण होती है और प्रेरित गति (Induced movement) कही जाती है। ये दोनों प्रकार की गतिआं कोष्टीय जीवनमूल, परिपक्व अथवा अपरिपक्व (वृद्धिशील) अवयव तथा सम्पूर्ण वनस्पति द्वारा प्रदर्शित की जा सकती हैं।

कोष्टीय जीवनमूल की स्वेच्छागति का उल्लेख उसकी चक्रगति तथा वक्रगति के नाम से पहले ही किया जा चुका है। परिपक्व भागों की स्वेच्छागति का बहुत रोचक उदाहरण "टेलीग्राफ प्लाण्ट (Telegraph plant)" नामक वनस्पति में मिलता है जिसकी संयुक्त पत्ती के दो आधारीय पत्रक ऊंचे तापक्रम पर बराबर झूमते रहते हैं। वृद्धिशील अवयवों की स्वेच्छागति प्रायः नवीन कलिकावद्ध पत्तिओं के विकास के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

समय देखी जा सकती है। जब कली के खिलने का समय आता है उस समय इन पत्तिओं के नतोदर भीतरी पृष्ठ पर बाहरी पृष्ठ की अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है जिससे वे एक दूसरे से अलग हो जाती हैं। उत्पत्ति के बाद इन पत्तिओं के भीतरी पृष्ठ पर बाहरी पृष्ठ की अपेक्षा कम वृद्धि हुई रहती है जिससे कलिका की अवस्था में वे भीतर की ओर नतोदर और परस्पर संलग्न रहती हैं। इसी तरह सेम में बीजोद्भेद के समय हाइपोकाटिल ऊपरी पृष्ठ पर अधिक वृद्धि करके पहले धनुषाकार टेढ़ा हो जाता है और फिर, विपरीत पृष्ठ पर अधिक वृद्धि करके वह सीधा हो जाता है।

उत्तेजना तथा प्रेरित गति :— सम्पूर्ण प्राणिओं के जीवनमूल में अनुकूलन (Adaptation) की जो अलौकिक शक्ति होती है उसके कारण उनमें यह योग्यता होती है कि यदि वे संयोगवश किसी विशेष अवस्था में पड़ जाती हैं जिसके लिये वे अभ्यस्त नहीं हैं तो वे शीघ्र किसी न किसी प्रकार की प्रतिक्रिया (Reaction) करके अपने जीवनक्रम और उस विशेष अवस्था के बीच सन्तुलन (Balance) स्थापित कर लेती है। इस प्रकार की विशेष अवस्थायें जो वर्तमान परिस्थिति की सामान्य अवस्थाओं से केवल मात्रा में अथवा स्वभाव (Quality) में भिन्न होती हैं और जो प्राणिओं को किसी प्रतिक्रिया के लिये उत्तेजित करती हैं, उत्तेजना (Stimulus) कही जाती हैं। बाह्य उत्तेजनाओं के उत्तर में पौधों तथा उनके अवयवों द्वारा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जिन गत्यात्मक प्रतिक्रियाओं का प्रदर्शन होता है उन्हें प्रेरित गति कहते हैं। प्रेरितगति से परिपक्व तथा अपरिपक्व अवयवों की स्थिति (Orientation) तथा वृद्धि-दिशा में परिवर्तन होता ही है, कहीं कहीं इससे स्वतन्त्र तथा गतिशील वनस्पतिओं के सम्पूर्ण शरीर का स्थानान्तर भी हो जाता है। क्षुद्र श्रेणी को अनेक गतिशील वनस्पतिओं में यह विशेषता होती है कि वे मृदु प्रकाश से आकर्षित और तीव्र प्रकाश से प्रत्याकर्षित होती हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से पौधों के गतिशील नरकोष्ठों का मैलिकाम्ल (Malic acid) तथा अन्य रासायनिक पदार्थों की ओर आकर्षण होता है। ये पदार्थ प्रायः गर्भाधान के समय नारीकोष्ठोत्पादक भागों में बनते हैं। अतः उनकी इस प्रतिक्रिया को, जो गर्भाधान में सहायता पहुंचाती है, सार्थकता अच्छी तरह समझी जा सकती है।

वाह्य उत्तेजनाओं की प्रेरणा से अवयवों में जो गति पैदा होती है उसे प्रेरित अवयव-गति (Tropic movement) कहते हैं। वाह्य उत्तेजनाओं में भूम्याकर्षण (Gravity), प्रकाश, आर्द्रता, स्पर्श, तथा रासायनिक पदार्थों की उत्तेजनाओं का प्रभाव बहुत स्पष्ट और व्यापी होता है। यद्यपि इनका प्रभाव परिपक्व भागों में भी देखने में आता है पर उसका प्रदर्शन वृद्धिशील भागों में अधिक स्पष्ट होता है।

भूम्याकर्षणजन्य अवयव-गति (Geotropic

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

movements) :— जब किसी शिशु वनस्पति को वेड़ी करके रख देते हैं तो कुछ समय के बाद उसके तने तथा जड़ के वृद्धिशील अग्र भाग टेढ़े हो जाते हैं और तना ठीक ऊपर की ओर और जड़ ठीक नीचे की ओर बढ़ने लगती है। यदि किसी दूसरी शिशु वनस्पति को पहले ही की तरह वेड़ी करके एक ऐसी मशीन में लगा देते हैं जो उसे निरन्तर घुमाती रहती है तो उसके तना तथा जड़ की वृद्धिदिशाओं में कोई परिवर्तन नहीं आता। पहले प्रयोग में उत्तेजना के कारण जड़ के वृद्धिशील अग्र का ऊपरी पृष्ट नीचे के पृष्ट की अपेक्षा अधिक वृद्धि करता है और तने में नीचे का पृष्ट ऊपरी पृष्ट की अपेक्षा अधिक वृद्धि करता है जिससे जड़ नीचे को और तना ऊपर की ओर मुड़ जाता है। दूसरे प्रयोग में जड़ और तने के सम्पूर्ण पृष्ट पर उत्तेजना का प्रभाव बराबर मात्रा में पहुंचता है अतः उनकी वृद्धि दिशाओं पर इस उत्तेजना का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इन प्रयोगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस उत्तेजना के ही कारण जड़ की वृद्धि उत्तेजना को दिशा में और तने की वृद्धि उससे विपरीत दिशा में होती है। इस उत्तेजना से साधारण पत्तिआं, मूलशाखायें तथा काण्डशाखायें अपनी वृद्धि इस प्रकार करती हैं कि वे तने अथवा मूल के साथ न्यूनकोण अथवा समकोण बनाती हैं।

चक्रारोही तनों की वृद्धि पर भूम्याकर्षण की उत्तेजना का प्रभाव प्रायः पार्श्वीय दिशा में पड़ता है जिससे उसका

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वृद्धिशील अग्र कभी दाईं ओर अधिक वृद्धि करता है और कभी बांई ओर। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने अवलम्ब (Support) को तार की तरह लपेटते हुये ऊपर बढ़ते जाते हैं। ऊपर की ओर लेजाने वाला भूम्याकर्षण का दूसरा प्रभाव इन तनों पर वैसाही पड़ता है जैसा कि साधारण तनों पर। जौ तथा गेहूँ आदि के पौधे आंधी पानी के कारण ज़मीन पर गिर जाते हैं तो कुछ समय के बाद वे फिर खड़े हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी ग्रंथियां वृद्धिशील होती हैं और भूम्याकर्षण की उत्तेजना पाकर वे अपनी वैसी ही वृद्धि करती हैं जैसी पहले प्रयोग में साधारण तने में हुई थी।

प्रकाशजन्य अवयवगति (Phototropic movements) :—प्रकाश की उत्तेजना के कारण भी अवयवों की वृद्धि दिशाओं में परिवर्तन आ जाता है। इस उत्तेजना से तना प्रकाश की ओर और जड़ प्रकाश के विपरीत बढ़ती है। यदि किसी वृद्धिशील वनस्पति को खिड़की के पास अथवा ऐसे स्थान पर रख देते हैं जहां प्रकाश केवल एक ओर से आता है तो कुछ समय के बाद तना टेढ़ा होकर प्रकाश की ओर बढ़ने लगता है। यदि इस पौधे को घूमती हुई मशीन (Klinostat) में लगाकर रखते हैं तो तने की वृद्धि दिशा नही बदलती। अतः यह स्पष्ट होजाता है कि तने में प्रकाश की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। साधारण द्विपृष्टी पत्तिआं अपनी वृद्धि

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रायः इस प्रकार करती हैं कि उनका पृष्ट प्रकाश की किरणों के समानान्तर हो । यहां इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि पत्तिओं और काण्ड शाखाओं पर भूम्याकर्षण और प्रकाश की उत्तेजनायें अपना अलग २ प्रभाव डालती हैं, परन्तु यदि इनके प्रभाव परस्पर विरोधी होजाते हैं तो भूम्याकर्षण की अपेक्षा प्रकाश का प्रभाव उपर्युक्त अवयवों पर अधिक पड़ता है ।

अवयवगति पर प्रकाश की तीव्रता का भी प्रभाव पड़ता है। पत्तिओं के हरितवर्णवाहक (Chloroplasts) प्रायः प्रकाश की तीव्रता के अनुसार अपने स्थान बदलते रहते हैं। मृदु प्रकाश में वे प्रायः कोष्ट की भीतरी तथा बाहरी दीवालों के पास होते हैं और तीव्र प्रकाश में वे पार्श्वीय दीवालों के पास चले जाते हैं। इस तरह के स्थान-परिवर्तन से वे प्रकाश को उपयुक्त मात्रा भी पा जाते हैं और तीव्र प्रकाश में उनके नष्ट होने की सम्भावना भी कम हो जाती है।

बहुत से पौधों की पत्तिआं प्रायः दिन के साधारण प्रकाश में सामान्य रूप से फैली हुई और सीधी रहती हैं और दिन के तीव्र प्रकाश में तथा रात्रि में नीचे की ओर झुक जाती हैं अथवा ऊपर की ओर एकत्र हो जाती हैं। ऐसी अवस्थाओं में संयुक्त पत्तिओं के पत्रकों के जोड़े परस्पर मिल जाते हैं जैसे, लाजवन्ती तथा चक्रमर्द में। इस प्रकार के स्थिति-परिवर्तनों से यह लाभ होता है कि रात्रि में उनसे जलत्याग कम होता है

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और वे शीत से बची रहती हैं और दिन में ताप से उनकी रक्षा हो जाती है। पत्तिओं की इन उपर्युक्त प्रकार की गतिओं को निद्रागति (Nyctinastic अथवा Sleep movements) कहते हैं।

बहुत से पुष्प तथा पुष्पव्यूह भी सेचन की सुविधा के लिये सायंकाल अथवा रात्रि में खिलते हैं और दिन में बन्द रहते हैं और बहुत दिन में खिलते हैं और रात्रि में बन्द हो जाते हैं। यहां पंखुड़ियों की गति भी प्रकाश तथा तापक्रम सम्बन्धी परिवर्तनों पर निर्भर करती है और कलिकाबद्ध पत्तिओं की तरह वृद्ध्यात्मक होती है।

आर्द्रताजन्य अवगति (Hydrotropism) :— आर्द्रताजन्य उत्तेजना प्रायः जड़ों की वृद्धिदिशा को बदल देती है। उनकी वृद्धि आर्द्रताभिमुखी होती है। प्रकाश तथा भूम्याकर्षण की उत्तेजनाओं की अपेक्षा आर्द्रता का प्रभाव जड़ पर अधिक पड़ता है।

स्पर्शजन्य अवयवगति (Haptotropism) :— स्पर्श की उत्तेजना का प्रभाव अन्य उत्तेजनाओं की अपेक्षा बहुत शीघ्र प्रगट होता है। जड़, सूत्र (Tendril), तथा किसी किसी चक्रारोही तने (अमरबेल) की वृद्धि दिशा पर इसका बहुत स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। वृद्धिशील जड़ों के मार्ग में यदि कोई कठोर वस्तु बाधा स्वरूप उपस्थित हो जाती है तो वह अपनी वृद्धि

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दिशा में परिवर्तन करके अपना मार्ग बदल देती है। अमरबेल के तने तथा चक्रारोही सूत्र किसी उपयुक्त अवलम्ब को स्पर्श करते ही इस प्रकार अपनी वृद्धिदिशा बदल देते हैं कि स्पर्श के बाद वे बराबर अवलम्ब को लपेटते जाते हैं। सूत्रों के अग्रभाग प्रायः टेढ़े होते हैं और उनपर स्पर्श-जन्य उत्तेजना का प्रभाव तभी पड़ता है जब अग्र के नतोदर पृष्ठ पर स्पर्श होता है। लाजवन्ती की पत्तिओं में, सन्ड्यू के सनाल ग्लैंडों में, दारुहरिद्रा के पुष्पलिंगों में तथा अन्य परिपक्व अवयवों में स्पर्श से जो गति उत्पन्न होती है वह वृद्ध्यात्मक नहीं होती।

रासायनिक उत्तेजना के कारण अवयव-गति (Chemotropism) :—गर्भाधान के समय डिम्ब के द्वारा प्रायः शर्करा घोल का निर्माण होता है जिससे उस समय परागनलिका शर्कराघोल से आकर्षित होकर डिम्ब की ओर अपनी वृद्धि करने लगती है। मानग्रोव वृक्षों में जड़ें आक्सीजन के लिये अपनी नियमित वृद्धिदिशा बदलकर ऊपर आजाती हैं। यह भी रासायनिक उत्तेजना का ही प्रभाव कहा जा सक्ता है। इनके अतिरिक्त स्पर्श की उत्तेजना से प्रभावित होने वाले परिपक्व अवयव भी प्रायः कुछ रासायनिक पदार्थों की उत्तेजना पाकर गति करते हुये पाये जाते हैं जैसे, लाजवन्ती की पत्तिआं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उत्तेजनाग्राहक भाग (Perceptive region):– प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जा सक्ता है कि जड़ों में भूम्याकर्षण आदि की उत्तेजनाओं का ग्रहण मूलाग्र (Root tip) द्वारा होता है पर उनका प्रभाव उस भाग में प्रगट होता है जहां सबसे अधिक वृद्धि होती रहती है। चक्रारोही सूत्रों में जब स्पर्श टेढ़े अग्र के नतोदर पृष्ठ पर किया जाता है तभी उसके उन्नतोदर पृष्ठ पर अधिक वृद्धि होती है। उन्नतोदर पृष्ठ को स्पर्श करने से कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः यह मानना पड़ता है कि उनमें उत्तेजनाग्राहक भाग नतोदर पृष्ठ पर होता है परन्तु प्रतिक्रियाशील भाग (Motor region) उन्नतोदर पृष्ठ पर होता है। पत्तिओं में उत्तेजनाग्राहक भाग प्रायः उनका पत्रनाल होता है परन्तु बहुतों में पत्रनाल का केवल आधारीय भाग, जिसे पल्वाइनस (Pulvinus) कहते हैं, उत्तेजनाग्राहक होता है। लाजवन्ती के किसी एक पत्रक को स्पर्श करने से प्रायः अन्य पत्रक भी प्रभावित होते हैं और उत्तेजना जितनी ही तीव्र होती है उतने ही अधिक पत्रक उससे प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त लाजवन्ती में यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उत्तेजनाग्राहक भाग से प्रतिक्रियाशील भागों में उत्तेजना का किस प्रकार क्रमशः संवहन (Transmission) होता है। सूत्र के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब उत्तेजनाग्राहक और प्रतिक्रियाशील भाग अलग २ होते हैं तो प्रतिक्रियाशील भाग पर कोई प्रभाव

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नहीं पड़ता यदि उत्तेजनाग्राहक भाग काट कर निकाल दिया जाता है अथवा उसे किसी तरह उत्तेजना ग्रहण करने से वंचित रखा जाता है।

गति का कारण (**Mechanism of movement**) :- वाह्य उत्तेजनाओं के कारण परिपक्व तथा अपरिपक्व भागों में उत्पन्न होनेवाली गति भिन्न २ प्रकार की होती है। वृद्धिशील भागों में उत्पन्न होनेवाली गति वृद्ध्यात्मक होती है अर्थात् उनमें उत्तेजनाओं के प्रभाव से एक भाग में दूसरे (विपरीत) भाग की अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है जिससे वह टेढ़ा हो जाता है। परिपक्व भागों की गति में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होती। अभीतक इन दोनों प्रकार की गतिओं के वास्तविक कारणों को स्पष्ट करनेवाला कोई ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं हो सका है जो सर्वमान्य हो। अभीतक इतना ही कहा जा सकता है कि इन दोनों प्रकार की गतिओं में उत्तेजनाओं का जीवनमूल पर ऐसा प्रभाव पड़ता है जिससे उसकी भेद्यता तथा जलसंग्राहकशक्ति (Turgidity) में बहुत परिवर्तन आ जाता है। परिपक्व भागों में उत्तेजना पाने पर जीवनमूल की भेद्यता वढ़ जाती है और कोष्ठों की जलसंग्राहक शक्ति कम हो जाती है जिससे कोष्ठों से जल निकल कर अन्तर्कोष्ठीय स्थानों में चला आता है और कोष्ठों के संकुचित होने पर सम्पूर्ण अवयव में गति पैदा हो जाती है। वृद्धिशील अवयवों में भी सम्भवतः ऐसा ही परिवर्तन होता है जिससे उनके एक भाग

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में दूसरे भाग की अपेक्षा जीवनमूल की भेद्यता कम और जल-संग्राहकशक्ति अधिक हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि दूसरा भाग पहले भाग की अपेक्षा अधिक वृद्धि करने लगता है और वृद्धिदिशा में परिवर्तन हो जाता है। वृद्धि के प्रकरण में बतलाया भी गया है कि जीवनमूल की भेद्यता कम करने से और कोष्ठों की जलसंग्राहक शक्ति बढ़ाने से अधिक वृद्धि होती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिच्छेद १३

विकास और परम्पराप्राप्ति (Evolution & Heredity)

प्राचीन काल में लोगों की ऐसी धारणा थी कि संसार में जितने जीवित पदार्थ हैं उन सबकी वंशोत्पत्ति स्वतंत्र रूप से हुई है, अर्थात् उनकी जितनी जातियां हैं सब आदि काल से चली आ रही हैं और सृष्टि के प्रारम्भ में वे वैसी ही थीं जैसी अब हैं। इस विशिष्टोत्पत्ति-वाद (Theory of Special creation) के अनुसार जीवन की उत्पत्ति अदृश्य और अतर्क्य दैवीशक्ति से मानी जाती है। जब से सांसारिक पदार्थों का वैज्ञानिक अध्ययन होने लगा तभी से धीरे २ वैज्ञानिकों का विश्वास विशिष्टोत्पत्तिवाद से हटने लगा। ग्रीस के दार्शनिकों तक ने यह मान लिया था कि उच्चश्रेणी के जीवित पदार्थों की उत्पत्ति क्षुद्रकोटि के सजीव पदार्थों से हुई है। विज्ञानों के विकास के साथ २ विकासवाद के इस सिद्धान्त (Theory of Evolution) का भी विकास होता गया और अन्त में डार्विन नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक की खोजों से यह पूर्णतः सिद्ध भी हो गया। इस सिद्धान्त के अनुसार यह माना जाता है कि जिस तरह आजकल प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण सजीव पदार्थों में परिवर्तन हो रहे हैं ठीक उसी प्रकार के परिवर्तन उनमें पहले से ही होते आ रहे हैं। प्रारम्भ के सजीव पदार्थ बहुत ही साधारण रचनावाले थे परन्तु परि-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

स्थिति के कारण उनमें अनेक प्रकार के रचनात्मक परिवर्तन क्रमशः होते गये और भिन्न प्रकार के पदार्थों की उनसे क्रमशः उत्पत्ति होती गई। यही विकासवाद का सिद्धान्त है। जीवन की उत्पत्ति के विषय में विकासवाद कुछ भी नहीं कहता। जीवन के प्रारम्भ के साथ विकासवाद के विषय का प्रारम्भ होता है।

विकाश अर्थात् प्राकृतिक परिवर्तन से किस तरह भिन्न २ प्रकार के पदार्थ उत्पन्न हो सकते हैं यह साइकिल के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। साइकिल पहले काठ की और तीन पहिओं की होती थी। इसका क्रमशः विकास होते २ आजकल इसका कितना परिष्कृत रूप हो गया है उसे हम मोटरसाइकिल को देखकर जान सकते हैं। प्रारम्भ की बनी हुई साइकिल में आवश्यकतानुसार समय २ पर भिन्न २ परिवर्तन होते गये और उसकी भिन्न २ उपजातिओं की सृष्टि होती गई। काठ की पहियों के स्थान में लोहे की पहिओं का बनना, तीन के स्थान में दो पहिओं का होना, पहियों पर रबर के ट्यूब तथा टायर का लगना और अन्त में उसमें मोटर का लगना ये साइकिल के विकास के मुख्य २ परिवर्तन हैं। इस क्रम से अब तक जितनी भी उपजातियां बनी हैं उनमें खोज करने पर कुछ अब भी पाई जाती हैं जो भिन्न २ परिस्थितिओं में काम दे रही है। इनमें कुछ ऐसी हैं जो वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल न होने के कारण पूर्णतः लुप्त हो गई हैं। साधारण बाइसिकिल और

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मोटरसाइकिल परिस्थिति के अधिक अनुकूल होने के कारण सबसे अधिक प्रचलित हैं। ऐसा माना जाता है कि सजीव पदार्थों का विकास और उनकी भिन्न २ जातिओं तथा उपजातिओं की सृष्टि इसी प्रकार हुई है।

विकास के प्रमाण :—विकासवाद की सत्यता प्रमाणित करने के लिये जो प्रमाण दिये जाते हैं वे जन्तुओं तथा वनस्पतिओं के वर्गीकरण, आकृति तथा भौगोलिक वितरण आदि के अध्ययन से प्राप्त होते हैं।

(१) वर्गीकरण के प्रमाण :— विशिष्टोत्पत्तिवाद के अनुसार जातिओं तथा उपजातिओं के विभेदक लक्षण निश्चित और स्पष्ट होने चाहिये। परन्तु आधुनिक वर्गीकरण में प्रायः ऐसा देखने में आता है कि कहीं २ एक उपजाति या जाति को दूसरी उपजाति या जाति से किसी स्पष्ट लक्षण के आधार पर पूर्णतः अलग कर देना असम्भव हो जाता है और इसीलिये कितनी हो उपजातिओं का पृथक्करण भिन्न २ वैज्ञानिकों द्वारा भिन्न २ लक्षणों के आधार पर किया हुआ मिलता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक वर्गीकरण में सम्पूर्ण वनस्पति तथा जन्तु संसार का दो वंशवृक्षों में समावेश हो जाना विकासवाद में हमारा पूर्ण विश्वास करा देता है। दोनों वंशवृक्षों को औत्पत्तिक एकता से यह विश्वास और भी दृढ़ हो जाता है। इससे भी बड़ी महत्व की बात तो यह है

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कि इस वर्गीकरण में लुप्त जन्तुओं तथा वनस्पतिओं को स्थान मिल जाता है।

(२) तुलनात्मक शरीर-रचना-शास्त्र (Comparative anatomy):—सजीवों की शारीरिक रचना पर तुलनात्मक विचार करने से मालूम होता है कि उनका शारीरिक संगठन मूलरूप से एकही तरह का है, क्योंकि समान जीवनमूल वाले काष्ठों से ही जन्तुओं तथा वनस्पतिओं दोनों का शरीर बना होता है। किसी वर्ग अथवा जाति के अन्दर सजीव पदार्थों की आकृतिक समानता को देखकर भी उनके पारस्परिक सम्बन्ध का आभास मिलता है। इसके अतिरिक्त रूपान्तरित अवयवों तथा अवशेषांगों की उपस्थिति भी विकासवाद के ही सिद्धान्त को पुष्ट करती है। पहले भाग में हमें कितने ऐसे उदाहरण मिले हैं जिनमें भिन्न २ अवयव परिस्थिति तथा कार्य के अनुसार भिन्न २ प्रकार के रुपान्तर किये रहते हैं। ये रुपान्तर वैयक्तिक विकास में नहीं होते बल्कि वंश विकास में उनके क्रमशः उत्पन्न होने का प्रमाण मिलता है।

अवशेषांगों की सकारणाता भी विकासवाद से ही समझ में आती है। गंदे वर्ग में पुटचक्र की आवश्यकता नहीं होती तब भी यह पैपस के रूप में मौजूद रहता है। इसका एक मात्र कारण यही हो सक्ता है कि यह इसके पूर्वजों में था अतः इसमें भी है। एकही वर्ग की भिन्न२ जातिओं का क्रमिक विकास

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कहीं २ बहुत स्पष्ट मालूम होता है। जैसे, कटुका वर्ग (Scrophulariaceae) में २ से पांच पुष्पलिंग पाये जाते हैं। किसी में (Verbascum) पांच पुष्पलिंग होते हैं और किसी में (Scrophularia) पांचवां अर्धविकसित अवस्था में पाया जाता है। किसी में (Digitalis) केवल चार पुष्पलिंग होते हैं और किसी में (Gratiola) दो पूर्णविकसित और दो अर्धविकसित पुष्पलिंग होते हैं। अन्ततः इस वर्ग में कुछ जातियां ऐसी भी होती हैं जिनमें दो ही पुष्पलिंग होते हैं। जन्तुओं में ह्वेल मछली, गाय और चमगादड़ ~~और~~ शारीरिक रचना के आधार पर एकही श्रेणी में रखे गये हैं यद्यपि उनमें वाह्य सादृश्य कुछ भी नहीं होता। विकासवाद के अनुसार यह माना जाता है कि इनमें बहुत निकट खूनी सम्बन्ध है परन्तु परिस्थिति की भिन्नता से उनमें परिवर्तन आगये हैं। ह्वेल मछली जल में रहती है इसलिये इसे रोमश चर्म तथा नाखून से कोई लाभ नहीं है परन्तु उसमें ये अर्धविकसित अवस्था में पाये जाते हैं, क्योंकि ये पैपस की तरह अवशेषांग मात्र हैं।

(३) **तुलनात्मक गर्भवृद्धि-शास्त्र (Comparative Embryology):**—गर्भवृद्धि-काल में प्रायः ऐसी अस्थायी रचनायें प्रगट हो जाती हैं जो कुछ समय के बाद लुप्त हो जाती हैं और उनके स्थान में स्थायी रचनायें तैयार हो जाती हैं। इनके विषय में विकासवादिओं का यह कहना है कि सजीवों का वैयक्तिक विकास प्रायः वंश विकास को दुहराता है "Onto-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

geny repeats Phylogeny " और इसीलिये गर्भवृद्धि-काल में उनमें प्रायः ऐसी रचनायें प्रगट हो जाया करती हैं जो उनके पूर्वजों में स्थायी रूप से पाई जाती थीं।

फाइलोड का परिचय कराते समय बतलाया गया था कि बब्बूल जाति के कुछ पौधों में पहले जो पत्तियां निकलती हैं वे साधारण संयुक्त पत्तियें की तरह होती हैं पर बाद में फाइलोक्लेड निकलते हैं जो स्थायी होते हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार मेढ़क, मुर्गी तथा मनुष्य में गलफड़ों की उत्पत्ति होती है जो इनके पूर्वजों अर्थात् मछलियों में स्थायीरूप से पाये जाते हैं।

(४) लुप्त-प्राणी-शास्त्र (Paloeontology) :— यह शास्त्र ऐसी प्राणिओं से सम्बन्ध रखता है जो प्राचीन काल में थीं पर अब नहीं हैं। इस शास्त्र के अध्ययन से पता चलता है कि पृथ्वी की भिन्न २ गहराई पर पाई जानेवाली प्राणिओं का क्रम उसी तरह का है जैसा विकासवाद के अनुसार होना चाहिये। ऊपर की तहों में पाये जानेवाले शरीरों का संगठन नीचे की तहों में पाये जानेवाले शरीरों की अपेक्षा क्रमशः उच्चश्रेणी का होता जाता है। सबसे उच्चश्रेणी की प्राणिओं के चिन्ह उपरी तहों में ही मिलते हैं जैसे, आवृत-बीजी पौधे क्रीटेशस काल की तहों के ऊपर ही पाये जाते हैं। आधुनिक वर्गीकरण में कहीं २ संयोजक जातियों के खाली स्थान भी पाये जाते हैं। इन जातिओं को वंशमाला की लुप्त कड़ियां

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

(Missing Links) कहते हैं । वनस्पतिओं में साइकेडोफ़िलिकेलीज़ (Cycadofilicales) श्रेणी को हम फिलिकेलीज़ और साइकेडेसी के बीच की लुप्तकड़ी कह सक्ते हैं। जन्तुओं में लुप्तकड़ी का सबसे रोचक उदाहरण आर्किओप्टेरिक्स नामक लुप्त प्राणी है जो सर्पों और पक्षिओं के बीच की लुप्त कड़ी है । यह जन्तु उड़नेवाले पंखयुक्त सर्प की तरह मालूम होता है जिसमें दोनों श्रेणिओं के लक्षण मिलते हैं। इन लुप्त जन्तुओं में दांत पाये जाते हैं जो आधुनिक पक्षिओं में नहीं होते ।

(५) **भौगोलिक वितरण** (**Geographical distribution**) :—यदि हम आधुनिक जातिओं के वितरण पर विचार करते हैं तो निकटवर्ती देशों की जातिओं में समानता और दूर २ बसे हुये देशों की प्राणिओं में दूरी के अनुसार कम या अधिक विभिन्नता देखने में आती है। इसके अतिरिक्त जिन देशों के बीच में ऐसे प्राकृतिक प्रतिबंध हैं या प्राचीन काल में रहे हैं जिनके कारण एक देश के प्राणी दूसरे देश में नहीं पहुंच सकते, उन देशों के प्राणिओं में भी बहुत विभिन्नता देखने में आती है । ये सब बातें विकासवाद के सिद्धान्त को पुष्ट करती हैं ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विकास की विधि (Method of Evolution)

मनुष्य जब कोई यंत्र बनाने की इच्छा करता है तो वह उसे इस प्रकार का बनाने का प्रयत्न करता है कि उससे उसके किसी अभीष्ट उद्देश की पूर्ति हो सके। इस प्रयत्न में पहली ही वार उसे पूर्ण सफलता नहीं मिलती। समय २ पर आवश्यकताओं के अनुसार उसे उसमें भिन्न २ प्रकार के परिवर्तन करने पड़ते हैं। इस तरह हरबार यंत्र का विकास होता जाता है और उसकी भिन्न २ किस्मों या उपजातिओं का आविर्भाव होता रहता है जैसा कि साइकिल के उदाहरण से हमें स्पष्ट मालूम हो चुका है। जब यंत्र अपनी अन्तिम अथवा पूर्ण विकसित अवस्था में आ जाता है तो प्रायः अन्य किस्मों का तिरस्कार करके अंतिम किस्म स्थायी रूप से ग्रहण किया जाता है और बाद में इसी तरह के यंत्र बनते लगते हैं। जब तक परिस्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता तब तक यही किस्म स्थायी बनी रहती है और पहले के बने हुये यंत्र प्रायः लुप्त हो जाते हैं। प्राणिओं के विकास में भी ये ही बातें देखने में आती हैं। इनमें भी अपने को परिस्थिति के अनुकूल बनाने की स्वाभाविक शक्ति होती है जिसे अनुकूलन की शक्ति (Power of adaptation) कहते हैं। इनमें भी समय २ पर परिवर्तन (Variation) होते रहते हैं और इन परिवर्तनों का सन्तानों में संक्रमण (Inheritance) होता जाता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यद्यपि विकासवाद के सिद्धान्त से सभी वैज्ञानिक सहमत हैं तथापि विकास की विधि के सम्बन्ध में उनके भिन्न २ मत हैं। इस सम्बन्ध में लेमार्क (Lamarck), डारविन (Darwin) और डीव्रोज़ (De Vries) के सिद्धान्त प्रधान हैं।

लेमार्क का सिद्धान्त :— ऊपर बतलाया गया है कि प्राणिओं में अनुकूलन की शक्ति मौजूद रहती है जिससे वे परिस्थिति तथा कार्य के अनुसार अपना रूपान्तर कर लेती हैं। पौधों में रूपान्तर करानेवाले परिवर्तन अधिकतर परिस्थिति-जन्य होते हैं। इनकी परिस्थिति में प्रायः ज़मीन, निवास स्थान की ऊँचाई, आर्द्रता, ताप और प्रकाश आदि उपकरण अधिक महत्व रखते हैं और प्रभावशाली होते हैं। जन्तुओं में परिस्थिति के अतिरिक्त अंगों के कार्य या कार्यभाव का भी अधिक प्रभाव पड़ता है। लेमार्क का कहना है कि परिस्थिति, कार्य अथवा कार्याभाव के कारण उत्पन्न होनेवाले परिवर्तनों का संतानों में संक्रमण होता है। बार बार सन्तानों में संक्रमित होते रहने के कारण कुछ समय के बाद इन परिवर्तनों का प्रभाव मूलबीज (Germ-plasm) तक पहुँच जाता है और तब वे पूर्वपरिस्थिति के अभाव में भी उत्पन्न होने लगते हैं। विरोधी दल का कहना है कि परिस्थितिजन्य परिवर्तनों का संक्रमण तभीतक हो सकता है जबतक परिस्थिति नहीं बदलती। परिस्थिति के बदलने पर उनका संक्रमण नहीं हो सकता,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

क्योंकि ऐसे परिवर्तनों का मूलबीज पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

हाल के कुछ प्रयोग जिनसे लेमार्कवाद की पुष्टि होती है विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कैमरर नामक वैज्ञानिक ने सैलामाण्डर (Salamander) नामक जन्तु पर प्रयोग किया था। इस जन्तु की उसने दो उपजातियां ली। एट्रा (Atra) उपजाति कृष्णवर्ण की होती है और बहुत ऊँचाई पर पाई जाती है। इनके हर बार दो बच्चे पैदा होते हैं जिनमें बाहरी गलफड़े नहीं होते। दूसरी उपजाति मैकुलोसा (Maculosa) पीली होती है और मैदानों में पाई जाती है। इसके हर बार ३०-४० बच्चे होते हैं जिनमें बाहर की ओर गलफड़ों के छिद्र पाये जाते हैं। कैमरर ने पहले एट्रा को लेकर मैदानों की परिस्थिति में रखा। इस तरह पहली बार उसमें ३ और दूसरी बार ५ या ६ बच्चे पैदा हुये जिनमें गलफड़े भी मौजूद थे। बच्चों की संख्या आनेवाली पीढ़िओं में क्रमशः बढ़ती गई। उसने फिर मैकुलोसा को शीत और शुष्क परिस्थिति में पाला जिससे इसके बच्चे संख्या में कम और अर्धविकसित गलफड़ों वाले हुये। आनेवाली पीढ़ियों में ये परिवर्तन और भी स्पष्ट और मात्रा में अधिक होते गये। गूयर (Guyer) और स्मिथ (Smith) नामक वैज्ञानिकों के प्रयोग भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन लोगों ने चूहे की आखों के लेंस निकाल कर नमक घोल में मसल दिया और इस घोल का सूचिकाभरण द्वारा एक मुर्गी की रक्त-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वाहिनिओं में प्रवेश कराया। फिर, उस मुर्गी को मारकर उसके सीरम (Serum) का एक दूसरी गर्भिणी मुर्गी को इन्जेक्शन दिया। इस मुर्गीके कुछ बच्चे तो मर गये, पर जो रह गये उनकी आंखों का पूर्ण विकास नहीं हुआ। तीसरी पीढ़ी में सभी बच्चों की आंखें अर्धविकसित थीं। यह निश्चित है कि यहां सीरमजन्य विरोधी वस्तुओं (Antibodies) के प्रभाव से ही आंखों में परिवर्तन आया। लेमार्कवादी कहते हैं कि रक्तप्रवाह में मिले हुये सीरम का प्रभाव मूलवीज पर अवश्य पड़ा होगा उपर्युक्त प्रयोगफल के लिये दूसरा कारण नहीं हो सक्ता।

लेमार्कवादी अपने सिद्धान्त के समर्थन में प्रायः उन पौधों का उदाहरण दिया करते हैं जो जल या स्थल दोनों जगहों में पाये जाते हैं। इन दोनों परिस्थितिओं में वे पौधे वाह्य तथा आंतरिक रचना में बहुत विभिन्नता रखते हैं। इस प्रकार के किसी पौधे के वीज को जो स्थल पर उगा है यदि जल में बो दिया जाता है तो नया पौधा जलीय पौधे के समान होता है और जल में उगने वाले पौधों की सन्तानें स्थल पर उग कर स्थलीय पौधों के तुल्य हो जाती हैं। इसी तरह शुष्कता या आर्द्रता, प्रकाश या छाया तथा पहाड़ या मैदान में उगनेवाले एकही उपजाति के पौधे परिस्थिति के अनुसार अपना रुपान्तर कर लिया करते हैं। इस प्रकार के सब पौधों के विषय में विरोधी दल वाले यह कहते हैं कि उनमें दोनों विरोधी परिस्थितिओं में उत्पन्न होनेवाली विशेषतायें पहले

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ही से मौजूद रहती हैं। जैसी परिस्थिति मिलती है वैसी ही विशेषताओं का विकास होता है। अतः परिस्थिति बदलने पर जो विशेषतायें प्रगट होती हैं वे नई नहीं होती, बल्कि पहले ही से मौजूद रहती हैं। सैलामांडर के विषय में भी वे यही कह सक्ते हैं। कठिनता तो यह है कि, कोई पौधा जल और स्थल दोनों में उग सकता है और कोई केवल जल या स्थल एक ही परिस्थिति में उग सकता है, इसका वास्तविक कारण पर लैमार्कवाद कुछ भी प्रकाश नहीं डालता।

दूसरे प्रयोग के विषय में भी कहा जा सक्ता है कि गर्भ-काल में सीरम का प्रभाव सीधे मूलबीज पर पड़ा होगा। विरोधी दल वाले भी मानते हैं कि वाह्य अवस्थाओं से कभी २ मूलबीज प्रभावित हो सकता है। पर, जैसा कि लैमार्कवादी कहते हैं कि वाह्य अवस्थाओं का प्रभाव पहले साधारण जीवनमूल पर पड़ता है और फिर उससे मूलवीज प्रभावित होता है, ऐसा विरोधी दल वाले नहीं मानते। लैमार्क-वाद के कुछ नये समर्थक तो यहां तक कहते हैं कि जिन परि-स्थितिजन्य परिवर्तनों का सम्बन्ध पोषण की क्रियाओं से है उनका प्रभाव सम्भवतः पहले उत्पादक कोष्ठों के जीवनमूल पर पड़ता है और फिर वह मूलवीज तक पहुंच जाता है। इस पर भी विरोधी सहमत नहीं होते।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लैमार्कवाद के प्रति अनेकों प्रकार की आपत्तिओं के रहते हुये भी अन्ततः हमें कहना पड़ता है कि प्राणिओं की कुछ विशेषताओं की सार्थकता समझने में यह सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त लुप्त-प्राणी-शास्त्र के अध्ययन से हमें पता चलता है कि विकास अधिकतर उपस्थित अवयवों के रुपान्तर से ही हुआ है, नये अंगों की उत्पत्ति से नहीं। इससे भी लैमार्कवाद की पुष्टि होती है। इस मत में सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें ऐसी कोई विधि नहीं बतलाई गई है जिससे परिस्थिति-जन्य परिवर्तन जीवनमूल पर अपना प्रभाव डालते हुये मूल-बीज को प्रभावित कर सक्ते हैं।

वीज़मैन का सिद्धान्तः— लैमार्क के विरोधिओं में वीज़मैन (Weismann) प्रधान हैं। इनके सिद्धान्त को अटूट वीजप्रवाह (Continuity of germ plasm) का सिद्धान्त कहते हैं। इनका कहना है कि चूंकि ज़ाइगोट की वृद्धि के समय उत्पादक कोष्टों के जनक-कोष्ट उन कोष्टों से अलग हो जाते हैं जिनसे शारीरिक वृद्धि होती है अतः मूलवीज की धारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में अटूट क्रम से बहती रहती है और यही कारण है कि शारीरिक परिवर्तनों का प्रभाव मूलवीज पर नहीं पड़ता। यद्यपि इस सिद्धान्त को अब सभी लोग मानते हैं पर मूलवीज का पूर्ण पृथकत्व बहुत लोगों को खटकता है। चूंकि मूलवीज भी मात्रा में अपनी वृद्धि करता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है और विभक्त होता है अतः उसे बाहर से अपना पोषण करना ही पड़ता है। ऐसी अवस्था में यह आसानी से विश्वास नहीं किया जा सक्ता कि पोषण का भी प्रभाव मूलबीज पर न पड़ता होगा। इनके अनुसार मूलबीज का परिवर्तन होता है पर वह संतानोत्पत्ति (Transmission) के ही समय सम्भव माना जाता है। चीनी स्त्रियों के पैरों अथवा अन्य इसी प्रकार के उदाहरणों द्वारा ये लेमार्क के मत का खंडन करते हैं।

डारविन का सिद्धान्त :— इनके सिद्धान्त को प्राकृतिक निर्वाचन का सिद्धान्त (Theory of Natural Selection) कहते हैं। इस सिद्धान्त के पांच मुख्य अंग हैं :—

(१) प्राणिओं की स्वाभाविक उत्पत्ति का आधिक्य (Overproduction) :— प्रायः सब प्रकार की प्राणिओं में उत्पादन की ऐसी प्राकृतिक शक्ति होती है कि यदि अबाध रूप से उत्पादन होता जाय और सब संतानें जीवित रह जांय तो थोड़े ही समय में एक ही जाति के प्राणिओं से सारी पृथ्वी भर जाय। बैसिलस नामक कीटाणु जो लम्बाई में एक इंच का $\frac{१}{५०००}$ होता है, अकेला पांच दिन में एक महासागर को एक मील की गहराई तक भर दे सक्ता है। काड नामक मछली भी, जो प्रति बार २ लाख अंडे देती है, अत्युत्पादन का एक उदाहरण है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

फल बनने के पहले ही तुषार आदि से नष्ट हो जाते हैं। अतः परिवर्तनों के होने से जीवनसंग्राम में केवल योग्यतम की ही रक्षा होती है और अयोग्य प्राणिओं का नाश हो जाता है।

(४) "योग्य प्राणिओं की रक्षा और अयोग्य प्राणिओं का विनाश (Survival of the fittest and elimination of the unfit)" यही इस सिद्धान्त का चौथा अंग है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है।

(५) परिवर्तनों का संक्रमण (Inheritance of characters):— प्राकृतिक चुनाव के सिद्धान्त का यह पांचवां अङ्ग है। इसका अभिप्राय यह है कि जनक-प्राणिओं में जो विशेषतायें होती हैं और जो जीवनसंग्राम में उन्हें सफल बनाती हैं वे उनकी सन्तानों में भी प्रगट होती हैं। यद्यपि इनका संक्रमण सन्तानों में होता है पर सब सन्तानों में इनका संक्रमण बराबर मात्र में नहीं होता। किसी में पिता की विशेषता का संक्रमण कम मात्रा में होता है और किसी में अधिक मात्रा में। यहां फिर योग्यतम सन्तानों का ही चुनाव होता है। इस तरह एकही परिस्थिति में संक्रमणशील विशेषताओं को मात्रा प्रत्येक पीढ़ी में उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। बहुत समय के बाद एकही प्रकार का परिवर्तन एकही दिशा में होने के कारण इतना अधिक हो जाता है कि अन्तिम पीढ़िओं के प्राणी अपने पूर्वजों से, जिनमें उस परिवर्तन का प्रारम्भ मात्र हुआ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

था, सर्वथा भिन्न हो जाती हैं और नई उपजाति के पद पर आ जाती हैं। उपजातिओं की उत्पत्ति (Origin of species) डारविन के अनुसार इसी तरह होती है। बहुत सम्भव है कि यहां एक से अधिक विशेषताओं का साथ साथ विकास होता रहता है जिससे नई उपजातियां जनक उपजातिओं से एक से अधिक लक्षणों में भिन्न होती हैं।

डारविन का कहना है कि प्राणिओं में जो नये परिवर्तन उत्पन्न होते हैं उनमें कुछ परिस्थिति के अनुकूल, कुछ उसके प्रतिकूल और कुछ उदासीन होते हैं। जिस तरह प्राकृतिक चुनाव में केवल अनुकूल विशेषताओं का विकास होता है उसी तरह प्रतिकूल विशेषताओं का क्रमशः लोप भी हो जाता है। अन्य प्रकार के परिवर्तनों पर प्राकृतिक चुनाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता पर उनका सन्तानों में निरन्तर संक्रमण होता रहता है। सृष्टि के अन्दर प्रत्येक प्राणी में अपनी परिस्थिति के प्रति जो अद्भुत सानुकूलता देखने में आती है उसकी सकारणता समझने में लेमार्क की अपेक्षा डारविन का सिद्धान्त अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। लैमार्क केवल अनुकूलन की कल्पित शक्ति को अपना एकमात्र आधार बनाता है पर डारविन का प्राकृतिक चुनाव अनुकूल विशेषताओं का निरन्तर संरक्षण भी करता जाता है जिससे नई उपजातिओं की उत्पत्ति में प्राकृतिक चुनाव अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है।

लैमार्क और डारविन के सिद्धान्तों में दूसरा अन्तर उन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विशेषताओं के सम्बन्ध में है जिनका संक्रमण होता है। लैमार्क के अनुसार केवल परिस्थिति, कार्य या कार्याभाव के कारण उत्पन्न होनेवाले परिवर्तनों पर ही विकास होता है पर डारविन के अनुसार क्रमिक (Gradual) तथा आकस्मिक (Sudden) दोनों प्रकार के संक्रमणशील परिवर्तनों पर प्राकृतिक चुनाव होता है। यद्यपि डारविन ने लैमार्क के रुपान्तरों (Modification) को भी विकास में अंशतः उपयोगी बतलाया था पर बाद में उनके समर्थकों ने इनको इस सिद्धान्त में कोई स्थान नहीं दिया।

जिराफ नामक जन्तु का विकास लैमार्क तथा डारविन के सिद्धान्तों के अनुसार भिन्न २ तरह से समझाया जाता है। लैमार्कवादी कहते हैं कि जिराफ के पूर्वजों को ऐसी परिस्थिति में रहना पड़ता था जहां के वृक्ष बहुत ऊंचे होते थे। अतः उन्हें अपनी गर्दनों को पत्ती आदि के लिये बार २ उठाना पड़ता था। अधिक कार्य करने से उनकी गर्दनें लम्बी होती गईं और अन्त में बहुत बड़ी गर्दन वाले जिराफ की उत्पत्ति हुई। डारविन का कहना है कि लम्बी गर्दन की विशेषता प्राकृतिक चुनाव के कारण क्रमशः अधिक होती गई जिससे अन्ततः जिराफ की उत्पत्ति हुई।

प्राकृतिक चुनाव के सिद्धान्त के प्रति आपत्तियां:— इस सिद्धान्त के विरुद्ध कई प्रकार की आपत्तियां खड़ी की जाती हैं। सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि जिन सूक्ष्म वैयक्तिक

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विशेषताओं को इन्होंने प्राकृतिक चुनाव में प्रधानता दी है वे इतनी सूक्ष्म होती हैं कि उनका पृथक्करण और चुनाव होना बहुत कठिन प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त अंगों के विकास में अनेक प्रकार की विशेषताओं का एक साथ एक ही दिशा में और एक ही लक्ष्य से विकसित होना अनिवार्य मालूम होता है और इस बात को इस सिद्धान्त से समझना कठिन मालूम होता है। तीसरी आपत्ति यह है कि डारविन के क्रमिक परिवर्तन अधिकतर लैमार्क के परिस्थितिजन्य रूपान्तरों की ही श्रेणी के हैं जिनका संक्रमण ही सबको मान्य नहीं है। जोहान्सन (Johannsen) के अनुसार इन क्रमिक परिवर्तनों पर प्राकृतिक चुनाव का बहुत कम, परिमित अथवा कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इनके अतिरिक्त प्राणिओं में जो अनावश्यक अंगों की उपस्थिति पाई जाती है और परिवर्तनों के प्रत्यावर्तन (Regression) और वर्णसंकरता के कारण सूक्ष्म-परिवर्तनों के लुप्त हो जाने की सम्भावनायें पाई जाती हैं वे प्राकृतिक चुनाव की कठिनाइयों को और भी बढ़ा देती हैं।

डीव्रीज़ का सिद्धान्त:—प्राकृतिक चुनाव की उपर्युक्त कठिनाइयों को देखकर कुछ वैज्ञानिकों ने नई उपजातिओं की उत्पत्ति के प्रश्न को दूसरी तरह से सुलझाने का प्रयत्न किया जिससे डीव्रीज़ का सिद्धान्त निकला। यह सिद्धान्त डारविन के सिद्धान्त का ही परिष्कृत या संशोधित रूप कहा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जा सक्ता है। इस सिद्धान्त के अनुसार भी प्राकृतिक चुनाव होता है पर यह चुनाव केवल आकस्मिक परिवर्तनों का होता है। इसीलिये इस सिद्धान्त को आकस्मिक परिवर्तनों का सिद्धान्त (Mutation theory) कहते हैं। परिस्थिति के प्रति प्राणिओं में जो सानुकूलता पाई जाती है वह इस सिद्धान्त से समझ में नहीं आती। कुछ लोगों का कहना है कि इस तरह से उत्पन्न होने वाली नई उपजातियां प्रायः ऐसे स्थानों को ही आबाद करती हैं जिनके लिये उनके नवीन आकस्मिक परिवर्तन उपयोगी होते हैं। मेंडल का सिद्धान्त भी इस सिद्धान्त को बहुत अंशों में पुष्ट करता है।

परम्पराप्राप्ति (Heredity)

जिस क्रिया में पैत्रिक गुणों का संतान में संक्रमण होता है उसे परम्पराप्राप्ति कहते हैं। वीज़मैन का सिद्धान्त वस्तुतः परम्पराप्राप्ति का ही सिद्धान्त था। जनक और संतान के अन्दर जो समानतायें तथा विभिन्नतायें देखने में आते उनके कारणों का कुछ २ स्पष्टीकरण वीज़मैन के सिद्धान्त द्वारा हो जाता है, पर मेंडल ने इस विषय में जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है वह बहुत सूक्ष्म रूप से इनके स्पष्टीकरण में सहायक हुआ है। इसके अतिरिक्त विकासविधि पर भी इसने बहुत कुछ प्रकाश डाला है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मेंडल का सिद्धान्तः—मेंडल (Mendel) ने जिन प्रयोगों के आधार पर अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त बनाया था वे मटर के पौधों पर किये गये थे। उसने मटर का एक ऐसा पौधा लिया जो साधारणतः आत्मसेचन द्वारा अपनी सन्तानोत्पत्ति करता था। इस जाति में छोटी तथा बड़ी क़द्वाले, लाल तथा सफेद फूलवाले निश्चित प्रकार (Variety) के पौधे होते थे। उसने पहले एक छोटी क़द्वाले और एक बड़ी क़द्वाले पौधे के बीज परसेचन कराया। इनसे दूसरी पीढ़ी में जितनी सन्तानें हुई सब बड़ी क़द्वाली थीं। इन बड़ी क़द्वाले पौधों का उसने फिर आत्मसेचन कराया और इनसे तीसरी पीढ़ी में जो सन्तानें हुईं उनमें दोनों प्रकार के पौधे थे। बड़ी क़द्वाले पौधों की संख्या छोटी क़द्वाले पौधों की संख्या से तीन गुनी थी। उसने फिर इन पौधों का आत्मसेचन कराया। इस बार छोटे पौधों की सब सन्ताने छोटी हुईं, पर बड़ी क़द्वाले पौधे की सन्तानों में भिन्नता थी। तीन में से केवल एक की सन्तान बड़ी क़द्वाली हुई, पर शेष दो की सन्तानों में फिर वही ३ और १ का अनुपात देखने में आया। मेंडल ने दूसरा प्रयोग लाल और सफेद फूलवालों पर किया। यहां भी उसे दूसरी पीढ़ी में केवल लाल पुष्पवाले पौधे और तीसरी पीढ़ी में लाल और सफेद फूलवाले पौधे तीन और एक के अनुपात से प्राप्त हुये।

इन प्रयोगों में जो विशेषता मेंडल को दूसरी पीढ़ी की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सन्तानों में संक्रमित होती हुई मिली उसको उसने प्रधान (Dominant) और दूसरी को अप्रधान (Recessive) बतलाया। प्रधान और अप्रधान विशेषताओं का उसने अलग अलग जोड़ा (Allelomorph) बना लिया। इन प्रयोगों के पश्चात् उसने इनके परिणामों के वास्तविक कारणों पर विचार किया। उसने लैंगिक कोष्ठों के अन्दर ऐसे उपकरणों (Factor) की कल्पना की जिनके कारण विशेषताओं की उत्पत्ति हुई थी। दूसरी महत्त्वपूर्ण कल्पना उसने यह की कि किसी लैंगिक कोष्ठ में प्रत्येक जोड़े की एकही विशेषता रह सकती है। अतः किसी पौधे में जोड़ों की दोनों विशेषताओं के उपकरण रह सकते थे, पर लैंगिक कोष्ठों के बनने के समय प्रधान और अप्रधान विशेषताओं के उपकरण अलग २ होकर भिन्न २ लैंगिक कोष्ठों में चले जाते थे। इस प्रकार के पृथक्करण (Segregation) का आभास हमें लघ्वीकरण विभाजन में (Reduction division) मिलता भी है, क्योंकि यहां आधे क्रोमोज़ोम एक लैंगिक कोष्ठ में और आधे दूसरे लैंगिक कोष्ठ में चले जाते हैं।

इन कल्पनाओं के आधार पर उसने अपने परिणामों की जांच की। पहली पीढ़ी के पौधे अपनी २ विशेषताओं के लिये विशुद्ध (Pure) थे और आत्मसेचन द्वारा सर्वदा अपनी ही जैसी सन्तानें उत्पन्न करते जाते थे इसलिये उनके सब लैंगिक कोष्ठों में प्रधान या अप्रधान विशेषताओं के ही उपकरण रहे होंगे। दूसरी पीढ़ी के पौधों में यद्यपि प्रधान और अप्रधान दोनों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विशेषतओं के उपकरण थे पर प्रकाश केवल प्रधान विशेषता का ही होता था जिससे सब पौधे लम्बी ही कदवाले हुये। अब इनके लैंगिक कोष्ठ दो तरह के हुये होंगे जिनमें आधे प्रधान और आधे अप्रधान विशेषता के उपकरणों से युक्त रहे होंगे। मान लिया कि प्रत्येक में चार लैंगिक कोष्ठ बने जिनमें दो लम्बी कद की विशेषता से और दो छोटी कद की विशेषता से युक्त थे। आत्म सेचन में यदि इस प्रकार के चार नारी कोष्ठ चार नर कोष्ठों से मिलेंगे तो चार संतानों में तीन को बड़ी कद वाली और एक को छोटी कद वाली होनी चाहिये। तीन वाली संतानों में एक ऐसी होगी जिसमें केवल लम्बी कद की विशेषता का उपकरण होगा और शेष दो में दोनों उपकरण होंगे।

यदि उपर्युक्त प्रयोग में दो प्रधान और दो अप्रधान विशेषताओं का साथ २ अध्ययन किया जाता है तो उसके परिणाम भी पहले प्रयोग के परिणामों की तरह उपर्युक्त कल्पनाओं के ही अनुसार घटते हैं। जैसे बड़ी कद और लाल पुष्पवाले पौधों के साथ छोटी कद और सफेद पुष्पवाले पौधों का परसेचन कराया जाता है तो दूसरी पीढ़ी की सब संतानें बड़ी कद और लाल फूल वाली होती हैं। तीसरी पीढ़ी में चार प्रकार के पौधे होते हैं जिनमें ९ बड़े और लाल फूल वाले, ३ बड़े और सफेद फूल वाले, ३ छोटे और लाल फूल वाले और एक छोटा तथा सफेद फूलवाला होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जब किसी प्राणी में एक जोड़े की दोनों विशेषतायें होती है तो उसे अशुद्ध या हेटेरोज़ाइगस (Heterozygous) कहते हैं और जब केवल एक ही विशेषता होती है तो उसे विशुद्ध या होमोज़ाइगस (Homozygous) कहते हैं। मेंडल ने प्रधान और अप्रधान विशेषताओं के लिये दो भिन्न २ उपकरणों या पदार्थों की कल्पना की थी, परन्तु बाद के बहुत से वैज्ञानिकों ने प्रधान उपकरण के अभाव (absence) को ही अप्रधान विशेषता का कारण माना था और अब भी मानते हैं। किसी एक लैंगिक कोष्ट में प्रधान और अप्रधान दोनों उपकरणों के साथ २ न पाये जाने का कारण इस मत के अनुसार स्पष्ट हो जाता है।

विशेषता और उपकरण (Character and factor) :—कहीं २ प्रधान विशेषता का पूर्ण प्रकाश होमोज़ाइगस व्यक्तिओं में ही होता है। हेटेरोज़ाइगस व्यक्तिओं में वह अर्धप्रकाशित अवस्था में ही पाई जाती है। भावाभाव के सिद्धान्त के अनुसार यह मानना पड़ेगा कि भावाभाव कुछ प्रधान विशेषताओं का पूर्ण प्रकाश तभी होता है जब उसके उपकरण द्विगुणित मात्रा (Double dose) में मौजूद रहते हैं। ऐसा विशुद्ध व्यक्तिओं में ही होता है।

इसके अतिरिक्त प्रायः ऐसा देखने में आता है कि बहुत सी विशेषताओं का विकास केवल एक उपकरण पर नहीं निर्भर करता, बल्कि कई उपकरणों (प्रायः दो) के सम्मेलन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

से वे प्रगट होती हैं। एक उपकरण की विशेषतायें (Unit characters) प्राय: कम होती हैं। प्रत्यावर्तन (Reversion) प्राय: ऐसी ही विशेषताओं का होता है जिनका विकास दो उपकरणों पर निर्भर करता है। जब पूर्वजों में पाई जाने वाली कोई विशेषता बहुत पीढ़िओं के बाद किसी वंशज में प्रगट हो जाती है तो उसी अवस्थाको प्रत्यावर्तन कहते हैं। जब किसी विशेषता के दोनों उपकरण किसी समय अलग हो जाते हैं तो उस विशेषता का लोप हो जाता है। इन दो भिन्न २ उपकरणों से सम्पन्न दो व्यक्तिओं का कभी संयोग वश मेल हो जाता है तो उस विशेषता का प्रत्यावर्तन हो जाता है।

संवद्धता और अवद्धता (Linkage & Repulsion):- कभी २ यह देखने में आता है कि दो प्रधान विशेषताओं का सर्वदा एक साथ विकास होता है और इसके विरुद्ध कहीं २ दो प्रधान विशेषतायें एक व्यक्ति में कभी नहीं पाई जातीं। इन दोनों अवस्थाओं को क्रमश:संवद्धता (Linkage) और अवद्धता (Repulsion) कहते हैं। इन दोनों अवस्थाओं के संघटित होने का कारण यह है कि पहली में दोनों विशेषतायें एक ही क्रोमोज़ोम में होती हैं। संवद्धता कभी तो पूर्ण होती और कभी अपूर्ण। जैसे, मटर में नीले दलपत्र और लम्बे परागकणों की विशेषताओं का एक ही क्रोमोज़ोम के द्वारा संवहन होता है। इसीलिये इनके बीच संवद्धता देखने में आती है, पर वह पूर्ण नहीं होती जिससे कुछ ऐसे पौधे भी पाये जाते हैं जिनमें

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दोनों का प्रथक्करण हो जाता है। इसका कारण यह बतलाया गया है कि भिन्न२ विशेषताओं के उपकरण क्रोमोज़ोमों के भिन्न भिन्न निश्चित भागों में होते हैं। न्यूक्लियस के विभाजन के समय कुछ क्रोमोज़ोम टूट जाया करते हैं और उनके टुकड़े अदल बदल जाते हैं, अर्थात् एक क्रोमोज़ोम का एक टुकड़ा दूसरे टूटे हुये क्रोमोज़ोम से मिल जाता है और दूसरे का टुकड़ा पहले से मिल जाता है। ऐसा खंडविनिमय उन्हीं क्रोमोज़ोमों के बीच होता है जो न्यूक्लियस के विभाजन के समय सन्निकट और लिपटे हुये रहते हैं। इस तरह एक ही क्रोमोज़ोम के सम्बद्ध उपकरण भी अलग होकर संबद्धता को अपूर्ण बना देते हैं। प्रायः ऐसा भी देखा गया है कि सम्बद्ध उपकरणों के अगल होने की सम्भावना कहीं अधिक, कहीं कम और कहीं बहुत ही कम या नहीं के बराबर होती है। इसका कारण यह बतलाया गया है कि सम्बद्ध उपकरण बहुत समीप होते हैं तो उनके अलग होने की सम्भावना बहुत कम होती है पर वे जितने ही एक दूसरे से दूर होते हैं उतनी ही अधिक उनके अलग होने की सम्भावना होती है।

ऊपर की पंक्तिओं से यह विदित होता है कि यदि किसी प्राणी की सम्पूर्ण विशेषताओं का अध्ययन किया जाय और भिन्न २ विशेषताओं की संबद्धता आदि की सब अवस्थाओं का पूरा ज्ञान हो जाय तो उस प्राणी के क्रोमोज़ोमों की संख्या तथा उनमें भिन्न २ विशेषताओं के स्थान भी निश्चित किये

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जा सकते हैं। ड्रोसोफिला (Drosophila) नामक मक्खी का इसी प्रकार अध्ययन करके उसमें चार क्रोमोज़ोमों की कल्पना की गई है। ये चारो कल्पित क्रोमोज़ोम क़द तथा आकार में वैसे ही हैं जैसे कि वस्तुतः पाये जाते हैं। यहां इतना वतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में इतनी आशातीत सफलता प्राप्त करली है पर अभी तक वे उपकरणों की बनावट के सम्बन्ध में किसी निश्चय पर नहीं पहुंच सके हैं। इनके प्रतिनिधिओं को प्रायः जीन (Gene), डिटर्मिनर (Determiner) तथा इड (Id) आदि नाम दिये जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि ये निश्चित रासायनिक पदार्थों के बने होते हैं और कुछ लोगों के कहने के अनुसार ये जीवनमूलीय प्रकृति के होते हैं।

मेंडेलिज्म की व्यवहारोपयोगिता (Economic application) :— जब मेंडल की तरह भिन्न २ तरह के प्रयोगों द्वारा किसी पौधे की भिन्न २ नस्लों की संक्रमणशील विशेषताओं की पूरी जानकारी प्राप्त हो जाय तो भिन्न २ नस्लों के बीच गर्भाधान कराके अभीष्ट नई नस्लें पैदा की जा सक्ती हैं। जैसे, यदि किसी नस्ल में दो ऐसी विशेषतायें हैं जिनमें एक उपयोगी और दूसरी अनोपयोगी है और दूसरी नस्ल में भी इसी तरह की दो उपयोगी और अनोपयोगी विशेषतायें हैं तो इन दोनों के बीच गर्भाधान कराके केवल अभीष्ट विशेषताओं वाली तीसरी नई नस्ल पैदा की जासकी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है। इस तरह की आज कल कितनी ही ऐसी संस्थायें हैं जिनमें अभीष्ट गुणों से सम्पन्न घोड़े आदि जन्तुओं को तथा गेहूँ, और धान आदि पौधों को नई नस्लें पैदा की जा रही हैं। इस तरह गेहूँ की ऐसी नस्लें पैदा की जा चुकी हैं जिन पर रोगवाहक प्राणिओं का प्रभाव नहीं पड़ने पाता। यद्यपि औषधीय पौधों पर अभी तक ऐसे प्रयोग नहीं किये गये हैं, पर यदि उनकी औषधीय विशेषताओं की संक्रमणशीलता का अध्ययन किया जाय और नये पौधे उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाय तो आशा है इस दिशा में भी सफलता अवश्य मिलेगी।

मेंडेलिज्म और विकास विधि :—विकास-विधि के सम्बन्ध में जिन तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है उन सबमें कुछ न कुछ दोष हैं। इनमें एक भी ऐसा नहीं है जो विकास सम्बन्धी सम्पूर्ण प्राकृतिक घटनाओं को सिद्ध कर सका है इसमें सन्देह नहीं कि डीव्रोज़ का सिद्धान्त प्राकृतिक घटनाओं के समझाने में अधिक सफल हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मेंडल के सिद्धान्त से भी इसका बहुत अंशों में समर्थन होता है। हम देख चुके हैं कि जब विशेषताओं के केवल दो जोड़ों में को दृष्टि में रख कर दो पौधों के बीच गर्भाधान कराते हैं तो तीसरी पीढ़ी के पौधे ऊपर से देखने में चार ही प्रकार के होते हैं पर मूलबीज की रचना के अनुसार वे ९ प्रकार के होते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तीन जोड़ों वाले पौधों की संतानें तीसरी पीढ़ी में इस दृष्टि से सत्ताइस प्रकार की होती हैं। इन पौधों में कुछ ऐसे होते हैं जिनका मूलबीज प्रारम्भ में लिये हुये दोनों पौधों के मूलबीजों से बहुत ही भिन्न होता है। डीव्रोज़ के बहुत से परिवर्तनों की उत्पत्ति इसी तरह होती है। कुछ लोगों का कहना है कि नई उपजातिओं की उत्पत्ति इसी वर्ण-संकरता (Hybridisation) के कारण होती है। यहां कठिनता यह है कि इस तरह बिलकुल नवीन विशेषताओं की उत्पत्ति नहीं हो सकती, जो उत्थानात्मक (Progressive) विकास के लिये आवश्यक प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि कितने ही आकस्मिक परिवर्तनों का वर्ण-संकरता से उत्पन्न होना सिद्ध नहीं होता। इनके विषय में कुछ लोगों का कहना है कि ये सर्वथा नये (Spontaneous) होते हैं। इनके कहने के अनुसार क्रोमाज़ोमों के किसी २ भाग में ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं जिनके कारण उनमें सर्वथा नये अथवा वर्तमान उपकरणों के परिवर्तन से भी नये उपकरण उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि क्रोमोज़ोमों में उपर्युक्त परिवर्तन वाह्य तथा आन्तरिक उत्तेजनाओं की प्रेरणा (Induced) से उत्पन्न होते हैं। इन नवीन आकस्मिक परिवर्तनों के सम्बन्ध में दूसरी बात स्मरण रखने योग्य यह है कि ये बहुधा अप्रधान श्रेणी के होते हैं। चूंकि अप्रधान विशेषताओं की उत्पत्ति प्रधानों की अभावसूचक है अतः ऐसा मालूम होता है कि ये नवीन विशेषतायें पुराने उपकरणों के नष्ट हो जाने पर उत्पन्न होती हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अन्तिम निर्णय :— डीव्रीज़ के सिद्धान्त के गुण और दोषों पर विचार कर लेने के बाद हमें अन्ततः इसी निर्णय पर आना पड़ता है कि यद्यपि इस सिद्धान्त में औरों की अपेक्षा अधिक पूर्णता है पर अन्य सिद्धान्तों में भी कुछ सत्यता अवश्य है। अतः यदि इन तीनों सिद्धान्तों का समन्वय करके एक नया ही सिद्धान्त निकाला जाय तो वह सम्भवतः हर एक की कठिनाइयों को दूर कर सकेगा। इस नवीन समन्वित सिद्धान्त के अनुसार यह मानना पड़ेगा कि विकास आकस्मिक परिवर्तनों द्वारा हुआ है जिनमें कुछ वर्णसंकरता से और कुछ पुराने उपकरणों के परिवर्तन से या उनके पूर्णतः लुप्त हो जाने से उत्पन्न हुये हैं। ये परिवर्तन अधिकतर उत्थानात्मक (Progressive) अथवा (Orthogenetic) श्रेणी के हैं और इनकी उत्पत्ति में परिस्थिति का भी सम्भवतः कुछ २ हाथ रहता है। इनका संरक्षण प्राकृतिक निर्वाचन और भौगोलिक अथवा क्रियावैज्ञानिक पृथक्करण से हुआ है। इन परिवर्तनों को वास्तविक प्रत्यक्ष रूप में लाने का कार्य परिस्थिति करती है जो प्राणिओं की साधारण रहनसहन तथा आकृतिक विशेषताओं को निर्धारित करती रहती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परिशिष्ट

(अ) आवृतबीजी पौधे का वैज्ञानिक विवरण ।

रहन-सहन :—वार्षिक, द्विवार्षिक, अथवा बहुवार्षिक; शाक; क्षुप, अथवा वृक्ष; पौधे की परिस्थिति, जीवनक्रम (पराश्रयी, मृताश्रयी आदि), रूप तथा आकार आदि की विशेषताओं का वर्णन ।

मूल :— प्रारम्भिक, अनियमित अथवा दोनों; सूत्रवत् अथवा कन्दवत् (कन्दवत् जड़ों के आकार आदि का वर्णन) ।

तना :— स्वावलम्बी अथवा दुर्बल (विसर्पी, आरोही अथवा चक्रारोही; विसर्पण और आरोहण की विधियां और इनमें सहायता पहुंचानेवाले अवयवों का वर्णन); वायवीय, भौमिक अथवा दोनों (भौमिक तने के भेद); मृदु अथवा कठोर; चिकना, रोमश (रोमश के भेद), अथवा कंटकयुक्त (रोमों और कंटकों की रचना, आकार तथा उत्पत्ति सम्बन्धी विशेष बातें, काण्डपृष्ठ पर पाई जानेवाली अन्य विशेष रचनाओं का उल्लेख, जैसे ब्लूम तथा गण्डचिन्हों का उल्लेख); गोला अथवा कोणयुक्त विच्छेदवाला (सम्पूर्ण तने का उल्लेख, यदि वह गोला, कोणयुक्त, रेखायुक्त, द्विपृष्ठी अथवा किसी अन्य विशेष आकार का हो); ठोस, पोला अथवा स्थूलग्रन्थियुक्त (Jointed) ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शाखाक्रम :— (परिमित अथवा अपरिमित; यूनीपैरस, बाईपैरस अथवा मल्टीपैरस; स्कारप्वायड, हेलिकायड तथा मिथ्याद्विविभक्त आदि उपस्थित विशेष भेदों का उल्लेख); शाखाक्रम के अनुसार तने का भेद (एकपादी अथवा बहुपादी); तने के उपस्थित रूपान्तरों का वर्णन (कंटकवत्, सूत्रवत्, अथवा पत्रवत्) ।

पत्ती :— पत्रक्रम एकान्तर, विपरीत (डेकुसेट अथवा सुपरपोज्ड) अथवा चाक्रिक; सनाल अथवा विनाल; विनाल पत्तिओं के पत्राधार (कोषमय , पृष्ठजयुक्त, काण्डासक्त, अर्धकाण्डासक्त, परिकाण्ड, अथवा विपरीत परिकाण्ड) और सनाल पत्तिओं के पत्रनाल का वर्णन; स्टीपुलेट अथवा एक्सस्टीपुलेट (स्टीप्यूल के भिन्न २ भेदों तथा आकार आदि का वर्णन); साधारण अथवा संयुक्त (संयुक्त पत्ती के करतलाकार अथवा पत्ताकार भेदों का वर्णन) ।

साधारण पत्ती तथा सं भेद ी के पत्रकों का वर्णन निम्नरीति से होता है अथवा

(अ) नाड़ीक्रम:—जाल न क्रम अथवा समानान्तर नाड़ीक्रम ; करतलाकार (बहुपर्शुक) अथवा पत्ताकार एक पर्शुक) ।

(ब) धार :— पूर्ण, दन्तमय (सिरेट, डैंटेट तथा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

क्रीनेट आदि भेद), अथवा विच्छेद युक्त (विच्छेदों की गहराई, आकार, धार तथा अग्र आदि का वर्णन) ?

पत्राग्र (Apex) :— तीक्ष्णाग्र, लम्बाग्र, कुण्ठिताग्र, नताग्र, रोमश नताग्र अथवा छिन्नाग्र (Truncate) ?

इनके अतिरिक्त पत्ती के पृष्ठ (तने के पृष्ठ की तरह), रङ्ग, गठन तथा रूपान्तरों (सूत्रवत्, कंटकवत्, तथा फाइलोड आदि) का वर्णन भी आवश्यकतानुसार कर देना चाहिये।

पुष्पव्यूह :—परिमित अथवा अपरिमित (साधारण तथा विशेष भेदों के साथ); पुष्पध्वज (Scape) का वर्णन यदि वह उपस्थित हो।

पुष्प :—सनाल अथवा विनाल; ब्रैक्टियेट अथवा इब्रैक्टियट; ब्रैक्टिओलेट अथवा इब्रैक्टिओलेट [ब्रैक्ट तथा ब्रैक्टिओल का वर्णन) ; पूर्ण अथवा अपूर्ण; द्विलिंगी [हर्माफ्रोडाइट] अथवा एकलिंगी [यूनीसेक्सुअल]; नियमित अथवा अनियमित ; पेचदार अथवा चाक्रिक अथवा अर्धचाक्रिक; हाइपोगाइनस, पेरिगाइनस अथवा इपीगाइनस; डाइक्लैमीडियस, मानोक्लैमीडियस, अथवा एक्लैमीडियस। यहां पुष्प के रंग, कद तथा गन्ध आदि का वर्णन भी किया जा सकता है।

पुटचक्र :—स्वतंत्र [पुटपत्रों की संख्या और पत्ती की तरह उनका वर्णन] अथवा संयुक्त [विच्छेदों की संख्या, गहराई

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आकार आदि, और सम्पूर्ण पुटचक्र के आकार का वर्णन नलिकाकार, घंटिकाकार आदि शब्दों में]; नियमित अथवा अनियमित; हरा अथवा पेटलायड [रंग]; पुटपत्रों के विशेष आकार [स्पर्ड, फणाकार आदि], रूपान्तर, स्थायित्व [पूर्वपाती, पश्चात्पाती अथवा स्थायी], तथा पारस्परिक क्रम [संलग्न, इम्ब्रिकेट अथवा ट्विस्टेड] का वर्णन; इपिकैलिक्स का वर्णन, यदि वह उपस्थित हो।

दलचक्र :— स्वतन्त्र [पालीपेटलस] अथवा संयुक्त [गैमोपेटलस]; शेष विवरण पुटचक्र की तरह; विशेष प्रकार के दलचक्रों [पैपिलिओनेशस, क्रूसीफार्म आदि] का वर्णन।

पेरियन्थ :— स्वतन्त्र [पालीफाइलस] अथवा [गैमोफ़ाइल]; चक्रों की संख्या; शेष विवरण पुटचक्र की तरह।

लिंगचक्र :— स्वतन्त्र [पालीऐंड्रस] अथवा संयुक्त [सिंजिनीसस अथवा एडल्फस, भेदसहित]; परिमित संख्यावाला [पुष्पलिंगों की संख्या] अथवा असंख्य [Indefinite]; इपीपेटलस, इपीफ़ाइलस तथा गाइनैंड्रस अवस्थाओं का वर्णन, यदि वे उपस्थित हों; विशेष प्रकार के लिंगचक्रों [टेट्राडाइनमस, डाइनमस आदि] का वर्णन लिंगसूत्र तथा लिंगछत्रों के संयोग, लिंगछत्रों के स्फोटन आदि का वर्णन; लिंगसूत्र तथा लिंगछत्रों की आकृतिक विशेषतायें।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

योनिचक्र :– मानो-अथवा पाली-कार्पेलरी ; स्वतंत्र अथवा संयुक्त [एपोकार्पस अथवा सिंकार्पस] ; गर्भाशय एककोष्ठी अथवा बहुकोष्ठी [द्विकोष्ठी, त्रिकोष्ठी....बहुकोष्ठी], सुपीरियर अथवा इनफीरियर ; बीजक्रम का भेद ; योनिसूत्र तथा योनिछत्र का वर्णन ।

बीज और फल :– इनके भेद तथा इनकी प्रसार सहायक विशेषतायें ।

अन्त में फ्लोरल सूत्र तथा फ्लोरल चित्र देकर पौधे का वैज्ञानिक विवरण समाप्त किया जाता है। यहां इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यदि पौधे की आकृति से उसके जीवन की प्रधान क्रियाओं पर कुछ प्रकाश पड़ता है तो उसका उल्लेख कर देना चाहिय । पुष्प की रचना देखकर सेचन-विधि का और फल तथा बीज की रचना देखकर बीजप्रसार की विधि का अनुमान किया जा सक्ता है ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

S/ Scanned

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)